उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

फरवरी, 2014

निर्णय-सूची

	पृष्ठ संख्या
धनिया **बनाम** भगवान सिंह और एक अन्य	229
नेशनल इंश्योरेंस कम्पनी लि. **बनाम** श्री रवीन्द्र कुमार और अन्य	239
पवन कुमार **बनाम** पालमपुर रोटरी आई फाउंडेशन **मार्फत** इसके अध्यक्ष	221
प्रबंध समिति सलतनत बहादुर स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बदलापुर और एक अन्य **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य	180
बजाज आलियांज़ जनरल इंश्योरेन्स कंपनी लिमिटेड **बनाम** संतोष कुमार और एक अन्य	167
बिशनू चरण मोहन्ती और एक अन्य **बनाम** रहस बिहारी दास और अन्य	192
बिहार राज्य और अन्य **बनाम** मैसर्स अमलोरी कंस्ट्रक्शन प्राइवेट लिमिटेड और एक अन्य	210
मदन लाल और एक अन्य **बनाम** उप-निदेशक चकबन्दी, बदायूं और अन्य	158
ममता देवी (श्रीमती) **बनाम** दिनेश कुमार	277
यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेन्स कंपनी लि., मेरठ **बनाम** हरेशवर सिंह और अन्य	155
राजेश ठाकुर और अन्य **बनाम** हिमाचल प्रदेश विधान सभा **मार्फत** इसके सचिव, काउंसिल चेम्बर, शिमला और अन्य	268
सरोज कुमारी (श्रीमती) **बनाम** राजेश कुमार	246

पृष्ठ संख्या

सुभाष **उर्फ** प्रकाश **बनाम** प्रियंका सुभाष देवांगन 204

लेख

मामलों का लंबित रहना : न्याय मिलने में देरी, न्याय न मिलने के बराबर है – एक अवलोकन (1) – (9)

———

पृष्ठ संख्या

उत्तर प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम, 1901

– धारा 33 और 34 – भू-धृतिधारक की मृत्यु – नामांतरण – पी.ए.-11 के अधीन राजस्व कर्मचारियों द्वारा प्रविष्टियां – विधिमान्यता – नामांतरण की ऐसी प्रविष्टियां हकदारी प्रदत्त करने वाली घोषणा के रूप में नहीं होती हैं और यह संक्षिप्त कार्यवाहियां होने के कारण कानूनी प्राधिकारियों के आदेशों के अध्यधीन रहती हैं ।

मदन लाल और एक अन्य बनाम **उप-निदेशक चकबन्दी, बदायूं और अन्य** 158

उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा अधिनियम, 1921

– धारा 16-गग [सपठित विश्वविद्यालय के प्रथम कानून का नियम 10.05 का खंड (ङ)] – प्रबंध समिति – कार्यकाल में विस्तार – अपेक्षा – विश्वविद्यालय को सुसंगत कानूनों को विरचित करते समय प्रबंध समिति की अधिकतम पांच वर्ष की अवधि को ध्यान में रखना चाहिए – इस संबंध में कोई संशोधन उक्त अपेक्षा के अनुसार ही किया जा सकता है – जहां संशोधन का अनुमोदन करने वाले प्राधिकारी ने संशोधन लागू करने के लिए किसी विनिर्दिष्ट तारीख का उल्लेख किया है वहां ऐसा संशोधन ऐसी विनिर्दिष्ट तारीख से ही लागू होगा ।

प्रबंध समिति सलतनत बहादुर स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बदलापुर और एक अन्य बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** 180

उत्तर प्रदेश राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम, 1973

– धारा 2(13) – प्रबंध समिति – प्रबंधन – अर्थान्वयन – "प्रबंधन" शब्द से ऐसी सहबद्धता अभिप्रेत

पृष्ठ संख्या

है जो प्रबंध समिति या ऐसे कालेज के कार्यों के प्रबंधन से संबंधित प्रभार लेने वाला ऐसा कोई निकाय हो जो ऐसे विश्वविद्यालय द्वारा मान्यता प्राप्त हो ।

प्रबंध समिति सलतनत बहादुर स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बदलापुर और एक अन्य बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** 180

कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम, 1984 (1984 का 66)

– धारा 10(1) – कुटुम्ब न्यायालय – प्रक्रिया – सिविल प्रक्रिया संहिता का प्रवर्तन – कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम को अधिनियमित करने का उद्देश्य विवाह और कुटुम्ब से संबंधित विवादों को शीघ्रतापूर्वक सुलझाना है इसलिए सिविल प्रक्रिया संहिता के कठोर नियमों के पालन और साक्ष्य को कम महत्व दिया गया है ।

सुभाष उर्फ **प्रकाश** बनाम **प्रियंका सुभाष देवांगन** 204

– धारा 17 – कुटुम्ब न्यायालय – प्रक्रिया – विवाद्यक विरचित करने की अपेक्षा – अधिनियम के उपबंधों को दृष्टिगत करते हुए कुटुम्ब न्यायालय द्वारा मामले में विवाद्यक विरचित करना आवश्यक नहीं है तथापि, मामले को सरलता से निपटाने के लिए विवाद्यक विरचित किए जा सकते हैं ।

सुभाष उर्फ **प्रकाश** बनाम **प्रियंका सुभाष देवांगन** 204

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59)

– धारा 140(2) – दुर्घटना दावा – अंतरिम प्रतिकर – संशोधन द्वारा स्थायी क्षति के मामले में अंतरिम प्रतिकर 12,500/- रुपए से बढ़ाकर 25,000/- रुपए किया जाना – भूतलक्षी या भविष्यलक्षी प्रभाव – संशोधन केवल संशोधन के पश्चात् की घटनाओं को ही

पृष्ठ संख्या

लागू होगा न कि संशोधन के पूर्व की घटनाओं को ।

यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेन्स कंपनी लि., मेरठ बनाम **हरेशवर सिंह और अन्य** 155

– धारा 149 और 170 – मोटर दुर्घटना – प्रतिकर के लिए दावा – अधिकरण द्वारा बीमा कंपनी की ओर से अधिनियम की धारा 170 के अधीन फाइल आवेदन खारिज किया जाना – जहां बीमाकर्ता का धारा 170 के अधीन आवेदन खारिज कर दिया गया हो वहां बीमाकर्ता-कंपनी धारा 149(2) में उल्लिखित सीमित आधारों पर ही दावा याचिका का विरोध करने के लिए हक़दार होगी ।

बजाज आलियांज़ जनरल इंश्योरेन्स कंपनी लिमिटेड बनाम **संतोष कुमार और एक अन्य** 167

– धारा 170, 173 – अपील – यान दुर्घटना – अंशदायी उपेक्षा साबित नहीं होना – बिना अनुज्ञा के यान चलाया जाना – दायित्व – प्रतिकर – यदि यह साबित कर दिया जाता है कि दुर्घटना, यान को उतावलेपन और उपेक्षापूर्वक चलाए जाने के कारण घटित हुई है तो बीमा कम्पनी आहत व्यक्ति को कारित क्षति के लिए प्रतिकर संदाय करने के लिए दायी होगी किन्तु यदि यान बिना अनुज्ञा के चलाया जा रहा था तो बीमा कम्पनी संदत्त प्रतिकर रकम को यान के स्वामी से वसूल सकती है ।

नेशनल इंश्योरेंस कम्पनी लि. बनाम **श्री रवीन्द्र कुमार और अन्य** 239

संविधान, 1950

– अनुच्छेद 14 – राज्य द्वारा निविदा आमंत्रण – शर्तें – निविदाकार द्वारा अनुभव की अपेक्षित शर्त पूरी न

पृष्ठ संख्या

की जानी – निविदा की खारिजी – समानता के अधिकार के आधार पर चुनौती – खारिजी न्यायोचित होने के कारण मात्र इस आधार पर विनिश्चय में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता ।

बिहार राज्य और अन्य बनाम **मैसर्स अमलोरी कंस्ट्रक्शन प्राइवेट लिमिटेड और एक अन्य** 210

– अनुच्छेद 226 [सपठित हिमाचल प्रदेश विधान सभा सचिवालय (सेवाओं की भर्ती और शर्तें) नियम, 1974 का नियम 6 और 8] – रिट – लोक सेवक का विहित प्रक्रिया के अनुसरण में चयन होना – नियुक्ति पत्र अप्राधिकृत प्राधिकारी द्वारा जारी करना – नियुक्ति रद्द होना – यदि विहित प्रक्रिया के अनुसरण में कोई व्यक्ति लोक सेवक के रूप में चयनित होता है किन्तु उसका नियुक्ति पत्र अप्राधिकृत प्राधिकारी द्वारा जारी किया जाता है तो उसकी नियुक्ति रद्द होने के लिए दायी होगी और यदि ऐसी नियुक्ति रद्द की जाती है तो वह वैध और विधिमान्य होगी ।

राजेश ठाकुर और अन्य बनाम **हिमाचल प्रदेश विधान सभा** मार्फत **इसके सचिव, काउंसिल चेम्बर, शिमला और अन्य** 268

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5)

– आदेश 21, नियम 99 और 100 [सपठित परिसीमा अधिनियम, 1963 – धारा 17 और अनुच्छेद 128] – निष्पादन मामले का निपटान – पुन: स्थापन आवेदन – परिसीमा –क़ब्ज़ेदार की जानकारी के बिना क़ब्ज़ेदार को बेक़ब्ज़ा किया जाना – परिसीमा अवधि बेक़ब्ज़ा होने की सूचना की तारीख़ से संगणित की जाएगी न कि बेक़ब्ज़ा करने की तारीख़ से – अत: बेक़ब्ज़ा

पृष्ठ संख्या

किए जाने के 30 दिन के पश्चात् फाइल किया गया प्रत्यास्थापन आवेदन कालवर्जित नहीं माना जा सकता ।

बिशनू चरण मोहन्ती और एक अन्य बनाम **रहस बिहारी दास और अन्य** 192

– आदेश 21, नियम 99 और 100 – विधिक प्रक्रिया द्वारा संपत्ति का क़ब्ज़ा – क़ब्ज़ेदार की जानकारी के बिना क़ब्ज़ेदार को डिक्री धारक द्वारा बेक़ब्ज़ा किया जाना – निष्पादन कार्यवाही के निपटान के पश्चात् क़ब्ज़े की वापसी के लिए आवेदन – ग्राह्यता – निष्पादन मामले के निपटान के पश्चात् भी आदेश 21, नियम 100 के अधीन क़ब्ज़ा वापसी के लिए आवेदन फाइल किया जा सकता है ।

बिशनू चरण मोहन्ती और एक अन्य बनाम **रहस बिहारी दास और अन्य** 192

– धारा 80 और 100 – संस्था सम्पत्ति – मुख्तार की नियुक्ति – यदि कोई संस्था नियमानुसार मुख्तार की नियुक्ति करती है और वह संस्था की ओर से संस्था के किराएदारों को विवादित सम्पत्ति खाली करने के लिए नोटिस देता है जिसकी तामील सम्यक् रूप से कराई जाती है तो ऐसी नियुक्ति और नोटिस, वैध और विधिमान्य होगी और इसे चुनौती नहीं दी जा सकती है जब तक कि इससे अन्यथा कोई तथ्य साबित नहीं कर दिया जाता है ।

पवन कुमार बनाम **पालमपुर रोटरी आई फाउंडेशन** मार्फत **इसके अध्यक्ष** 221

– धारा 100 [सपठित हिमाचल प्रदेश अभिधृति और भूमि सुधार अधिनियम, 1974] – विवादित भूमि का कब्जे सहित स्वामी होने का दावा करना – दावे की पुष्टि दस्तावेजी साक्ष्यों से नहीं होना – दावा खारिज होना

पृष्ठ संख्या

– यदि कोई व्यक्ति किसी भूमि का कब्जे सहित स्वामी होने का दावा करता है तो उसे ग्राह्य अभिलेखों द्वारा इसे वैध और विधिसम्मत साबित करना होगा जिसके अभाव में उसका दावा खारिज होने योग्य होगा और इसमें हस्तक्षेप करना अपेक्षित नहीं होगा ।

धनिया बनाम **भगवान सिंह और एक अन्य** 229

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25)

– धारा 28 और धारा 13(iक) तथा (iख) – अपील – सामान्य अनुक्रम में पत्नी द्वारा पति को सहवास करने से मना करना तथा पति के कुटुम्ब सदस्यों को दांडिक मामलों में फंसाने की धमकी देते हुए जहर खा लेना – कलह और तनावपूर्ण पारिवारिक स्थिति में एक-दूसरे के साथ रहना असम्भव होना – ऐसी परिस्थितियों में विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित होना – यदि अभिलेख पर यह साबित कर दिया जाता है कि सामान्य अनुक्रम में पत्नी, पति को सहवास करने की अनुमति नहीं देती है और पति के कुटुम्ब के सदस्यों को दांडिक मामलों में फंसाने की धमकी देते हुए जहर खा लेती है तथा पारिवारिक वातावरण इतना कलह और तनावपूर्ण हो जाता है कि पति-पत्नी एक साथ नहीं रह सकते हैं तो इन परिस्थितियों में पारित विवाह-विच्छेद की डिक्री कायम रखे जाने योग्य तथा विधिमान्य होगी ।

सरोज कुमारी (श्रीमती) बनाम **राजेश कुमार** 246

– धारा 28 – अपील – पत्नी द्वारा पति और उसके कुटुम्ब सदस्यों के विरुद्ध दहेज की मांग तथा क्रूरता कारित करने का आरोप लगाना – पति द्वारा पत्नी के विरुद्ध बिना किसी युक्तियुक्त कारण के अभित्यजन का आरोप लगाना – यदि अभिलेख पर के

पृष्ठ संख्या

साक्ष्यों से यह साबित होता है कि पत्नी ने बिना किसी युक्तियुक्त कारण के अपने पति का अभित्यजन किया है और उसे फंसाने के लिए उसके तथा उसके कुटुम्ब सदस्यों के विरुद्ध दहेज की मांग करने और क्रूरता कारित करने का मिथ्या आरोप लगाया है और इन कलहपूर्ण परिस्थितियों में पति-पत्नी का एक साथ रहना असम्भव हो गया है तो पति की मांग पर विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित करना वैध और न्यायोचित है ।

ममता देवी (श्रीमती) बनाम **दिनेश कुमार** 277

फरवरी, 2014

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

प्रधान संपादक
अनूप कुमार वार्ष्णेय

संपादक
महमूद अली ख़ां

महत्वपूर्ण निर्णय

उत्तर प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम, 1901 – धारा 33 और 34 – भू-धृतिधारक की मृत्यु – नामांतरण – पी.ए.-11 के अधीन राजस्व कर्मचारियों द्वारा प्रविष्टियां – विधिमान्यता – नामांतरण की ऐसी प्रविष्टियां हकदारी प्रदत्त करने वाली घोषणा के रूप में नहीं होती हैं और यह संक्षिप्त कार्यवाहियां होने के कारण कानूनी प्राधिकारियों के आदेशों के अध्यधीन रहती हैं ।

मदन लाल और एक अन्य बनाम **उप-निदेशक चकबन्दी, बदायूं और अन्य** 158

लेख

मामलों का लंबित रहना : न्याय मिलने में देरी, न्याय न मिलने के बराबर है – एक अवलोकन (1) – (9)

पृष्ठ संख्या 155 – 297 **(2014) 1 सि. नि. प.**

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका – फरवरी, 2014 (पृष्ठ संख्या 155 – 297)

संपादक-मंडल

श्री पी. के. मल्होत्रा,
सचिव, विधायी विभाग

श्रीमती शारदा जैन, संयुक्त सचिव
एवं विधायी परामर्शी, विधायी विभाग

डा. बी. एन. मणि, अधिवक्ता,
(पूर्व संपादक) वि.सा.प्र.

प्रो. डा. वैभव गोयल, संकायाध्यक्ष,
लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन
अकादमी, मसूरी (उत्तराखंड)

डा. सुरेन्द्र कुमार शर्मा, प्रिन्सिपल,
विधि विभाग, गुरु गोविंद सिंह इन्द्रप्रस्थ
विश्वविद्यालय

डा. आर. पी. सिंह,
सेवानिवृत्त संयुक्त सचिव,
राजभाषा खंड

श्री लालजी प्रसाद,
सेवानिवृत्त प्रधान संपादक,
वि.सा.प्र.

श्री के. जी. अग्रवाल,
सेवानिवृत्त संपादक, वि.सा.प्र.

श्री अनूप कुमार वार्ष्णेय,
प्रधान संपादक

श्री महमूद अली ख़ां,
संपादक

श्री जुगल किशोर,
संपादक

डा. मिथिलेश चन्द्र पाण्डेय,
संपादक

सहायक संपादक : सर्वश्री विनोद कुमार आर्य, कमला कान्त, अविनाश शुक्ल और असलम खान

उप-संपादक : सर्वश्री दयाल चन्द ग्रोवर, एम. पी. सिंह और जसवन्त सिंह

कीमत : डाक-व्यय सहित

एक प्रति : ₹ 12

वार्षिक : ₹ 135

© 2014 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय

प्रकाशन और विक्रय प्रबंधक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय (विधायी विभाग), भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा..... द्वारा मुद्रित ।

भारत के समाचारपत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकृत रजि. सं. 17552/69

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं – उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिकाओं में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के क्रमश: चयनित सिविल और दांडिक निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । इन पत्रिकाओं को और अधिक आकर्षक बनाने के लिए इनमें जनवरी, 2010 के अंक से महत्वपूर्ण केन्द्रीय अधिनियमों का प्राधिकृत हिन्दी पाठ को पाठकों की सुविधा के लिए श्रृंखलाबद्ध रूप से प्रकाशित किया जा रहा है । तीनों निर्णय पत्रिकाओं की वार्षिक कीमत केवल ₹ 495/- है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 225/- है, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें ।

विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार
भारतीय विधि संस्थान भवन,
भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001
दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित और विक्रय के लिए उपलब्ध विधि पाठ्य पुस्तकों की सूची

	पुस्तक का नाम	लेखक	पृष्ठ सं.	कीमत (₹)
1.	भारत का विधिक इतिहास	श्री सुरेन्द्र मधुकर	410	30.00
2.	माल विक्रय और परक्राम्य लिखत विधि	डा. एन. पी. परांजपे	371	40.00
3.	वाणिज्य विधि	डा. आर. एल. भट्ट	630	108.00
4.	अपकृत्य विधि के सिद्धान्त (तृतीय संस्करण)	श्री शर्मन लाल अग्रवाल	357	40.00
5.	अंतर्राष्ट्रीय विधि के प्रमुख निर्णय (द्वितीय संस्करण)	डा. एस. सी. खरे	273	115.00
6.	मानव अधिकार	डा. शिवदत्त शर्मा	340	120.00
7.	दण्ड प्रक्रिया संहिता	न्या. महावीर सिंह	840	200.00

पुस्तकों की सूची जिन पर छूट देने की स्वीकृति प्राप्त की गई है ।

	पुस्तक का नाम	लेखक	पृष्ठ सं.	मूल दर (₹)	संशोधित दर (₹)
1.	संविदा विधि (द्वितीय संस्करण)	डा. रामगोपाल चतुर्वेदी	552	275.00	137.00
2.	श्रम विधि (तृतीय संस्करण)	श्री गोपी कृष्ण अरोड़ा	658	452.00	226.00
3.	चिकित्सा न्यायशास्त्र और विष विज्ञान (तृतीय संस्करण)	डा. सी. के. पारिख अनुवादक डा. एन. के. पटौरिया	969	293.00	146.00
4.	आधुनिक पारिवारिक विधि	श्री राम शरण माथुर	767	429.00	214.00
5.	भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम (कालजयी निर्णय)	संकलन संपादन – ब्रह्मदेव चौबे	209	225.00	112.00
6.	हिन्दू विधि (द्वितीय संस्करण)	डा. रवीन्द्र नाथ	617	425.00	212.00
7.	भारतीय दंड संहिता	डा. रवीन्द्र नाथ	696	741.00	370.00
8.	भारतीय भागीदारी अधिनियम (द्वितीय संस्करण)	श्री माधव प्रसाद वशिष्ठ	272	165.00	82.00
9.	प्रशासनिक विधि (तृतीय संस्करण)	डा. कैलाश चन्द्र जोशी	635	200.00	100.00
10.	विधिक उपचार (द्वितीय संस्करण)	डा. एस. के. कपूर	414	311.00	155.00
11.	विधि शास्त्र	डा. शिवदत्त शर्मा	501	580.00	377.00

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

मामलों का लंबित रहना : न्याय मिलने में देरी, न्याय न मिलने के बराबर है – एक अवलोकन

डा. सुरेंद्र कुमार*

प्रस्तावना

न्यायमूर्ति भगवती ने विधि दिवस, 26 नवंबर, 1985 के अवसर पर, जब वह मुख्य न्यायाधीश थे, अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा था :–

> "मुझे यह देखकर अत्यंत दुख है कि देश में न्यायिक व्यवस्था टूटने के कगार पर है । यह कठोर शब्द हैं जो मैं इसके लिए प्रयोग कर रहा हूं लेकिन मुझे घोर संताप है कि मैं ऐसा कह रहा हूं । हमारी न्यायिक व्यवस्था मामलों के बकाया के बोझ तले दब कर टूट रही है ।"

न्यायपालिका किसी भी प्रकार की शासन व्यवस्था में एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है क्योंकि वह नागरिकों के मध्य अधिकारों को अवधारण करती है तथा नागरिकों एवं राज्य के अधिकारों को भी निश्चित करती है । लोग न्यायालयों में आस्था एवं विश्वास इसलिए रखते हैं कि उन्हें न्याय उचित समय पर प्राप्त हो जाएगा । परंतु न्यायालयों की जरूरतमंद को शीघ्र एवं सारवान् न्याय देने में असमर्थता के कारण, लोगों में न्यायालय की गरिमा एवं विधि के प्रताप के प्रति विश्वास में निरंतर रूप से कमी हो रही है ।

विभिन्न स्तर के न्यायालयों में मामलों के लंबित होने की संख्या के लगातार बढ़ने के बहुत से कारण हैं । सन् 1989-90 में भारत सरकार ने माननीय न्यायाधीश श्री वी. एस. मलीमथ की अध्यक्षता में दो अन्य सदस्यों न्यायाधीश श्री पी. डी. देसाई तथा न्यायाधीश श्री ए. एस. आनन्द के साथ एक समिति का गठन किया, जिसका कार्य न्यायालयों में बकाया मामलों से न्याय प्रदान करने की गति में अवरोध की समस्या का बारीकी से अन्वेषण करना तथा सुझाव देना था ।

न्यायालयों में मामलों के लंबित होने की समस्या का सबसे बड़ा कारण स्वतंत्रता के पश्चात् सृजित सामाजिक कल्याण से जुड़े बहुत सारे अधिनियम थे तथा केंद्र एवं राज्य सरकारों तथा स्थानीय निकायों का बड़ी

* एलएल.एम., पी.एचडी, प्राचार्य, दिल्ली ग्रामीण विकास संस्थान, दिल्ली - 82. सदस्य - संपादक मंडल विधि साहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली ।

संख्या में मुकदमेबाज बनना रहा । भारत में विभिन्न न्यायालयों एवं अधिकरणों में चलने वाले कुल 3 करोड़ लंबित मामलों के 70% मामलों में केंद्र व राज्य सरकारें एक पक्षकार हैं, 2.1 करोड़ लंबित मामलों में सरकार के एक पक्षकार होने के कारण सरकार सबसे बड़ी मुकदमेबाज बन जाती है ।

अगला सैक्शन विधिशास्त्र तथा इंग्लिश न्यायिक व्यवस्था है जिसका हमने अनुसरण किया है, जिसमें न्यायालय में वाद के निपटारे तथा न्याय प्रदत्त व्यवस्था एवं संबंधित समस्याओं को सुलझाने के तरीकों की अच्छी प्रकार से व्याख्या की गई है । लेकिन सामाजिक कल्याण पर जोर देते हुए हमारे जैसे विकासशील देश को इंग्लिश व्यवस्था के परे जाकर न्याय प्रणाली में आमूल चूल परिवर्तन करने में असमर्थता ही रही है । इसी के कारण उच्चतम न्यायालय से लेकर सिविल न्यायालय एवं मजिस्ट्रेट तक की वर्तमान न्याय व्यवस्था लगभग टूटने के कगार पर पहुंच चुकी है ।

कुछ तथ्य

– यह सच है कि साढ़े तीन करोड़ के लगभग मामले जो अलग-अलग प्रकृति के हैं, देश के विभिन्न न्यायालयों में लंबित हैं ।

– यह भी कटु सत्य है कि इस बड़ी संख्या में लंबित मामलों में प्रतिदिन बढ़ोतरी हो रही है ।

– नए मामलों के दायर होने की संख्या बहुत अधिक है जबकि इसकी तुलना में मामलों के निपटारे की संख्या बहुत कम है ।

– एक मामले को साधारणतया कुछ महीने का समय लगना चाहिए, जबकि अंतिम तौर पर निपटाने में वर्षों लग जाते हैं ।

हमारी न्याय व्यवस्था ऐसी गंभीर एवं दुखद स्थिति के कारण वादी के पास कोई विकल्प नहीं बचता सिवाय इसके कि वह न्यायाधीश महोदय के अवकाश पर चले जाने के कारण या अधिवक्ताओं की हड़ताल के कारण अथवा मामले की सुनवाई के स्थगन की प्रार्थना के कारण या अधिवक्ता अथवा वादी या प्रतिवादी की बीमारी के कारण न्यायालयों के चक्कर लगाता रह जाता है ।

यह सत्य है कि व्यथित व्यक्ति को न्याय तो नहीं मिल पाता अपितु उसे मानसिक, आर्थिक तथा सामाजिक सम्मान का भी नुकसान भुगतना

पड़ता है । यह प्रस्तावित किया जाता है कि नए मामलों के दायर होने पर कुछ प्रतिबंध लगाया जाए तथा लंबित मामलों के शीघ्र निपटारे के प्रयास में तेजी लाई जाए ।

जिम्मेदारी किसकी ?

इसमें किसी प्रकार का कोई संशय नहीं है कि वर्तमान में जो न्याय व्यवस्था है उसमें कमियां हैं । यदि इससे संबंधित व्यक्ति इस व्यवस्था को अच्छा बनाना चाहते हैं तो उस स्थिति में यह व्यवस्था अच्छी हो सकती है । कमियां किसी वर्ग विशेष में नहीं हैं बल्कि सभी वर्गों में हैं । आम जनता और व्यवस्थापक न्याय प्रदान करने वाली इकाई अर्थात् न्यायालय को इसका दोषी मानते हैं, लेकिन केवल न्यायालय इसके लिए अकेले दोषी नहीं हैं । केवल न्यायपालिका ही नहीं, बल्कि विधायिका, कार्यपालिका, न्याय प्रणाली, अधिवक्तागण एवं मुकदमा दर्ज कराने वाली जनता सभी मामलों के लंबन एवं बकाया के लिए बराबर के जिम्मेदार हैं ।

विधायिका, जिसका कार्य विधि का प्रारूप तैयार करना है, इस प्रारूप के तैयार करने में पूर्ण रूप से सावधानी नहीं बरतती, यहां तक कि कुछ विधियों का प्रारूप कमजोर अथवा अपूर्ण भी रह जाता है ।

कार्यपालिका भी बराबर की जिम्मेदार है । किसी भी प्रकार का न्याय मिलने में देरी होने में अथवा मामले के न्यायालय में लंबित होने में कार्यपालिका बहुत से निर्णय जल्दबाजी में, बेईमानी पूर्ण, एवं अन्यायपूर्ण तरीके से करती है । काफी आदेश स्वच्छन्दतापूर्ण, अनुचित तथा विधि-विरुद्ध होते हैं जिससे आम जनता में भेदभावपूर्ण वातावरण उत्पन्न होता है । अपनी नीतियों को अनावश्यक रूप से एवं लगातार बदलते रहने के कारण मुकदमेबाजी की अधिक गुंजाइश रहती है । इसमें कोई शक नहीं है कि वर्तमान में सरकार सबसे बड़ी मुकदमेंबाज है ।

न्यायपालिका भी लंबन एवं बकाया के लिए कम जिम्मेदार नहीं है । पीठासीन अधिकारी अधिकतर मामलों में बिना किसी विशेष परेशानी के मामले को स्थगित कर देता है । कुछ मामले में तो यह स्थगन कई महीनों के लिए होता है । इस स्थगन का कोई भी न्यायोचित कारण नहीं होता । मामलों की भारी संख्या में बकायेदारी में पीठासीन अधिकारियों की कम संख्या और जो पीठासीन अधिकारी कार्यरत हैं उनकी अक्षमता, उदासीनता

तथा कुछ अधिकारियों का बेईमानीपूर्ण रवैया भी विशेष रूप से निचली अदालतों में, जिम्मेदार है ।

अधिवक्तागण भी मामलों के न्यायालय में लंबे समय तक लंबित रहने एवं बकायेदारी में अपना योगदान देते हैं । अनावश्यक स्थगन लेना, वाद को बिना किसी ठोस तथ्य के आधार पर दायर करना आदि बहुत से तरीके अपनाए जाते हैं जिनसे मामला लंबित रहता है या उसके अंतिम रूप से निर्णीत होने में विलंब होता है । ऐसे कुछ ही विद्वान् अधिवक्ता हैं जो अपने मुवक्किल को मामले की पूर्ण जानकारी के बाद सकारात्मक परामर्श देते हैं तथा मामले को न्यायालय में दायर न करने के लिए समझाते हैं ।

मुकदमा दायर करने वाली आम जनता भी सभी विलंबकारी तरीके अपनाती है जिससे कि मामले के निर्णय में देरी हो तथा उसका लाभ उनको मिल सके । बहुतायत में मुकदमा लड़ने वाले लोगों के लिए मुकदमा लड़ना एक शौक होता है और वह मुकदमा चाहे सही या गलत तथ्यों पर लड़ा जा रहा है वह लड़ते रहते हैं । यहां तक कि उनको यह भी अच्छी तरह पता होता है कि अंत में वह मुकदमा हार जाएंगे, लेकिन इस मनहूस दिन को वह अपने तर्क एवं कुतर्कों के सहारे टालते रहते हैं ।

आम तौर पर किसी भी मुकदमे को दायर करने तथा निर्णीत होने में 8 से 9 वर्ष का समय लग जाता है । सिविल वाद तो कई पीढ़ियों तक खिच जाता है तथा डिक्री पास होने का फल एक वादी अपने जीवनकाल में शायद ही चख पाता हो । यहां तक कि सेवा संबंधी कुछ मामले सेवानिवृत्ति के पश्चात् ही निर्णीत होते हैं । विशेष रूप से शीघ्र निर्णय से चिह्नित मामले भी न्यायालय में अधिक कार्य बोझ के कारण समय पर निर्णीत नहीं होते ।

आम जनता का न्यायपालिका में जो विश्वास है वह मामलों के लगातार लंबित होने के कारण टूट जाता है तथा न्यायिक प्रशासन की साख गिरने लगती है । साधारणतया समाज का ऊपरी वर्ग अर्थात् आर्थिक रूप से संपन्न वर्ग की यह आदत बन गई है कि वह हर विधान, संवैधानिक संशोधन, नियम, विनियम, आदेश या परियोजना को न्यायालय में चुनौती देने के लिए हमेशा तैयार रहता है तथा विधियों के सही समय पर निष्पादन में रोड़े अटकाता रहता है ।

कारण और उपचार

न्याय व्यवस्था और मामलों के लंबे समय तक न्यायालयों में लंबित रहने में बहुत सारे कारकों का सक्रिय योगदान होता है । ये कारक निम्नलिखित हैं :–

1. मामले जो न्यायालय में दायर होते हैं उनकी संख्या में असाधारण वृद्धि होना, न्याय में देरी का एक कारक है । यह वृद्धि दोषपूर्ण विधान जो जल्दबाजी में बनाए जाते हैं, स्वच्छन्दतः प्रशासनिक आदेश तथा लोगों में अपने अधिकारों के प्रति बढ़ती जागरूकता के कारण है ।

2. विधि में उपलब्ध अपील तथा पुनर्विचारण के बहुत ज्यादा अवसर के कारण भी न्याय मिलने में देरी होती है ।

3. आपराधिक न्याय व्यवस्था में देरी तथा मामलों का लंबन पुलिस तथा सरकारी गवाहों की गवाही समय पर न हो पाने के कारण होती है ।

4. स्थगन देने में ढिलाई बरतने के कारण न्यायालयों का कीमती समय बर्बाद होता है और जो मुवक्किल दूरस्थ स्थानों से पैरवी करने के लिए आते हैं उन्हें बहुत असुविधा होती है ।

5. उच्च न्यायालयों तथा उच्चतम न्यायालय में प्रक्रियात्मक तथा तकनीकी देरी के कारण निचली अदालतों का भी कार्य रुक जाता है तथा मामले लंबित पड़े रहते हैं ।

6. जनसंख्या के अनुपात में न्यायालयों की कमी तथा न्यायाधीशों एवं मजिस्ट्रेटों की संख्या अपर्याप्त होने से भी मामलों के निर्णयों में देरी होती है । भारत में 10 लाख लोगों पर 12.5 न्यायाधीश हैं जबकि अमेरिका में 10 लाख लोगों पर 104 न्यायाधीश हैं ।

7. पुलिस प्रशासन आए दिन अति विशिष्ट लोगों की सुरक्षा में लगा रहता है तथा कानून व्यवस्था बनाने में पूरा पुलिस अमला लगा दिया जाता है इससे मामलों के अन्वेषण में समय लग जाता है ।

8. उचित अवसंरचना तथा आधुनिक उपकरणों की बेहद कमी

के कारण भी न्याय व्यवस्था को सुचारू रूप से कार्यान्वित करने में परेशानी होती है ।

9. बिना किसी उचित कारणों से आए दिन होने वाली अधिवक्ताओं की हड़तालें भी मामलों के लंबन एवं बकाया का एक बड़ा कारण है ।

दांडिक न्याय के प्रशासन में मामलों के लंबन एवं देरी से कमजोरी आ जाती है तथा न्याय का पूर्णरूपेण मिलना संशय की श्रेणी में आ जाता है । तीव्र गति न्यायालय, लोक अदालत, विशेष न्यायालय, दिल्ली, गुजरात, आंध्र प्रदेश एवं तमिलनाडु में स्थापित साध्य न्यायालयों तथा अभिवाक् सौदा जैसी व्यवस्था उपलब्ध होने के कारण बकाया मामलों में कमी लाने के लिए अभी प्रयोग किया जा रहा है । अब समय आ गया है कि प्रत्येक श्रेणी के मामलों के निपटारे के लिए एक समय-सीमा निर्धारित की जाए तथा न्यायालय संभावित देरी के कारणों को समय रहते भांप लें तथा निर्धारित समय में निपटारे में आने वाली बाधाओं को दूर करने का प्रयास करें । यदि न्यायालय मामले की सुनवाई या कार्रवाई के स्थगन को आसानी से न करने का रिवाज बना लें, तब सभी संबंधित पक्षकारों, अधिवक्ताओं में यह संदेश पहुंच जाएगा कि न्यायालय किसी प्रकार के न्याय में देरी करने के तरीके को बर्दाश्त नहीं करेगा । यदि मामलों की लंबी सूची प्रतिदिन की सुनवाई के लिए जारी करने के स्थान पर कुछ मामलों की सूची प्रति सप्ताह सुनवाई एवं अंतिम निर्णय के लिए जारी की जाए, उस स्थिति में अधिक से अधिक मामलों में निर्णय हो सकेगा । जनसंख्या के अनुपात में नवीन न्यायालयों का गठन समय-समय पर करते रहना होगा तथा न्यायालयों को तीव्र गति से न्याय प्रदान करने के लिए सतर्क रहना पड़ेगा । ताकि उनकी उदासीनता का कोई पक्ष लाभ उठाकर मामले को विलंबित न कर पाए । "विधि दिवस" के एक अवसर पर उच्चतम न्यायालय के तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश श्री के. जी. बालकृष्णन् ने कहा था कि पिछले कुछ वर्षों में मामलों के विलंब तथा लंबन के विरुद्ध चलाए जा रहे अभियान को परिवृद्ध अवसंरचना, व्यवस्थापन के वैकल्पिक माध्यमों को अपनाने से तथा प्रशिक्षण एवं प्रबंधन के सामरिक तौर तरीके अपनाने से कुछ मामलों के समय रहते निपटारे में सफलता मिली है ।

मुकदमेबाजी एक महंगी प्रक्रिया है तथा इसमें समय लगता है ।

न्यायिक व्यवस्था को मुकदमेबाजी के वैकल्पिक तरीकों की भी खोज करते रहना चाहिए । संसद् ने हाल में व्यवहार (सिविल) प्रक्रिया संहिता, 1908 तथा दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 में संशोधन करके मुकदमेबाजी में लंबन तथा देरी की समस्या को समाप्त करने की दिशा में कुछ कानूनी कदम उठाए हैं जिनका प्रभाव आने वाले समय में दिखाई पड़ेगा । अनुकल्पिक विवाद संकल्प को एक आंदोलन के रूप में आगे बढ़ाकर उन गरीब वादकारियों को न्याय, विशेषरूप से प्रथम श्रेणी के न्यायालयों द्वारा, दिलाने का प्रयास किया जा रहा है । न्यायपालिका ने राष्ट्रीय स्तर पर एक कार्य योजना बनाई है जिसके अंतर्गत बीच-बचाव के माध्यम से विवाद के निपटारे के लिए बीच-बचाव करने वाले अधिकारियों का प्रशिक्षण, बीच-बचाव संबंधित नियम एवं प्रक्रिया पुस्तिका का बनाना, बीच-बचाव केंद्रों का स्थापन जोकि सिविल न्यायालय परिसरों में हों तथा विधिक सहायता एवं परामर्श सेवाओं के माध्यम से इस प्रक्रिया का वादकारियों में प्रचार-प्रसार तथा जागरूकता के कार्यक्रम लगातार करते रहना आदि सम्मिलित हैं ।

पूर्व में न्यायपालिका एवं केंद्र व राज्य सरकारों द्वारा लिए गए उपरोक्त कदमों के अतिरिक्त, वर्तमान में सरकार ने उच्च न्यायालयों तथा निचली अदालतों में न्यायधीशों की संख्या तीन गुना बढ़ाने का अहम फैसला लिया है । सरकार ने सभी जिला स्तर तथा निचली अदालतों को कंप्यूटरीकृत कर तथा सूचना एवं संचार तकनीक को उच्च न्यायालयों एवं उच्चतम न्यायालय में अति आधुनिक करने का निर्णय लिया है ताकि सभी संबंधित वर्गों को मामले की अद्यतन अवस्था की जानकारी हो सके । मामलों के निपटारे के लिए वैकल्पिक व्यवस्था जैसे बीच-बचाव, मध्यस्थता तथा बातचीत आदि को प्रोत्साहित करना चाहिए ।

तीव्र गति से मामलों के निपटारे की प्रक्रिया के प्रति आश्वस्त करते हुए सरकार ने सिविल प्रक्रिया संहिता में आशातीत संशोधन किए हैं जिसके अंतर्गत मामले के स्थगनों की संख्या निश्चित की गई है जो किसी भी पक्ष को न्यायालय द्वारा स्वीकृत किए जा सकते हैं जिन मामलों में विधि का सामान्य प्रश्न सम्मिलित हो, ऐसे मामलों का वर्गीकरण तथा कोटिकरण भी उच्च न्यायालयों में किया जा रहा है ताकि लंबित मामलों का तीव्रता से निपटारा किया जा सके ।

यह सत्य है कि मामलों के लंबन की एक वजह सत्ता का दुरुपयोग

भी है । न्यायिक सुधार के द्वारा ही लंबन की समस्या को सुलझाया जा सकता है । वकीलों की संगठित हड़तालों द्वारा लंबित मामलों की संख्या बढ़ती जा रही है । उत्तर प्रदेश में उच्च न्यायालय की पीठ पश्चिमी उत्तर प्रदेश में भी स्थापित करने के लिए समूचे पश्चिमी उत्तर प्रदेश के जिलों में पिछले बीस वर्षों से एक दिन की सांकेतिक हड़ताल चल रही है जिसका सीधा प्रभाव मामलों के निपटारों पर पड़ता है ।

सभी स्तर पर सेवा संबंधी मामले, श्रम एवं औद्योगिक विवाद, कराधान विधि, प्रत्यक्ष एवं परोक्ष कर, किराएदारी संबंधित मामले, भवन संबंधी संविदाएं आदि को न्यायालय के समक्ष दायर न करके अधिकरण द्वारा न्यायनिर्णीत कराया जाना चाहिए ।

बहस की समय सीमा का निर्धारण, सीमित स्थगन, विस्तृत निर्णय सूक्ष्म कारणों के साथ तथा पुनर्विचार मामलों को संक्षिप्त तरीके से निपटारे से लंबन की समस्या न्यायालयों तथा अधिकरणों के सभी स्तरों पर कम हो सकती है । प्रतिवादी के रूप में सरकार आज की तारीख में सबसे बड़ी संख्या में एक पक्षकार है । कर संबंधी मामलों में सरकार अपीलकर्ता या प्रार्थी है, यदि सरकार लंबन की संख्या कम करने की दिशा में सकारात्मक सोच से काम ले तो यह परेशानी धीरे-धीरे समाप्त या बहुत कम हो सकती है । सरकार के स्तर पर बहुत कुछ किया जा सकता है । यदि कोई वादकारी अनुच्छेद 226 या वाद के द्वारा सरकार को न्यायालय में नहीं घसीटता, तब तक सरकार को अपनी तरफ से मुकदमा दायर नहीं करना चाहिए, सिवाय उन मामलों में जहां नीति संबंधी कोई फैसला शासन के स्तर पर न लिया गया हो । प्रशासनिक अधिकरणों का गठन बहुत से स्तरों पर करने से वादकारी को कार्यपालिका के कार्य द्वारा ही सारवान् न्याय मिल जाएगा ।

मामलों के बकाए के बिंदु पर जो राष्ट्रीय कार्यक्रम, बहुआयामी तथा बहु योजनाबद्ध की शुरुआत हुई है उसके कुछ अच्छे परिणाम सामने आने लगे हैं । केंद्र एवं राज्य सरकारों के सहयोग तथा बार एवं वादकारी जनता के समर्थन से आने वाले कुछ वर्षों में एक सारवान् कमी उन मामलों में दिखाई देगी जो न्यायालय में लंबित हैं और लगातार नए मामलों के दाखिल होने के बावजूद लंबित मामलों के निपटारों में तेजी से वृद्धि हो

तथा लंबित मामलों की संख्या कम होती चली जाएगी ।

निष्कर्ष

मामलों के व्ययन के तरीकों में बड़ा परिवर्तन संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन है तथा मामलों का अच्छा प्रबंधन इस प्रक्रिया को रोक सकता है । यह सोचना कि मामलों के बकाए तथा लंबन की पूर्व की संख्या को समाप्त करने में दसियों वर्ष लगेंगे जो मनमाने प्रबंधन के कारण उत्पन्न हुआ, यह ठीक नहीं है । एक अच्छे प्रबंधन की अत्यधिक आवश्यकता है जो मामलों को कंप्यूटर के द्वारा सूचीबद्ध करे, पूर्व निर्धारित तर्कों के आधार पर निर्णीत हों, न्यायाधीशों को किसी भी कार्यक्रम के सर्वोपरि जाकर 5% तक उसमें बदलाव करने की छूट हो । ऐसा करने से मनमाने ढंग से कार्य करने में कमी आएगी तथा न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 14 में निहित भावनाओं का पालन करेंगे तथा अपनी कार्यशैली में उसी के अनुसार बदलाव कर लेंगे । निचली अदालतों में न्यायाधीशों की संख्या बढ़ाकर तथा तीव्र न्याय करने वाले न्यायालयों का गठन करके न्यायालयों में लंबित मामलों की संख्या को अवश्य ही कम किया जा सकता है ।

———

यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेन्स कंपनी लि., मेरठ

बनाम

हरेशवर सिंह और अन्य

तारीख 12 अक्तूबर, 2011

न्यायमूर्ति पंकज मित्तल

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59) – धारा 140(2) – दुर्घटना दावा – अंतरिम प्रतिकर – संशोधन द्वारा स्थायी क्षति के मामले में अंतरिम प्रतिकर 12,500/- रुपए से बढ़ाकर 25,000/- रुपए किया जाना – भूतलक्षी या भविष्यलक्षी प्रभाव – संशोधन केवल संशोधन के पश्चात् की घटनाओं को ही लागू होगा न कि संशोधन के पूर्व की घटनाओं को ।

यह अपील 1995 के मोटर दुर्घटना दावा सं. 53 में मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण द्वारा तारीख 14 फरवरी, 1996 को पारित अंतरिम अधिनिर्णय के विरुद्ध फाइल की गई है । अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – यह स्वीकृत स्थिति है कि स्थायी क्षति के मामले में आरंभतः दोष न होने पर दायित्व केवल 12,500/- रुपए की सीमा तक था । इसे तारीख 14 नवम्बर, 1994 से बढ़ाकर 25,000/- रुपए कर दिया गया है । संशोधन भूतलक्षी प्रकृति का नहीं होता है । अतः धारा 140(2) का संशोधित उपबंध ऐसी किसी दुर्घटना को लागू नहीं होगा जो संशोधन की तारीख अर्थात् तारीख 14 अगस्त, 1994 से पूर्व घटित हुई हो । पूर्वोक्त तथ्यों और परिस्थितियों को दृष्टिगत करते हुए, न्यायालय का यह मत है कि अधिकरण ने उस दुर्घटना में जो तारीख 14 अगस्त, 1994 को हुई थी, स्थायी क्षति पहुंचने के मामले में 25,000/- रुपए के अंतरिम प्रतिकर को अधिनिर्णीत करने में विधि की गंभीर गलती की है सुसंगत तारीख को दोष न होने के दायित्व के आधार पर अंतरिम प्रतिकर 12,500/- रुपए की सीमा तक स्वीकार्य था । उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, अपील मंजूर की जाती है । तारीख 14 फरवरी, 1996 को पारित

अंतरिम अधिनिर्णय को उपांतरित किया जाता है और इस निदेश के साथ 12,500/- रुपए तक सीमित किया जाता है कि 12,500/- रुपए की शेष धनराशि जिसे तारीख 21 मई, 1996 के इस न्यायालय के अंतरिम आदेश के अनुसरण में जमा किया गया था, जमा रहेगी और दावा याचिका के अंतिम विनिश्चय द्वारा समायोजित की जाएगी । (पैरा 7, 8, 11 और 12)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2010]	2010 (3) टी. ए. सी. 879 (उड़ीसा) : **डिवीजनल मैनेजर, यूनाईटेड इंश्योरेन्स कंपनी लि.** बनाम **नागेन्द्र सेठी और अन्य** ;	9
[2008]	ए. आई. आर. 2008 एस. सी. 2276 : **पंजाब राज्य और अन्य** बनाम **भजन कौर और अन्य** ।	10

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 1996 की प्रथम अपील संख्या 379.

मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 173 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से — सर्वश्री एस. के. जयसवाल, एस. के. महरोत्रा और अर्चित महरोत्रा

दावेदारों की ओर से — श्री रंजीत कुमार मिश्रा

न्यायमूर्ति पंकज मित्तल – प्रतिवादी-अपीलार्थी की ओर से श्री एस. के. महरोत्रा और श्री अर्चित महरोत्रा तथा दावेदार-प्रत्यर्थियों की ओर से श्री रंजीत कुमार मिश्रा के पक्ष धारक श्री राजेश कुमार मिश्रा को सुना ।

2. यह अपील 1995 के मोटर दुर्घटना दावा सं. 53 में मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण द्वारा तारीख 14 फरवरी, 1996 को पारित अंतरिम अधिनिर्णय के विरुद्ध फाइल की गई है ।

3. दुर्घटना तारीख 14 अगस्त, 1994 को घटित हुई थी और दावा याचिका 1995 में फाइल की गई थी । तारीख 14 फरवरी, 1996 को आक्षेपित आदेश द्वारा 25,000/- रुपए की धनराशि अधिनियम की धारा 166 के अधीन दावे के अंतिम न्यायनिर्णयन के अध्यधीन रहते हुए दोष न होने के आधार पर दायित्व के कारण मोटर यान अधिनियम 1988 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "अधिनियम" कहा गया है) की धारा 140 के अधीन अधिनिर्णीत की गई थी ।

4. यह उल्लेख किया जा सकता है कि अधिनियम की धारा 166 के अधीन दावा वर्तमान अपील में अंतरिम आदेश के प्रवर्तन के कारण संभवतः अंतिम रूप से न्यायनिर्णीत किया जा चुका है ।

5. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल श्री महरोत्रा ने यह दलील दी है कि अधिनियम की धारा 140(2) के अधीन 25,000/- रुपए अधिनिर्णीत करने का उपबंध 1994 के अधिनियम संख्या 54 द्वारा तारीख 14 नवम्बर, 1994 को संशोधन द्वारा किया गया है जिसके द्वारा स्थायी क्षति के मामले में दोष न होने पर दायित्व की सीमा 12,500/- रुपए से बढ़ाकर 25,000/- रुपए कर दी गई थी ।

6. दुर्घटना तारीख 14 अगस्त, 1994 को हुई थी और इसलिए संशोधित उपबंध लागू नहीं होगा और इसलिए अधिकरण ने 25,000/- रुपए का अंतरिम अधिनिर्णय पारित करके गलती की है ।

7. यह स्वीकृत स्थिति है कि स्थायी क्षति के मामले में आरंभतः दोष न होने पर दायित्व केवल 12,500/- रुपए की सीमा तक था । इसे तारीख 14 नवम्बर, 1994 से बढ़ाकर 25,000/- रुपए कर दिया गया है ।

8. संशोधन भूतलक्षी प्रकृति का नहीं होता है । अतः धारा 140(2) का संशोधित उपबंध ऐसी किसी दुर्घटना को लागू नहीं होगा जो संशोधन अर्थात् तारीख 14 अगस्त, 1994 से पूर्व घटित हुई हो ।

9. उड़ीसा उच्च न्यायालय ने **डिवीजनल मैनेजर, यूनाईटेड इंश्योरेंस कंपनी लि.** बनाम **नागेन्द्र सेठी और अन्य**[1] वाले मामले में एक ऐसे ही विवाद पर विचार करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि जहां कोई दुर्घटना तारीख 14 अगस्त, 1994 से पूर्व अर्थात् संशोधन से पूर्व हुई है वहां संशोधित उपबंध तारीख 14 नवम्बर, 1994 से अर्थात् संशोधन से पूर्व लागू नहीं होगा क्योंकि संशोधन भूतलक्षी प्रकृति का नहीं होता है ।

10. उच्चतम न्यायालय ने भी **पंजाब राज्य और अन्य** बनाम **भजन कौर और अन्य**[2] वाले मामले में यह अधिकथित किया है कि 1994 के अधिनियम संख्या 54 द्वारा अधिनियम की धारा 140 में किया गया संशोधन जो तारीख 14 नवम्बर, 1994 को किया गया है, भूतलक्षी नहीं है और वह उपर्युक्त तारीख से पूर्व की दुर्घटना को लागू नहीं होगा ।

---

[1] 2010 (3) टी. ए. सी. 879 (उड़ीसा).

[2] ए. आई. आर. 2008 एस. सी. 2276.

11. पूर्वोक्त तथ्यों और परिस्थितियों को दृष्टिगत करते हुए, न्यायालय का यह मत है कि अधिकरण ने उस दुर्घटना में जो तारीख 14 अगस्त, 1994 को हुई थी, स्थायी क्षति पहुंचने के मामले में 25,000/- रुपए के अंतरिम प्रतिकर को अधिनिर्णीत करने में विधि की गंभीर गलती की है । सुसंगत तारीख को दोष न होने के दायित्व के आधार पर अंतरिम प्रतिकर 12,500/- रुपए की सीमा तक स्वीकार्य था ।

12. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, अपील मंजूर की जाती है । तारीख 14 फरवरी, 1996 को पारित अंतरिम अधिनिर्णय को उपांतरित किया जाता है और इस निदेश के साथ 12,500/- रुपए तक सीमित किया जाता है कि 12,500/- रुपए की शेष धनराशि जिसे तारीख 21 मई, 1996 के इस न्यायालय के अंतरिम आदेश के अनुसरण में जमा किया गया था, जमा रहेगी और दावा याचिका के अंतिम विनिश्चय द्वारा समायोजित की जाएगी ।

अपील मंजूर की गई ।

मही./मह.

(2014) 1 सि. नि. प. 158 **इलाहाबाद**

मदन लाल और एक अन्य

बनाम

उप-निदेशक चकबन्दी, बदायूं और अन्य

तारीख 6 जनवरी, 2012

न्यायमूर्ति ए. पी. साही

उत्तर प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम, 1901 – धारा 33 और 34 – भू-धृतिधारक की मृत्यु – नामांतरण – पी. ए.-11 के अधीन राजस्व कर्मचारियों द्वारा प्रविष्टियां – विधिमान्यता – नामांतरण की ऐसी प्रविष्टियां हकदारी प्रदत्त करने वाली घोषणा के रूप में नहीं होती हैं और यह संक्षिप्त कार्यवाहियां होने के कारण कानूनी प्राधिकारियों के आदेशों के अध्यधीन रहती हैं ।

चकबन्दी क्रियाएं उत्तर प्रदेश जोत चकबन्दी अधिनियम, 1953 के उपबंधों के अधीन आरम्भ हुई थीं और तद्नुसार याचियों द्वारा अपनी तारीख

1 नवम्बर, 1991 की रजिस्ट्रीकृत विल के आधार पर विवादित भूमि पर अपने हक का दावा करते हुए आक्षेप फाइल किए गए थे । चकबन्दी अधिकारी ने आक्षेप स्वीकार करते हुए याचियों को वेदराम का उत्तराधिकारी माना । अपील में बन्दोबस्त अधिकारी द्वारा चकबन्दी अधिकारी का आदेश अपास्त किया गया था और इसलिए पुनरीक्षण फाइल किया गया था जिसे उप-निदेशक चकबन्दी ने खारिज कर दिया, जिससे व्यथित होकर संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन यह सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका फाइल की गई । रिट याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – नामांतरण विशेषतया स्थावर संपत्ति के संबंध में कोई आदेश आधारतया कर-संबंधी प्रयोजन के लिए होता है । नामांतरण की कोई राजस्व प्रविष्टि हकदारी प्रदत्त करने वाली घोषणा के रूप में नहीं होती है । यह ज्यादा से ज्यादा प्रथमदृष्ट्या हकदारी के धारक का संकेत है । इसका कारण यह है कि नामांतरण का कोई आदेश पारित करते हुए न्यायालय के समक्ष हकदारी का न्यायनिर्णयन नहीं होता है । अतः, यह किसी सक्षम न्यायालय द्वारा किसी घोषणा या न्यायनिर्णयन के अध्यधीन संक्षिप्त कार्यवाही है । यदि यह उपधारित किया जाए कि नामांतरण की शक्तियां सौंपे जाने पर राजस्व कर्मचारियों को ऐसा प्राधिकार मिल जाता है तो यह उसे मध्यस्थ के प्राधिकार के साथ नियुक्त करने के बराबर होगा जो कि सामान्यतया ऐसे मामलों में नहीं होता है । किसी लेखपाल या किसी अधीनस्थ राजस्व कर्मचारी या किसी अभिलेखापाल को न्यायनिर्णयन का प्राधिकार नहीं सौंपा जाता है और इसलिए उसके द्वारा की गई प्रविष्टि एक संक्षिप्त कार्रवाई है जो इसके लिए सम्यक्तः प्राधिकृत कानूनी प्राधिकारियों के आदेशों के अध्यधीन होती है । न्यायालय के मतानुसार भी नामांतरण का कोई आदेश प्रत्ययकारी महत्व का होता है तथापि, नियमित कार्यवाहियों में हकदारी के मामले को विनिश्चित करने वाला न्यायालय साक्ष्य के मूल्यांकन के लिए स्वतंत्र रूप से कार्यवाही करके स्वयं अपने निष्कर्ष निकाल सकता है । इसका यह अर्थ नहीं है कि साक्ष्य की उपेक्षा की जाएगी अपितु इसका यह अर्थ है कि किसी मूल विचारण करने वाले न्यायालय की अधिकारिता में ऐसी किसी संक्षिप्त प्रकृति के आदेशों को विश्वसनीय मानने या अविश्वसनीय मानने की शक्ति सम्मिलित है जिन्हें साक्ष्य के रूप में मानने के लिए बल दिया जा सकता है । ऐसे साक्ष्य की ग्राह्यता और सुसंगतता किसी सक्षम अधिकारिता वाले न्यायालय के समक्ष नियमित अधिकारिता पर हकदारी से संबंधित कार्यवाहियों में इसे स्वीकार करने या आबद्ध होने के मुकाबले पूर्ण रूप से भिन्न विषय है । न्यायालय की अधिकारिता की पुष्टि के लिए यह आवश्यक है कि ऐसे किसी साक्ष्य

पर स्वतंत्र रूप से विचार किया जाए जो राजस्व विधि के अधीन प्रविष्टियों के संबंध में कोई उपधारणा बनाने के लिए उसे किसी लोक दस्तावेज के रूप में पेश किया जाए । भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 न्यायालय को वहां लोक दस्तावेज को सुसंगत मानने के लिए समर्थ बनाता है जहां वे विवाद्यक के तथ्यों से संबद्ध हों । तद्नुसार यह मत कि संक्षिप्त प्रकृति का आदेश किसी भी प्रकार से सुसंगत नहीं होगा, विधि की सही स्थिति नहीं है । इसका आबद्धकर प्रभाव नहीं हो सकता तथापि, इसे साक्ष्य के रूप में पेश किया जा सकता है और इसके संबंध में खंडनीय उपधारणा उत्पन्न की जा सकती है । इसे आगे स्पष्ट करने के लिए यह उल्लेख किया जा सकता है कि किसी स्थावर संपत्ति की कुर्की के लिए दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 145 और 146 के अधीन कार्यवाहियां पक्षकारों के अधिकारों का नियमित न्यायालय में विनिश्चय होने तक पक्षकार का कब्जा बनाए रखने के लिए समर्थ बनाने के प्रयोजन से संक्षिप्त प्रकृति की होती हैं । ऐसे आदेश की जो मजिस्ट्रेट द्वारा पारित किए जाते हैं, सुसंगत होते हैं । (पैरा 10, 11 और 12)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2004]	(2004) 1 एस. सी. सी. 438 : **शान्ति कुमार पंडा** बनाम **शकुन्तला देवी** ;	12
[1979]	1979 ए. डब्ल्यू. सी. 299 : **अलगू और अन्य** बनाम **उप-निदेशक चकबन्दी, जौन पुर और अन्य** ;	9
[1973]	1973 ए. डब्ल्यू. आर. 279 : **भूरे** बनाम **पीर बख्श और अन्य** ;	9
[1972]	1972 ए. डब्ल्यू. सी. 302 : **राजपति और एक अन्य** बनाम **उप-निदेशक चकबन्दी, आज़मगढ़ और अन्य** ।	9

आरम्भिक (सिविल) प्रकीर्ण रिट अधिकारिता : 2011 की सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका सं. 53800.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका ।

याचियों की ओर से श्री राम शंकर मिश्रा

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री सी. बी. कुशवाहा

न्यायमूर्ति ए. पी. साही – याचियों की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री आर. एस. मिश्रा को सुना ।

2. वंशावली जो रिट याचिका के पैरा 5 में उपदर्शित की गई है और जो वर्तमान संविवाद को समझने के लिए आवश्यक है, इस प्रकार है :–

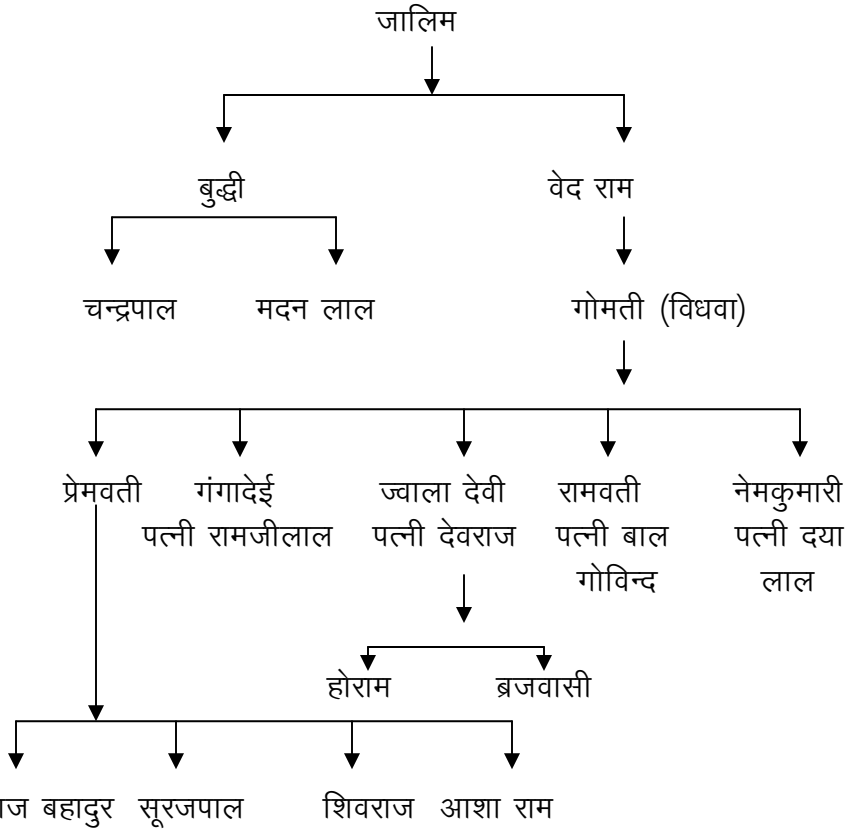

3. याची मृतक वेद राम के भतीजे हैं । हमारे समक्ष के प्रत्यर्थियों ने वेद राम की विधवा गोमती के द्वारा अपने अधिकारों का दावा किया है । प्रत्यर्थियों ने एक विल पेश की है जिसके बारे में यह कहा गया है कि यह वेद राम द्वारा तारीख 1 नवम्बर, 1991 को निष्पादित और रजिस्ट्रीकृत कराई गई थी । उन्होंने यह अभिकथन किया है कि वेद राम की तारीख 2 नवम्बर, 1991 को मृत्यु हो गई है । वेद राम की विधवा गोमती का नाम

चकबन्दी क्रियाओं से पहले ही राजस्व कर्मचारियों द्वारा पी. ए.-11 के अधीन दी गई रिपोर्ट के आधार पर राजस्व अभिलेखों में नामांतरित कर दिया गया था । तथापि, यह अभिकथित किया गया है कि उक्त नामांतरण पर रोक लगा दी गई है । यह कहा गया है कि गोमती ने तारीख 10 जनवरी, 1992 और 15 जनवरी, 1992 को प्रत्यर्थी सं. 3 से 13 के हक में विक्रय-विलेख निष्पादित कर दिए थे । याचियों ने यह दावा किया है कि उन्होंने उक्त विक्रय-विलेखों के रद्दकरण के लिए विद्वान् सिविल न्यायाधीश के समक्ष 2010 का मूल वाद सं. 47 फाइल किया है जो लंबित होना बताया गया है ।

4. चकबन्दी क्रियाएं उत्तर प्रदेश जोत चकबन्दी अधिनियम, 1953 के उपबंधों के अधीन आरम्भ हुई थीं और तद्नुसार याचियों द्वारा अपनी तारीख 1 नवम्बर, 1991 की रजिस्ट्रीकृत विल के आधार पर विवादित भूमि पर अपने हक का दावा करते हुए आक्षेप फाइल किए गए थे ।

5. मामले में कार्यवाही की गई थी और प्रताप सिंह नामक व्यक्ति को जिसके बारे में विल का सत्यापन साक्षी होना कहा गया है, पेश किया गया था और उसका कथन अभिलिखित किया गया था और उसके पश्चात् उसकी प्रतिपरीक्षा की गई थी । चकबन्दी अधिकारी ने अपने तारीख 21 दिसम्बर, 2009 के आदेश द्वारा सत्यापन साक्षी के कथन को स्वीकार करते हुए याचियों द्वारा फाइल आक्षेप स्वीकार कर लिए और यह अभिनिर्धारित किया कि याची, वेद राम की जोतों का उत्तराधिकार पाने की हकदार है ।

6. यह उल्लेखनीय है कि इस बीच चकबन्दी अधिकारी द्वारा तारीख 17 मार्च, 2003 को एकपक्षीय आदेश पारित किया गया था जिसे तारीख 25 नवम्बर, 2003 को वापस ले लिया गया था । चकबन्दी अधिकारी ने अत्यन्त गूढ़ रीति में विवाद्यक सं. 1, 2, 3 और 4 को अंतिम रूप से विनिश्चित करते हुए तारीख 22 दिसम्बर, 2009 के आदेश द्वारा अपने निष्कर्ष अभिलिखित किए । प्रत्यर्थियों ने उक्त आदेश से व्यथित होकर अपील फाइल की । बन्दोबस्त अधिकारी, चकबन्दी ने सत्यापन साक्षी के कथन का मूल्यांकन करने के पश्चात् इस आशय का स्पष्ट निष्कर्ष अभिलिखित किया कि साक्षी विल को साबित करने में विफल रहा है क्योंकि उसका कथन अपने आप में विरोधाभासी है और दूसरे सत्यापन साक्षी नैन सुख को पेश नहीं किया गया है जिसकी मृत्यु होना बताया गया है । विल के निष्पादन को साबित करने के लिए अन्य कोई साक्षी पेश नहीं किया गया है । विल के लेखक रमेश चन्द्र मिश्रा को भी पेश नहीं किया गया है । अपील न्यायालय ने मृत्यु प्रमाणपत्र के रूप में अतिरिक्त साक्ष्य

को भी ग्रहण किया है जिससे यह उपदर्शित होता है कि वेद राम की मृत्यु तारीख 2 अप्रैल, 1991 को हुई थी न कि तारीख 2 नवम्बर, 1991 को । तद्नुसार अपील न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि वह मृत्यु प्रमाणपत्र जिसका चकबन्दी अधिकारी ने अवलंब लिया है, विवादित हो गया है और इसलिए विल कूटरचित और बाद में तैयार की गई प्रतीत होती है । प्रत्यर्थियों ने अपील न्यायालय के आदेश से व्यथित होकर पुनरीक्षण फाइल किया जो उप-निदेशक, चकबन्दी द्वारा खारिज कर दिया गया ।

7. याचियों के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि उप-निदेशक, चकबन्दी इन निष्कर्षों का विश्लेषण करने में विफल रहा है और मात्र पुष्टि का आदेश पारित किया है और इसलिए आक्षेपित आदेश अपास्त किए जाने योग्य है । उन्होंने यह भी दलील दी कि मृत्यु प्रमाणपत्र को जिसका याचियों द्वारा अवलंब लिया गया है, अपील प्रक्रम पर फाइल किए गए पश्चात्वर्ती मृत्यु प्रमाणपत्र के आधार पर अविश्वसनीय नहीं माना जाना चाहिए । इसलिए उन्होंने यह दलील दी कि बन्दोबस्त अधिकारी, चकबन्दी का आदेश भी पूर्ण रूप से त्रुटिपूर्ण है ।

8. याचियों के विद्वान् काउंसेल को सुनने के पश्चात् याचियों द्वारा चकबन्दी अधिकारी के समक्ष दी गई यह दलील कि राजस्व प्राधिकारियों द्वारा उत्तर प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम, 1901 की धारा 33/34 के अधीन नामांतरण के लिए पारित आदेश संक्षिप्त कार्यवाहियां हैं, प्रथमदृष्ट्या स्वीकार नहीं की जा सकतीं । गोमती के हक में नामांतरण की कोई सुसंगतता नहीं है ।

9. यह सही है कि नामांतरण के आदेश संक्षिप्त प्रकृति के हैं किन्तु भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 के निबंधनों में उनकी सुसंगतता कम-से-कम कब्जे के प्रयोजन के लिए विचार में ली जानी चाहिए न कि हकदारी के न्यायनिर्णयन के प्रयोजन के लिए । इस विवाद्यक पर कि कार्यवाहियों के मुकाबले नामांतरण आदेश का क्या प्रभाव है, **भूरे** बनाम **पीर बख्श और अन्य**[1] वाले मामले में विचार किया गया था और इस विवाद्यक पर **अलगू और अन्य** बनाम **उप-निदेशक, चकबन्दी, जौनपुर और अन्य**[2] वाले मामले में खंड न्यायपीठ के समक्ष एक निर्देश में भी विचार किया गया था और इससे संबंधित विधि को **राजपति और एक अन्य** बनाम **उप-निदेशक चकबन्दी, आज़मगढ़ और अन्य**[3] वाले मामले में दोहराया गया था । उपर्युक्त विनिश्चयों

---

[1] 1973 ए. डब्ल्यू. आर. 279.

[2] 1979 ए. डब्ल्यू. सी. 299.

[3] 1972 ए. डब्ल्यू. सी. 302.

के परिशीलन मात्र से यह उपदर्शित होता है कि नामांतरण आदेशों की सुसंगतता को कब्जे के प्रयोजन के लिए विचार में लिया जाएगा भले ही यह हकदारी के न्यायनिर्णयन के प्रयोजन के लिए आबद्धकर हो ।

10. नामांतरण विशेषतया स्थावर संपत्ति के संबंध में कोई आदेश आधारतया कर-संबंधी प्रयोजन के लिए होता है । नामांतरण की कोई राजस्व प्रविष्टि हकदारी प्रदत्त करने वाली घोषणा के रूप में नहीं होती है । यह ज्यादा से ज्यादा प्रथमदृष्ट्या हकदारी के धारक का संकेत है । इसका कारण यह है कि नामांतरण का कोई आदेश पारित करते हुए न्यायालय के समक्ष हकदारी का न्यायनिर्णयन नहीं होता है । अतः, यह किसी सक्षम न्यायालय द्वारा किसी घोषणा या न्यायनिर्णयन के अध्यधीन संक्षिप्त कार्यवाही है । यदि यह उपधारित किया जाए कि नामांतरण की शक्तियां सौंपे जाने पर राजस्व कर्मचारियों को ऐसा प्राधिकार मिल जाता है तो यह उसे मध्यस्थ के प्राधिकार के साथ नियुक्त करने के बराबर होगा जो कि सामान्यतया ऐसे मामलों में नहीं होता है । किसी लेखपाल या किसी अधीनस्थ राजस्व कर्मचारी या किसी अभिलेखापाल को न्यायनिर्णयन का प्राधिकार नहीं सौंपा जाता है और इसलिए उसके द्वारा की गई प्रविष्टि एक संक्षिप्त कार्रवाई है जो इसके लिए सम्यक्तः प्राधिकृत कानूनी प्राधिकारियों के आदेशों के अध्यधीन होती है ।

11. मेरे मतानुसार भी नामांतरण का कोई आदेश प्रत्ययकारी महत्व का होता है तथापि, नियमित कार्यवाहियों में हकदारी के मामले को विनिश्चित करने वाला न्यायालय साक्ष्य के मूल्यांकन के लिए स्वतंत्र रूप से कार्यवाही करके स्वयं अपने निष्कर्ष निकाल सकता है । इसका यह अर्थ नहीं है कि साक्ष्य की उपेक्षा की जाएगी अपितु इसका यह अर्थ है कि किसी मूल विचारण करने वाले न्यायालय की अधिकारिता में ऐसी किसी संक्षिप्त प्रकृति के आदेशों को विश्वसनीय मानने या अविश्वसनीय मानने की शक्ति सम्मिलित है जिन्हें साक्ष्य के रूप में मानने के लिए बल दिया जा सकता है । ऐसे साक्ष्य की ग्राह्यता और सुसंगतता किसी सक्षम अधिकारिता वाले न्यायालय के समक्ष नियमित अधिकारिता पर हकदारी से संबंधित कार्यवाहियों में इसे स्वीकार करने या आबद्ध होने के मुकाबले पूर्ण रूप से भिन्न विषय है । न्यायालय की अधिकारिता की पुष्टि के लिए यह आवश्यक है कि ऐसे किसी साक्ष्य पर स्वतंत्र रूप से विचार किया जाए जो राजस्व विधि के अधीन प्रविष्टियों के संबंध में कोई उपधारणा बनाने के लिए उसे किसी लोक दस्तावेज के रूप में पेश किया जाए । भारतीय साक्ष्य

अधिनियम, 1872 न्यायालय को वहां लोक दस्तावेज को सुसंगत मानने के लिए समर्थ बनाता है जहां वे विवाद्यक के तथ्यों से संबद्ध हों । तद्नुसार यह मत कि संक्षिप्त प्रकृति का आदेश किसी भी प्रकार से सुसंगत नहीं होगा, विधि की सही स्थिति नहीं है । इसका आबद्धकर प्रभाव नहीं हो सकता तथापि, इसे साक्ष्य के रूप में पेश किया जा सकता है और इसके संबंध में खंडनीय उपधारणा उत्पन्न की जा सकती है ।

12. इसे आगे स्पष्ट करने के लिए यह उल्लेख किया जा सकता है कि किसी स्थावर संपत्ति की कुर्की के लिए दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 145 और 146 के अधीन कार्यवाहियां पक्षकारों के अधिकारों का नियमित न्यायालय में विनिश्चय होने तक पक्षकार का कब्जा बनाए रखने के लिए समर्थ बनाने के प्रयोजन से संक्षिप्त प्रकृति की होती हैं । ऐसे आदेश भी जो मजिस्ट्रेट द्वारा पारित किए जाते हैं, सुसंगत होते हैं जैसा कि उच्चतम न्यायालय द्वारा **शान्ति कुमार पंडा** बनाम **शकुन्तला देवी**[1] वाले मामले में अभिनिर्धारित किया गया है ।

13. वर्तमान मामले में ऐसे आदेशों की सुसंगतता इसलिए है क्योंकि याचियों ने तुरन्त कोई कार्यवाही नहीं की और अपने आक्षेप फाइल करने के लिए चकबन्दी क्रियाएं आरम्भ होने की प्रतीक्षा करते रहे । बन्दोबस्त अधिकारी, चकबन्दी ने भी चकबन्दी अधिकारी के आदेश को उलटते हुए इस तथ्य की अवेक्षा की है ।

14. मुख्य विवाद्यक याचियों द्वारा विल को साबित करने से संबंधित हैं । भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 68 के उपबंध विल के निष्पादन से संबंधित सभी संदेहों को दूर करने के लिए विल को साबित करने की अपेक्षा करते हैं ।

15. वर्तमान मामले में याचियों के साक्षी जो सत्यापन साक्षी है, अर्थात् प्रताप सिंह ने ऐसी रीति में तथ्यों का उल्लेख किया है जिन्हें बन्दोबस्त अधिकारी, चकबन्दी ने गंभीर विरोधाभास उपदर्शित होने के रूप में अभिलिखित किया है जो विल के निष्पादन के संबंध में गंभीर संदेह उत्पन्न करते हैं । इसी सत्यापन साक्षी ने एक शपथपत्र फाइल किया था जिसमें उसने ऐसे किसी निष्पादन से इनकार किया है और यह शपथपत्र साक्षी का प्राइवेट दस्तावेज माना गया है । उक्त शपथपत्र स्पष्ट रूप से प्रत्यर्थियों के इस कथन को साबित करता है कि विल वेद राम की मृत्यु की तारीख के आस-पास किसी समय तैयार की गई है । अतः यह बात गंभीर संदेह

---

[1] (2004) 1 एस. सी. सी. 438.

उत्पन्न करती है और विल को संदेह के घेरे में लाती है जिसे याचियों ने किसी अतिरिक्त साक्ष्य द्वारा स्पष्ट नहीं किया है । अतः मेरी राय में, बन्दोबस्त अधिकारी चकबन्दी ने प्रताप सिंह के उक्त कथन पर गहराई से विचार करने के पश्चात् यह ठीक ही निष्कर्ष निकाला है कि विल सत्यापन साक्षी द्वारा साबित नहीं की गई है और चूंकि इसका निष्पादन पूर्ण रूप से संदेहास्पद है इसलिए याची इसका फायदा नहीं ले सकते ।

16. बन्दोबस्त अधिकारी चकबन्दी द्वारा दिए गए अन्य कारणों में से एक यह है कि विल में इस बाबत कोई स्पष्टीकरण नहीं है कि वेद राम की पुत्रियों को उत्तराधिकार से बाहर क्यों किया गया । इस बाबत श्री मिश्रा ने यह दलील दी है कि विल में किए गए वर्णन से यह उपदर्शित होता है कि पुत्रियां उसके जीवनकाल में संपत्ति हड़पना चाहती थीं और इसलिए उसने विल निष्पादित की । विल में किया गया यह उल्लेख भी बेतुका है क्योंकि यदि पुत्रियां उसके जीवनकाल में संपत्ति हड़पना चाहती थीं तो निष्पादनकर्ता इसके संरक्षण के लिए अपने जीवनकाल में कार्रवाई कर सकता था न कि विल के द्वारा अपनी मृत्यु के पश्चात् की अवधि के लिए । ऐसी स्थिति में, बन्दोबस्त अधिकारी, चकबन्दी ने यह ठीक ही निष्कर्ष निकाला है कि उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 की धारा 171 और 172 के उपबंधों के अधीन अपने विधिमान्य और विधिक वारिसों को संपत्ति न देने के लिए कोई कारण नहीं था और यह बात भी विल के निष्पादन को संदेहास्पद बनाती है ।

17. श्री मिश्रा ने यह दलील दी है कि उप-निदेशक, चकबन्दी ने अपना कोई स्वतंत्र निष्कर्ष अभिलिखित नहीं किया है और इसलिए आदेश दूषित है । उनके द्वारा की गई दलील खारिज किए जाने योग्य है क्योंकि उप-निदेशक, चकबन्दी का आदेश पुष्टिकारक है और उसने याचियों द्वारा पेश विल से संबंधित तथ्य के निष्कर्षों को स्वीकार किया है । मेरे मतानुसार, इस प्रकार के सहमति के आदेश के मामले में इस तथ्य को दृष्टिगत करते हुए कोई प्रथम कारण देने की आवश्यकता नहीं है कि अपील आदेश के समर्थन में दिए गए कारण याचियों के दावे को खारिज करने के लिए पर्याप्त हैं । अतः, मुझे इसमें कोई त्रुटि प्रतीत नहीं होती है ।

18. रिट याचिका में कोई बल न होने के कारण यह एतद्द्वारा खारिज की जाती है ।

रिट याचिका खारिज की गई ।

मह.

बजाज आलियांज़ जनरल इंश्योरेन्स कंपनी लिमिटेड

बनाम

संतोष कुमार और एक अन्य

तारीख 1 मार्च, 2012

न्यायमूर्ति सत्यपूत महरोत्रा और न्यायमूर्ति वाई. सी. गुप्ता

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59) – धारा 149 और 170 – मोटर दुर्घटना – प्रतिकर के लिए दावा – अधिकरण द्वारा बीमा कंपनी की ओर से अधिनियम की धारा 170 के अधीन फाइल आवेदन खारिज किया जाना – जहां बीमाकर्ता का धारा 170 के अधीन आवेदन खारिज कर दिया गया हो वहां बीमाकर्ता-कंपनी धारा 149(2) में उल्लिखित सीमित आधारों पर ही दावा याचिका का विरोध करने के लिए हक़दार होगी ।

वर्तमान अपील मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 173 के अधीन मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण, कानपुर नगर द्वारा तारीख 15 मार्च, 2011 को पारित निर्णय और आदेश/अधिनिर्णय के विरुद्ध फाइल की गई है । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – अभिलेख के परिशीलन से यह प्रकट होता है कि अपीलार्थी-बीमा कंपनी की ओर से अधिनियम की धारा 170 के अधीन एक आवेदन फाइल किया गया था । तथापि, तारीख 8 फरवरी, 2010 के आदेश द्वारा, अधिकरण ने उक्त आवेदन को इस आधार पर खारिज कर दिया कि प्रश्नगत यान के स्वामी ने मामले को पूर्ण तन्मयता के साथ लड़ा है और दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 की ओर से परीक्षा कराए गए साक्षियों की प्रतिपरीक्षा की है और इसलिए, अधिनियम की धारा 170 के अधीन उक्त आवेदन को मंजूर करने के लिए कोई ठोस आधार नहीं है । अधिनियम की धारा 170 और 149(2) के परिशीलन से यह प्रकट होता है कि यदि अधिकरण मामले में धारा 170 के अधीन बीमाकर्ता को अनुज्ञा प्रदान करता है तो बीमाकर्ता को दावा याचिका को लड़ने का उन सभी आधारों पर या किसी आधार पर अधिकार प्राप्त होगा जो उस व्यक्ति के विरुद्ध उपलब्ध हैं जिसके विरुद्ध दावा याचिका फाइल की गई है । तथापि, यदि अधिकरण द्वारा ऐसी अनुज्ञा प्रदान नहीं की जाती है तो बीमाकर्ता

अधिनियम की धारा 149 की उपधारा (2) में उल्लिखित सीमित आधारों पर दावा याचिका का विरोध करने का हकदार होगा । इस प्रकार, यह प्रतीत होता है कि यदि बीमाकर्ता द्वारा कोई अपील ऐसे किसी मामले में अधिनिर्णय के विरुद्ध फाइल की जाती है जहां अधिकरण द्वारा उसका आवेदन अधिनियम की धारा 170 के अधीन खारिज कर दिया गया है वहां वह (बीमाकर्ता) उक्त अधिनियम की धारा 149 की उप धारा (2) में उल्लिखित सीमित आधारों पर ही अधिनिर्णय को चुनौती देने के लिए सक्षम होगा । अधिनियम की धारा 170 के अधीन उक्त आवेदन को खारिज करने को दृष्टिगत करते हुए, यह स्पष्ट होता है कि अपीलार्थी-बीमा कंपनी केवल अधिनियम की धारा 149 की उप-धारा (2) में उल्लिखित आधारों पर ही आक्षेपित अधिनिर्णय को चुनौती दे सकती है । ऐसे आधार स्पष्ट रूप से विवाद्यक सं. 3 और 4 के संबंध में हैं । जैसाकि ऊपर उल्लिखित है विवाद्यक सं. 3 के संबंध में, अधिकरण ने तथ्य का यह निष्कर्ष अभिलिखित किया है कि दुर्घटना की तारीख और समय पर प्रश्नगत यान अपीलार्थी-बीमा कंपनी से विधिवत् रूप से बीमाकृत था । इस संबंध में, यह उल्लेखनीय है कि अधिकरण के समक्ष अन्य दस्तावेजों के अतिरिक्त, प्रश्नगत यान के संबंध में बीमा प्रमाणपत्र अभिलेख पर पेश किया गया था जिससे यह सिद्ध होता है कि तारीख 21 सितम्बर, 2007 से 20 सितम्बर, 2008 की अवधि के लिए प्रश्नगत यान का बीमा प्रभावी था और इस प्रकार, प्रश्नगत यान दुर्घटना की तारीख अर्थात् 18 दिसम्बर, 2007 को अपीलार्थी-बीमा कंपनी से बीमाकृत था । अधिकरण द्वारा यह भी उल्लेख किया गया है कि बीमा कंपनी ने कोई प्रतिकूल तथ्य साबित नहीं किया है । (पैरा 19, 22, 32 और 33)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2002] ए. आई. आर. 2002 एस. सी. 3350 =
(2002) 7 एस. सी. सी. 456 :
नेशनल बीमा कंपनी लिमिटेड, चण्डीगढ़ बनाम
निकोलेत्ता रोहतगी । 23

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2011 की प्रथम अपील सं. 939डी.

मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 173 के अधीन प्रथम अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री राहुल सहाय

प्रत्यर्थियों की ओर से –

अपील में निर्णय न्यायमूर्ति सत्यपूत महरोत्रा और न्यायमूर्ति वाई. सी. गुप्ता द्वारा दिया गया ।

निर्णय

2011 का सिविल प्रकीर्ण छूट आवेदन सं. 177812 अपीलार्थी-बीमा कंपनी की ओर से अन्य बातों के साथ-साथ औपचारिक आदेश की प्रमाणित प्रति फाइल करने से छूट पाने के अनुरोध के साथ फाइल किया गया है ।

2. ऊपर उल्लिखित आवेदन में किए गए प्रकथनों को ध्यान में रखते हुए, अपीलार्थी-बीमा कंपनी को औपचारिक आदेश फाइल करने से छूट दी जाती है ।

3. वर्तमान अपील मोटर यान अधिनियम, 1988 (संक्षेप में "अधिनियम") की धारा 173 के अधीन मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण, कानपुर नगर द्वारा तारीख 15 मार्च, 2011 को पारित निर्णय और आदेश/अधिनिर्णय के विरुद्ध फाइल की गई है । तारीख 18 दिसम्बर, 2007 को सायं लगभग 5.30 बजे घटित दुर्घटना में अपने पुत्र नीरज उमराव की मृत्यु हो जाने के कारण दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 द्वारा 2009 का मोटर दुर्घटना दावा मामला सं. 160 फाइल किया गया था ।

4. दावा याचिका में अन्य बातों के साथ-साथ यह प्रकथन किया गया है कि तारीख 18 दिसम्बर, 2007 को उक्त नीरज उमराव अपने मित्र नीरज सोनकर की मोटरसाइकिल जिसका रजिस्ट्रेशन सं. यू. पी. 78 बी. एल. 1506 है, पर बैठकर बिंदकी, जिला फतेहपुर की ओर से आ रहा था; और जब लगभग 5.30 बजे सायं उक्त मोटरसाइकिल पर उक्त दोनों व्यक्ति पुलिस स्टेशन, चौडगरा के अंतर्गत आने वाले राजमार्ग पर गुप्ता होटल के नजदीक पहुंचे और कानपुर की तरफ से जा रहे थे तो एक ट्रक जिसका रजिस्ट्रेशन संख्या यू. पी. 78 बी. एन. 9758 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "प्रश्नगत यान" कहा गया है) के चालक ने उतावलेपन और उपेक्षापूर्वक चलाते हुए पीछे से उक्त मोटरसाइकिल को टक्कर मारी जिसके कारण उक्त नीरज उमराव और उसका मित्र नीरज सोनकर नीचे गिर गए और उन्हें गंभीर क्षतियां पहुंचीं, जिसके कारण उक्त नीरज उमराव की घटनास्थल पर ही मृत्यु हो गई; उक्त नीरज उमराव ट्यूशन पढ़ाकर 6,000/- रुपए प्रतिमास कमाया करता था ।

5. प्रश्नगत यान के स्वामी (प्रत्यर्थी सं. 3) और अपीलार्थी-बीमा कंपनी ने दावा याचिका का विरोध किया है ।

6. (प्रत्यर्थी सं. 3) प्रश्नगत यान के स्वामी की ओर से फाइल किए गए लिखित कथन में यह स्वीकार किया गया है कि प्रत्यर्थी सं. 3 प्रश्नगत यान का रजिस्ट्रीकृत स्वामी है किन्तु उसने प्रश्नगत यान द्वारा अभिकथित दुर्घटना होने से इनकार किया है । प्रत्यर्थी सं. 3 ने यह भी प्रकथन किया है कि प्रश्नगत यान अपीलार्थी-बीमा कंपनी से बीमाकृत था और प्रश्नगत यान के चालक के पास विधिमान्य चालन अनुज्ञप्ति थी और इन परिस्थितियों में यदि किसी प्रतिकर के संदाय का दायित्व है तो वह अपीलार्थी-बीमा कंपनी का है ।

7. अपीलार्थी-बीमा कंपनी ने अपने लिखित कथन में दावा याचिका में किए गए प्रकथनों से इनकार किया है । अन्य बातों के साथ-साथ यह भी प्रकथन किया गया है कि जब तक कि यह साबित नहीं हो जाता है कि प्रश्नगत यान दुर्घटना की तारीख को अपीलार्थी-बीमा कंपनी से बीमाकृत था और प्रश्नगत यान के चालक के पास विधिमान्य और प्रभावी चालन अनुज्ञप्ति तथा रजिस्ट्रेशन प्रमाणपत्र, फिटनेस, मार्ग परमिट था और दुर्घटना के सुसंगत समय पर बीमा पालिसी विधिमान्य थी, तब तक अपीलार्थी-बीमा कंपनी के ऊपर दायित्व निर्धारित नहीं किया जा सकता है । अन्य बातों के साथ-साथ यह भी प्रकथन किया गया है कि अभिकथित दुर्घटना प्रश्नगत यान को उतावलेपन और उपेक्षापूर्वक चलाने के कारण नहीं हुई थी और यह दुर्घटना उक्त मोटरसाइकिल के चालक की गलती के कारण ही घटी थी ।

8. अधिकरण ने मामले में पांच विवाद्यक विरचित किए :–

(क) विवाद्यक सं. 1 इस तथ्य के बारे में है कि क्या प्रश्नगत यान के चालक द्वारा यान उतावलेपन और उपेक्षापूर्वक चलाने के कारण तारीख 18 दिसम्बर, 2007 को दुर्घटना घटित हुई थी, जिसके परिणामस्वरूप उक्त नीरज उमराव की मृत्यु हो गई ।

(ख) विवाद्यक सं. 2 यह है कि क्या दुर्घटना पूर्वोक्त मोटर-साइकिल के चालक की ओर से योगदायी उपेक्षा के कारण घटी थी ।

(ग) विवाद्यक सं. 4 यह है कि क्या दुर्घटना के समय प्रश्नगत यान अपीलार्थी-बीमा कंपनी से बीमाकृत था ।

(घ) विवाद्यक सं. 3 यह है कि क्या प्रश्नगत यान के चालक के

पास दुर्घटना के समय विधिमान्य और प्रभावी चालन अनुज्ञप्ति थी ।

(ङ) विवाद्यक सं. 5 यह है कि क्या दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 कोई प्रतिकर पाने के हकदार थे और यदि हां, तो ऐसे प्रतिकर की मात्रा क्या होगी और दावा याचिका में किस पक्षकार के विरुद्ध अवधारित की जाएगी ।

9. दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 ने अपनी ओर से दो साक्षियों की परीक्षा कराई और सूची सं. 6-ग और सूची सं. 26-ग द्वारा दस्तावेजी साक्ष्य भी फाइल किया गया है ।

10. प्रश्नगत यान के स्वामी (हमारे समक्ष के प्रत्यर्थी सं. 3) ने सूची सं. 16-ग द्वारा दस्तावेजी साक्ष्य फाइल किया है जिसमें प्रश्नगत यान के संबंध में रजिस्ट्रेशन प्रमाणपत्र, कर रसीद, परमिट, बीमा-प्रमाणपत्र और प्रश्नगत यान के चालक की चालन अनुज्ञप्ति की छाया प्रति सम्मिलित है ।

11. अपीलार्थी-बीमा कंपनी ने सूची सं. 40-ग द्वारा दस्तावेजी साक्ष्य फाइल किया है ।

12. अभिलेख पर की सामग्री पर विचार करने के उपरांत अधिकरण ने विभिन्न विवाद्यकों पर अपने निष्कर्ष अभिलिखित किए हैं ।

13. अधिकरण द्वारा विवाद्यक सं. 1 और 2 का एक साथ विनिश्चय किया गया है । अधिकरण ने यह अभिनिर्धारित किया है कि प्रश्नगत दुर्घटना उक्त ट्रक (प्रश्नगत यान) के चालक द्वारा उतावलेपन और उपेक्षापूर्वक चलाने के कारण हुई थी, जिसके कारण उक्त नीरज उमराव को गंभीर क्षतियां पहुंचीं और परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हो गई । अधिकरण ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि उक्त मोटरसाइकिल के चालक अर्थात् नीरज सोनकर की ओर से कोई योगदायी उपेक्षा नहीं बरती गई थी ।

14. अधिकरण द्वारा विवाद्यक सं. 3 और 4 का एक साथ विनिश्चय किया गया । अधिकरण ने यह अभिनिर्धारित किया कि प्रश्नगत यान दुर्घटना की तारीख और समय पर अपीलार्थी-बीमा कंपनी से विधिवत रूप से बीमाकृत था । अधिकरण ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि प्रश्नगत यान के चालक के पास दुर्घटना के समय विधिमान्य चालन अनुज्ञप्ति थी ।

15. विवाद्यक सं. 5 के संबंध में अधिकरण ने यह अभिनिर्धारित किया कि दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 को दावा याचिका के फाइल करने की

तारीख से वास्तविक संदाय की तारीख तक 6 प्रतिशत वार्षिक की दर से ब्याज सहित प्रतिकर के रूप में 1,17,500/- रुपए की धनराशि पाने के हक़दार हैं ।

16. उपर्युक्त निष्कर्षों के आधार पर अधिकरण ने दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 को दावा याचिका के फाइल करने की तारीख से वास्तविक संदाय की तारीख तक 6 प्रतिशत वार्षिक की दर से ब्याज सहित प्रतिकर के रूप में 1,17,500/- रुपए का आक्षेपित अधिनिर्णय पारित किया है ।

17. अपीलार्थी-बीमा कंपनी ने उक्त अधिनिर्णय के विरुद्ध वर्तमान अपील फाइल की है ।

18. हमने अपीलार्थी-बीमा कंपनी की ओर से विद्वान् अधिवक्ता श्री राहुल सहाय को सुना और अपील के साथ फाइल किए गए अभिलेख का परिशीलन किया ।

19. अभिलेख के परिशीलन से यह प्रकट होता है कि अपीलार्थी-बीमा कंपनी की ओर से अधिनियम की धारा 170 के अधीन एक आवेदन फाइल किया गया था । तथापि, तारीख 8 फरवरी, 2010 के आदेश द्वारा, अधिकरण ने उक्त आवेदन को इस आधार पर खारिज कर दिया कि प्रश्नगत यान के स्वामी ने मामले को पूर्ण तन्मयता के साथ लड़ा है और दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 की ओर से परीक्षा कराए गए साक्षियों की प्रतिपरीक्षा की है और इसलिए, अधिनियम की धारा 170 के अधीन उक्त आवेदन को मंजूर करने के लिए कोई ठोस आधार नहीं है ।

20. अधिनियम की धारा 170 इस प्रकार है :–

> "170. **कतिपय मामलों में बीमाकर्ता को पक्षकार बनाया जाना** – जहां जांच के अनुक्रम में दावा अधिकरण का यह समाधान हो जाता है कि –
>
> (क) दावा करने वाले व्यक्ति तथा उस व्यक्ति के बीच, जिसके विरुद्ध दावा किया गया है, दुरभिसंधि है, या
>
> (ख) वह व्यक्ति, जिसके विरुद्ध दावा किया गया है, उस दावे का विरोध करने में असफल रहा है,
>
> वहां वह उन कारणों से, जो लेखबद्ध किए जाएंगे, यह निदेश दे सकेगा कि वह बीमाकर्ता, जिस पर ऐसे दावे की बाबत दायित्व है,

उस कार्यवाही का पक्षकार बनाया जाए और ऐसे पक्षकार बनाए गए बीमाकर्ता को तब धारा 149 की उपधारा (2) के उपबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना यह अधिकार होगा कि वह उस दावे का विरोध उन सब या किन्हीं आधारों पर करे, जो उस व्यक्ति को प्राप्त हैं, जिसके विरुद्ध दावा किया गया है ।"

21. उक्त अधिनियम की धारा 170 में निर्दिष्ट अधिनियम की धारा 149 इस प्रकार है :–

"149. **पर-व्यक्ति जोखिमों की बाबत बीमाकृत व्यक्तियों के विरुद्ध हुए निर्णयों और अधिनिर्णयों की तुष्टि करने का बीमाकर्ताओं का कर्तव्य** – (1) यदि किसी व्यक्ति के पक्ष में, जिसने पालिसी कराई है, धारा 147 की उपधारा (3) के अधीन बीमा-प्रमाणपत्र दे दिए जाने के पश्चात्, धारा 147 की उपधारा (1) के खंड (ख) के अधीन पालिसी द्वारा पूरा करने के लिए अपेक्षित दायित्व के संबंध में (जो दायित्व पालिसी के निबंधनों के अंतर्गत है) {या धारा 163-क के उपबंधों के अधीन है} ऐसे किसी व्यक्ति के विरुद्ध निर्णय और अधिनिर्णय अभिप्राप्त कर लिया जाता है जिसका पालिसी द्वारा बीमा किया हुआ है तो इस बात के होते हुए भी कि बीमाकर्ता पालिसी को शून्य करने या रद्द करने का हकदार है अथवा उसने पालिसी शून्य या रद्द कर दी है, बीमाकर्ता इस धारा के उपबंधों के अधीन रहते हुए डिक्री का फायदा उठाने के हकदार व्यक्ति को, उस दायित्व के संबंध में उसके अधीन देय राशि, जो बीमाकृत राशि से अधिक न होगी, खर्चों की बाबत देय किसी रकम तथा निर्णयों पर ब्याज संबंधी किसी अधिनियमिति के आधार पर उस राशि पर ब्याज की बाबत देय किसी धनराशि सहित इस प्रकार देगा मानो वह निर्णीत-ऋणी हो ।

(2) उपधारा (1) के अधीन किसी बीमाकर्ता द्वारा कोई राशि, किसी निर्णय या अधिनिर्णय के संबंध में तभी देय होगी जब उन कार्यवाहियों के प्रारंभ के पूर्व जिनमें निर्णय या अधिनिर्णय दिया गया है, बीमाकर्ता को उन कार्यवाहियों के लाए जाने की अथवा किसी निर्णय या अधिनिर्णय के संबंध में जब तक उसका निष्पादन अपील के लंबित रहने पर रोक दिया गया है सूचना, यथास्थिति, न्यायालय या दावा अधिकरण के माध्यम से मिल चुकी थी अन्यथा नहीं और कोई बीमाकर्ता जिसे ऐसी किन्हीं कार्यवाहियों के लिए जाने की

सूचना इस प्रकार दी गई है, उसका पक्षकार बनाए जाने और निम्नलिखित आधारों में से किसी आधार पर प्रतिवाद करने का हकदार होगा, अर्थात् –

(क) पालिसी की किसी विनिर्दिष्ट शर्त का भंग किया गया है, जो निम्नलिखित शर्तों में से एक है, अर्थात्–

(i) ऐसी शर्त, जो यान का निम्नलिखित दशाओं में उपयोग किया जाना अपवर्जित करती है, अर्थात् –

(क) भाड़े या पारिश्रमिक के लिए, जब वह यान बीमा संविदा की तारीख को ऐसा यान है जो भाड़े या पारिश्रमिक पर चलाने के परमिट के अंतर्गत नहीं है, या

(ख) आयोजित दौड़ और गति परीक्षा के लिए, या

(ग) जिस परमिट के अधीन यान का उपयोग किया जाता है उसके द्वारा अनुज्ञात न किए गए प्रयोजन के लिए, जब वह यान परिवहन यान है, या

(घ) साइड कार संलग्न किए बिना, जब यान मोटरसाइकिल है, या

(ii) ऐसी शर्त जो नामित व्यक्ति या व्यक्तियों द्वारा या ऐसे किसी व्यक्ति द्वारा जो सम्यक् रूप से अनुज्ञात नहीं है या ऐसे किसी व्यक्ति द्वारा, जिसे चालन अनुज्ञप्ति धारण या अभिप्राप्त करने से निरर्हित कर दिया गया है, निरर्हता की अवधि के दौरान, यान का चलाया जाना अपवर्जित करती है; या

(iii) ऐसी शर्त जो युद्ध, गृहयुद्ध, बल्वे या सिविल अशांति की स्थिति के कारण या उसके योगदान से हुई क्षति के लिए दायित्व अपवर्जित करती है; या

(ख) वह पालिसी इस आधार पर शून्य है कि वह किसी तात्विक तथ्य के प्रकट न किए जाने से, अथवा ऐसे तथ्य के व्यपदेशन से, जिसकी कोई तात्विक विशिष्टि मिथ्या है,

अभिप्राप्त की गई थी ।

(3) जहां कोई ऐसा निर्णय, जैसा उपधारा (1) में विनर्दिष्ट है, किसी व्यतिकारी देश के न्यायालय से अभिप्राप्त किया गया है तथा विदेशी निर्णय की दशा में वह उस विषय की बाबत, जिसका न्यायनिर्णयन उसके द्वारा किया गया है, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) की धारा 13 के उपबन्धों के आधार पर निश्चायक है वहां बीमाकर्ता [जो बीमा अधिनियम, 1938 (1938 का 4) के अधीन रजिस्ट्रीकृत बीमाकर्ता है, भले ही वह व्यतिकारी देश की तत्समान विधि के अधीन रजिस्ट्रीकृत हो या न हो] डिक्री का फायदा उठाने के हकदार व्यक्ति के प्रति उस रीति से और उस विस्तार तक जो उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट है, ऐसे दायी होगा मानो वह निर्णय भारत के किसी न्यायालय द्वारा दिया गया है :

परन्तु बीमाकर्ता द्वारा कोई राशि किसी ऐसे निर्णय के संबंध में तभी संदेय होगी जब उन कार्यवाहियों के, जिनमें निर्णय दिया गया है, प्रारंभ के पूर्व बीमाकर्ता को उन कार्यवाहियों के लाए जाने की सूचना संबंधित न्यायालय के माध्यम से मिल चुकी थी, अन्यथा नहीं तथा कोई बीमाकर्ता, जिसे सूचना ऐसे दी गई है व्यतिकारी देश की तत्समान विधि के अधीन उन कार्यवाहियों में पक्षकार बनाए जाने और उपधारा (2) में विनिर्दिष्ट आधारों पर प्रतिवाद करने का हकदार है ।

(4) जहां उस व्यक्ति को, जिसने पालिसी कराई है, धारा 147 की उपधारा (3) के अधीन बीमा-प्रमाणपत्र दे दिया गया है वहां पालिसी का उतना भाग, जितना उस पालिसी द्वारा बीमाकृत व्यक्तियों का बीमा उपधारा (2) के खंड (ख) में दी गई शर्तों से भिन्न किन्हीं शर्तों के निर्देश से निर्बन्धित करने के लिए तात्पर्यित हैं धारा 147 की उपधारा (1) के खंड (ख) के अधीन पालिसी के द्वारा पूरा करने के लिए अपेक्षित दायित्वों के संबंध में प्रभावहीन होगा :

परन्तु बीमाकर्ता द्वारा किसी व्यक्ति के किसी दायित्व के निर्वहन में या मद्दे दी गई कोई धनराशि, जो केवल इस उपधारा के आधार पर पालिसी के अंतर्गत है, बीमाकर्ता द्वारा उस व्यक्ति से वसूलीय होगी ।

(5) यदि वह रकम, जिसे बीमाकर्ता पालिसी द्वारा बीमाकृत व्यक्ति द्वारा उपगत दायित्व की बाबत देने के लिए इस धारा के अधीन जिम्मेदार हो जाता है, उस रकम से अधिक है जिसके लिए

बीमाकर्ता, इस धारा के उपबंधों के अलावा, उस दायित्व की बाबत पालिसी के अधीन दायी होगा, तो बीमाकर्ता उस अधिक रकम को उस व्यक्ति से वसूल करने का हकदार होगा ।

(6) इस धारा में 'तात्विक तथ्य' और 'तात्विक विशिष्टि' पदों के क्रमशः इस प्रकार का तथ्य या इस प्रकार की विशिष्टि अभिप्रेत है जिससे किसी भी व्यवहारकुशल बीमाकर्ता के विवेक पर यह अवधारित करने में प्रभाव पड़े कि क्या वह जोखिम उठाए और यदि वह ऐसा करे तो कितने प्रीमियम पर तथा किन शर्तों पर करे और 'जो दायित्व पालिसी के निबंधनों के अंतर्गत है' पद से ऐसा दायित्व अभिप्रेत है जो पालिसी के अंतर्गत है या जो इस तथ्य के न होने पर पालिसी के अंतर्गत होता कि बीमाकर्ता, पालिसी को शून्य या रद्द करने का हकदार है या उसे शून्य या रद्द कर चुका है ।

(7) कोई भी बीमाकर्ता, जिसे उपधारा (2) या उपधारा (3) में विनिर्दिष्ट सूचना दे दी गई है, उपधारा (1) में निर्दिष्ट किसी ऐसे निर्णय या अधिनिर्णय का या उपधारा (3) में निर्दिष्ट निर्णय में फायदा उठाने के हकदार किसी व्यक्ति के प्रति अपने दायित्व को उस रीति से भिन्न रीति से शून्य करने का हकदार होगा, जो, यथास्थिति, उपधारा (2) में या व्यतिकारी देश की तत्समान विधि में उपबंधित है, अन्यथा नहीं ।

स्पष्टीकरण – इस धारा के प्रयोजनों के लिए 'दावा अधिकरण से' धारा 165 के अधीन गठित दावा अधिकरण और अधिनिर्णय से धारा 168 के अधीन उस अधिकरण द्वारा किया गया अधिनिर्णय अभिप्रेत है ।''

22. अधिनियम की धारा 170 और 149 (2) के परिशीलन से यह प्रकट होता है कि यदि अधिकरण मामले में धारा 170 के अधीन बीमाकर्ता को अनुज्ञा प्रदान करता है तो बीमाकर्ता को दावा याचिका को लड़ने का उन सभी आधारों पर या किसी आधार पर अधिकार प्राप्त होगा जो उस व्यक्ति के विरुद्ध उपलब्ध हैं जिसके विरुद्ध दावा याचिका फाइल की गई है । तथापि, यदि अधिकरण द्वारा ऐसी अनुज्ञा प्रदान नहीं की जाती है तो बीमाकर्ता अधिनियम की धारा 149 की उपधारा (2) में उल्लिखित सीमित आधारों पर दावा याचिका का विरोध करने का हकदार होगा । इस प्रकार, यह प्रतीत होता है कि यदि बीमाकर्ता द्वारा कोई अपील ऐसे किसी मामले में अधिनिर्णय के विरुद्ध फाइल की जाती है जहां अधिकरण द्वारा उसका

आवेदन अधिनियम की धारा 170 के अधीन खारिज कर दिया गया है वहां वह (बीमाकर्ता) उक्त अधिनियम की धारा 149 की उपधारा (2) में उल्लिखित सीमित आधारों पर ही अधिनिर्णय को चुनौती देने के लिए सक्षम होगा ।

23. इस संबंध में उच्चतम न्यायालय द्वारा **नेशनल बीमा कंपनी लिमिटेड, चण्डीगढ़** बनाम **निकोलेत्ता रोहतगी**[1] वाले मामले में दिए गए निर्णय का निर्देश किया जा सकता है ।

24. प्रथम प्रश्न इस संबंध में विचारणीय है कि क्या अधिकरण आवेदन को जो अपीलार्थी-बीमा कंपनी की ओर से अधिनियम की धारा 170 के अधीन फाइल किया गया था, तारीख 8 फरवरी, 2010 को पारित आदेश द्वारा खारिज करने में सही था ।

25. अधिनियम की धारा 170 बीमाकर्ता को धारा 149 की उपधारा (2) में अंतर्विष्ट उपबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना निम्नलिखित दो परिस्थितियों का अनुसरण करने के लिए अनुध्यात करती है, जहां वह उसे ऐसे उन सभी या उनमें से किसी आधार पर दावे के विरोध करने का अधिकार प्रदत्त करती है जो उस व्यक्ति के विरुद्ध उपलब्ध हैं जिसने दावा किया है :–

(क) जहां कहीं दावा करने वाले व्यक्ति और उस व्यक्ति जिसके विरुद्ध दावा किया है, के बीच दुरभिसंधि हो, या

(ख) जहां वह व्यक्ति जिसके विरुद्ध दावा किया गया है दावा याचिका का विरोध करने में असफल रहा हो ।

26. वर्तमान मामले में, दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 और प्रश्नगत यान के स्वामी (प्रत्यर्थी सं. 3) के बीच कोई दुरभिसंधि उपदर्शित नहीं होती है । इसलिए, उपर्युक्त उल्लिखित परिस्थिति (क) वर्तमान मामले में विद्यमान होना उपदर्शित नहीं होती है ।

27. जैसाकि आक्षेपित अधिनिर्णय से प्रकट होता है कि लिखित कथन दावा याचिका में किए गए प्रकथनों से इनकार करते हुए प्रश्नगत यान के स्वामी (प्रत्यर्थी सं. 3) की ओर से फाइल किया गया है । इसके अतिरिक्त प्रश्नगत यान के स्वामी (प्रत्यर्थी सं. 3) की ओर से सूची सं. 16-ग

---

[1] ए. आई. आर. 2002 एस. सी. 3350 = (2002) 7 एस. सी. सी. 456.

द्वारा अनेक दस्तावेज फाइल किए गए हैं जिसमें प्रश्नगत यान के संबंध में रजिस्ट्रेशन प्रमाणपत्र, कर रसीद, परमिट, बीमा-प्रमाणपत्र और प्रश्नगत यान के चालक की चालन अनुज्ञप्ति की छाया प्रति सम्मिलित है । दावेदार प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 की ओर से परीक्षित साक्षियों की प्रश्नगत यान के स्वामी (प्रत्यर्थी सं. 3) की ओर से प्रतिपरीक्षा की गई है, जैसाकि अधिकरण द्वारा अधिनियम की धारा 170 के अधीन फाइल किए गए आवेदन पर पारित तारीख 8 फरवरी, 2010 के आदेश में उल्लेख किया गया है ।

28. इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रश्नगत यान के स्वामी (प्रत्यर्थी सं. 3) ने जिसके विरुद्ध दावा याचिका फाइल की गई थी, दावा याचिका का विरोध किया था । अतः, वर्तमान मामले में स्थिति (ख) भी जैसाकि ऊपर उल्लिखित किया गया है, विद्यमान नहीं है ।

29. उपर्युक्त को ध्यान में रखते हुए, हमारा यह मत है कि अपीलार्थी-बीमा कंपनी की ओर से अधिनियम की धारा 170 के अधीन फाइल किया गया आवेदन तारीख 8 फरवरी, 2010 के आदेश द्वारा ठीक ही खारिज किया गया है ।

30. विचार किए जाने के लिए अगला प्रश्न यह है कि अपीलार्थी-बीमा कंपनी किन आधारों पर आक्षेपित अधिनिर्णय को चुनौती दे सकती है और क्या ऐसी चुनौती विधिमान्य है ।

31. वर्तमान मामले में, जैसाकि ऊपर उल्लिखित है, अधिकरण ने अधिनियम की धारा 170 के अधीन अनुमति हेतु अपीलार्थी-बीमा कंपनी के आवेदन को खारिज कर दिया है ।

32. अधिनियम की धारा 170 के अधीन उक्त आवेदन को खारिज करने को दृष्टिगत करते हुए, यह स्पष्ट होता है कि अपीलार्थी-बीमा कंपनी केवल अधिनियम की धारा 149 की उपधारा (2) में उल्लिखित आधारों पर ही आक्षेपित अधिनिर्णय को चुनौती दे सकती है । ऐसे आधार स्पष्ट रूप से विवाद्यक सं. 3 और 4 के संबंध में हैं ।

33. जैसाकि ऊपर उल्लिखित है विवाद्यक सं. 3 के संबंध में, अधिकरण ने तथ्य का यह निष्कर्ष अभिलिखित किया है कि दुर्घटना की तारीख और समय पर प्रश्नगत यान अपीलार्थी-बीमा कंपनी से विधिवत रूप से बीमाकृत था । इस संबंध में, यह उल्लेखनीय है कि अधिकरण के समक्ष अन्य दस्तावेजों के अतिरिक्त, प्रश्नगत यान के संबंध में बीमा-प्रमाणपत्र

अभिलेख पर पेश किया गया था जिससे यह सिद्ध होता है कि तारीख 21 सितम्बर, 2007 से 20 सितम्बर, 2008 की अवधि के लिए प्रश्नगत यान का बीमा प्रभावी था और इस प्रकार, प्रश्नगत यान दुर्घटना की तारीख अर्थात् 18 दिसम्बर, 2007 को अपीलार्थी-बीमा कंपनी से बीमाकृत था । अधिकरण द्वारा यह भी उल्लेख किया गया है कि बीमा कंपनी ने कोई प्रतिकूल तथ्य साबित नहीं किया है ।

34. विवाद्यक सं. 4 के संबंध में, अधिकरण ने तथ्य के निष्कर्ष को इस प्रकार अभिलिखित किया है कि दुर्घटना की तारीख और समय पर, प्रश्नगत यान के चालक के पास विधिमान्य और प्रभावी चालन अनुज्ञप्ति थी । इस संबंध में, अधिकरण ने अधिकरण के समक्ष अभिलेख पर पेश की गई चालन अनुज्ञप्ति की छाया प्रति का अवलंब लिया है । अधिकरण द्वारा यह भी उल्लेख किया गया है कि बीमा कंपनी ने कोई प्रतिकूल तथ्य साबित नहीं किया है ।

35. अपीलार्थी-बीमा कंपनी की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री राहुल सहाय विवाद्यक सं. 3 और 4 पर अधिकरण द्वारा अभिलिखित किए गए पूर्वोक्त निष्कर्षों में कोई गलती या अशक्तता या अवैधता नहीं दर्शा सके हैं ।

36. अपील के साथ फाइल किए अभिलेख का परिशीलन करने पर हमारा यह मत है कि पूर्वोक्त विवाद्यकों पर अधिकरण द्वारा अभिलिखित किए गए निष्कर्ष सही हैं और वे किसी गलती या अशक्तता या अवैधता से दूषित नहीं हैं ।

37. अतः, हमारा यह मत है कि अपीलार्थी-बीमा कंपनी उन आधारों पर आक्षेपित अधिनिर्णय में कोई गलती या अशक्तता या अवैधता सिद्ध करने में असफल रही है जो उसे अधिनियम की धारा 149 की उपधारा (2) के उपबंधों को ध्यान में रखते हुए उपलब्ध थे ।

38. अपीलार्थी-बीमा कंपनी की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री राहुल सहाय ने यह दलील दी है कि अभिकथित दुर्घटना प्रश्नगत यान से होना सिद्ध नहीं हो पाया है और अधिकरण ने विवाद्यक सं. 1 और 2 का विनिश्चय करने में गलती की है ।

39. अपीलार्थी-बीमा कंपनी के विद्वान् काउंसेल श्री राहुल सहाय ने यह भी दलील दी है कि विवाद्यक सं. 5 में अधिकरण द्वारा निर्धारित की गई प्रतिकर की मात्रा ठीक नहीं है ।

40. हमारे विचार में, चूंकि अधिकरण ने अधिनियम की धारा 170 के अधीन अपीलार्थी-बीमा कंपनी के आवेदन को खारिज कर दिया है, इसलिए अपीलार्थी-बीमा कंपनी दुर्घटना में प्रश्नगत या आक्षेपित आदेश में अधिकरण द्वारा अधिनिर्णीत किए गए प्रतिकर की मात्रा के प्रश्न को उठाने के लिए स्वतंत्र नहीं है । अतः अपीलार्थी-बीमा कंपनी के विद्वान् काउंसेल श्री राहुल सहाय द्वारा इस संबंध में दी गई दलील को विचार में नहीं लिया जा सकता ।

41. उपर्युक्त को ध्यान में रखते हुए, हमारा यह मत है कि अपीलार्थी-बीमा कंपनी द्वारा फाइल की गई अपील में कोई बल नहीं है और इसलिए यह खारिज किए जाने योग्य है ।

42. तद्नुसार, अपील खारिज की जाती है ।

43. तथापि, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में खर्चों के संबंध में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

44. अपीलार्थी-बीमा कंपनी द्वारा वर्तमान अपील फाइल करते समय जमा की गई 25,000/- रुपए की धनराशि आक्षेपित निर्णय में दिए गए निदेशों के अनुसार अपीलार्थी-बीमा कंपनी द्वारा जमा की जाने वाली धनराशि में समायोजित करने के लिए अधिकरण को लौटाई जाएगी ।

अपील खारिज की गई ।

महीं./मह.

———

(2014) 1 सि. नि. प. 180 **इलाहाबाद**

प्रबंध समिति सलतनत बहादुर स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बदलापुर और एक अन्य

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

तारीख 6 मई, 2013

मुख्य न्यायमूर्ति शिव कीर्ति सिंह, न्यायमूर्ति अशोक भूषण और न्यायमूर्ति अरुण टंडन

उत्तर प्रदेश राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम, 1973 – धारा 2(13) –

प्रबंध समिति – प्रबंधन – अर्थान्वयन – "प्रबंधन" शब्द से ऐसी सहबद्धता अभिप्रेत है जो प्रबंध समिति या ऐसे कालेज के कार्यों के प्रबंधन से संबंधित प्रभार लेने वाला ऐसा कोई निकाय हो जो ऐसे विश्वविद्यालय द्वारा मान्यता प्राप्त हो ।

उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा अधिनियम, 1921 – धारा 16-गग [सपठित विश्वविद्यालय के प्रथम कानून का नियम 10.05 का खंड (ङ)] – प्रबंध समिति – कार्यकाल में विस्तार – अपेक्षा – विश्वविद्यालय को सुसंगत कानूनों को विरचित करते समय प्रबंध समिति की अधिकतम पांच वर्ष की अवधि को ध्यान में रखना चाहिए – इस संबंध में कोई संशोधन उक्त अपेक्षा के अनुसार ही किया जा सकता है – जहां संशोधन का अनुमोदन करने वाले प्राधिकारी ने संशोधन लागू करने के लिए किसी विनिर्दिष्ट तारीख का उल्लेख किया है वहां ऐसा संशोधन ऐसी विनिर्दिष्ट तारीख से ही लागू होगा ।

न्यायालय के समक्ष की रिट याचिका विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा तारीख 22 दिसंबर, 2011 के आदेश के अधीन किए गए निर्देश के आधार पर इस वृहत्तर न्यायपीठ के समक्ष पेश की गई है । रिट याचिका तद्नुसार निपटाते हुए,

अभिनिर्धारित – जहां तक उत्तर प्रदेश राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम, 1973 का संबंध है, इसकी धारा 2 विभिन्न निबंधनों में परिभाषाओं का उल्लेख करती है । केवल धारा 2 की उपधारा (13) इस मामले के प्रयोजन के लिए सुसंगत है । यह धारा "प्रबंधन" शब्द को सहबद्धता या महाविद्यालय संगम को परिभाषित करती है जिसका यह अर्थ है कि प्रबंध समिति या ऐसे कालेज के कार्यों के प्रबंधन से संबंधित प्रभार लेने वाला कोई अन्य निकाय जो ऐसे विश्वविद्यालय द्वारा मान्यताप्राप्त हो । प्रत्यर्थी-विश्वविद्यालय ने कानून विरचित करने के लिए अपनी शक्तियों का प्रयोग किया है । प्रत्यर्थी-पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर के प्रथम कानून का अध्याय 10 इस मामले में ऊपर उल्लिखित दो विवाद्यकों का विनिश्चय करने के लिए सुसंगत है । उप नियम 10.05 यह अपेक्षा करता है कि इस उप नियम में अन्तर्विष्ट कतिपय शर्तें और निबंधन प्रत्येक महाविद्यालय के प्रबंधन की स्कीम के गठन में निगमित होनी चाहिए । शर्त सं. (ङ) अन्य बातों के साथ-साथ यह उपबंध करती है कि प्रबंध समिति की पदावधि पांच वर्ष से अधिक नहीं होगी और कोई पद धारक कुल दो बार से ज्यादा पद

धारित नहीं कर सकता । शर्त सं. (च) यह अन्य शर्त और निबंधन अधिकथित करती है कि उपर्युक्त गठन में अर्थात् प्रशासनिक स्कीम के गठन में उप कुलपति के पूर्व अनुमोदन के बिना कोई संशोधन नहीं किया जाना चाहिए । (पैरा 8)

अत: यह स्पष्ट है कि प्रत्यर्थी-विश्वविद्यालय को सुसंगत कानूनों को विरचित करते समय प्रबंध समिति की अधिकतम अवधि पांच वर्ष होने की बात को ध्यान में रखना चाहिए और इस संबंध में कोई संशोधन उक्त अपेक्षा के अनुसार ही होना चाहिए । यह भी स्पष्ट है कि प्रशासनिक स्कीम में संशोधन संस्था के प्रबंध मंडल द्वारा स्वयं अपनी उप विधियों के अनुसार या प्रशासनिक स्कीम के अनुसार करना चाहिए । तथापि, इस संबंध में उप कुलपति का पूर्व अनुमोदन अपेक्षित है और अनुमोदन के अभाव में प्रशासनिक स्कीम में कोई संशोधन अस्तित्वयुक्त नहीं माना जाएगा और विधि की दृष्टि में कोई संशोधन नहीं होगा । केवल अनुमोदन प्राप्त होने पर ही प्रस्थापित संशोधन प्रभावी बनेगा । यदि "अनुमोदन" शब्द के पूर्व उल्लिखित "पूर्व" शब्द का अन्यथा निर्वचन किया जाता है तो वह व्यर्थ या अर्थहीन हो जाएगा । ऐसे निर्वचन से बचा जाना चाहिए । तद्नुसार प्रथम प्रश्न का सकारात्मक रूप में उत्तर दिया जाता है । संशोधन, संशोधन करने की तारीख से प्रभावी होगा और ऐसी तारीख वह तारीख होगी जब उप कुलपति, प्रत्यर्थी-विश्वविद्यालय के प्रथम कानून के उप नियम 10.05 के खंड सं. (ङ) या शर्तों के निबंधनों में अपेक्षित अनुमोदन प्रदान करता है । यह स्पष्ट किया जाता है कि जहां कानून कानूनी प्राधिकारी से पूर्वतर अनुमोदन की अपेक्षा करता है वहां संशोधन उस तारीख से प्रभावी होगा जिस पर पूर्व अनुमोदन मंजूर किया जाता है और यदि अनुमोदन करने वाले प्राधिकारी को इस संबंध में शक्ति प्राप्त है और वह इस प्रयोजन के लिए कोई अन्य तारीख विनिर्दिष्ट करता है तो संशोधन केवल उक्त विनिर्दिष्ट तारीख से ही प्रभावी होगा । इसका अनुसरण करते हुए दूसरे प्रश्न का उत्तर यह अभिनिर्धारित करते हुए दिया जाता है कि ऐसा संशोधन जिसके द्वारा प्रबंध समिति की अवधि विस्तारित की गई है या कम की गई है, तुरंत प्रभावी होगा और इसके परिणामस्वरूप तत्समय की विद्यमान समिति की अवधि विस्तारित हो जाएगी या संशोधन के अनुसार उपांतरित हो जाएगी । न्यायालय यहां सावधानी के नाते यह उल्लेख करना चाहता है कि यदि प्राधिकारी संशोधन करने के लिए सक्षम है और स्वत: यह विनिर्दिष्ट करना पसंद करता है कि संशोधन भावी तारीख से प्रभावी होगा

तो संशोधन ऐसी पश्चात्वर्ती तारीख से लागू होगा जो विनिर्दिष्ट की जाए । समान रूप में जहां अनुमोदन करने वाले प्राधिकारी को समान निर्बंधन अधिकथित करने की आवश्यक शक्ति प्राप्त है वहां संशोधन अनुमोदन करने वाले प्राधिकारी द्वारा अधिकथित शर्तों या निर्बंधनों के अनुसार ही लागू हो सकेगा । ऐसे किसी विशिष्टि या निर्बंधन के अभाव में संशोधन विद्यमान प्रबंध समिति को उस तारीख को लागू होगा जब संशोधन प्रवर्तन में आता है । (पैरा 9, 10 और 12)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2009]	2009 (1) ए. डब्ल्यू. सी. 466 : **प्रबंध समिति आर्य कन्या इन्टर कालेज, बुलन्दशहर और अन्य** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** ;	2, 7, 13, 14
[1994]	1994 (24) ए. एल. आर. 410 = 1995 इलाहाबाद ला जर्नल 427 : **प्रबंध समिति एम. एम. आई. इन्टर कालेज, बिजनौर** बनाम **उप निदेशक शिक्षा 10वीं सर्किल और अन्य ;**	2, 6, 11, 13
[1965]	ए. आई. आर. 1965 एस. सी. 1567 : **बिशन नारायण** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** ।	6, 11

आरंभिक (सिविल) प्रकीर्ण रिट अधिकारिता : 2011 की सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका सं. 71377.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका ।

याची की ओर से सर्वश्री अशोक खरे और वी. डी. शुक्ला

प्रत्यर्थियों की ओर से मुख्य स्थायी काउंसेल, सर्वश्री ए. के. सिंह और जी. के. सिंह

न्यायालय का निर्णय मुख्य न्यायमूर्ति शिव कीर्ति सिंह ने दिया ।

मु. न्या. सिंह – हमारे समक्ष की रिट याचिका विद्वान् एकल

न्यायाधीश द्वारा तारीख 22 दिसंबर, 2011 के आदेश के अधीन किए गए निर्देश के आधार पर इस वृहत्तर न्यायपीठ के समक्ष पेश की गई है । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने पक्षकारों को गुण-दोष के आधार पर सुनने के पश्चात् नीचे उल्लिखित तथ्यों और परस्पर दी गई दलीलों का उल्लेख किया है ।

2. याची की ओर से इस न्यायालय के कतिपय निर्णयों का अवलंब लिया गया है जिसमें **प्रबंध समिति एम. एम. आई. इन्टर कालेज, बिजनौर** बनाम **उप निदेशक शिक्षा 10वीं सर्किल और अन्य**[1] वाले मामले में दिया गया खंड न्यायपीठ का निर्णय सम्मिलित है । इसके प्रतिकूल प्रत्यर्थी सं. 4 ने जो कि एक प्राइवेट व्यक्ति है, अन्यों के साथ याची-प्रबंध समिति की काल अवधि के विस्तार पर आपत्ति करते हुए इस न्यायालय की एक अन्य पश्चात्वर्ती खंड न्यायपीठ द्वारा **प्रबंध समिति आर्य कन्या इन्टर कालेज, बुलन्दशहर और अन्य** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य**[2] वाले मामले में दिए गए निर्णय का अवलंब लिया है ।

3. विद्वान् न्यायाधीश ने यह मत व्यक्त किया कि दोनों खंड न्यायपीठों के मत में भिन्नता है । उसकी राय में वृहत्तर न्यायपीठ द्वारा निम्नलिखित दो सुसंगत प्रश्नों का विनिश्चय किए जाने की आवश्यकता है :–

(1) क्या संशोधन, संशोधन की तारीख से प्रभावी होगा ?

(2) क्या संशोधन उस विद्यमान प्रबंध समिति को जिसने संशोधन करके प्रबंध समिति की काल अवधि में विस्तार किया है, लागू होगा या यह संशोधन ऐसी प्रबंध समिति को लागू होगा जो संशोधन के पश्चात् आयोजित निर्वाचन के पश्चात् गठित होगी ?

4. आश्चर्यजनक रूप से हमारे समक्ष सभी पक्षकारों के काउंसेलों ने विद्वान् एकल न्यायाधीश के समक्ष के याची की दलील के आधार का समर्थन किया है ।

5. उपर्युक्त दोनों प्रश्नों या विधि के विवाद्यकों का मूल्यांकन करने और विनिश्चित करने के लिए यह आवश्यक है कि ऐसे कतिपय तथ्यों का उल्लेख किया जाए जो इस मामले में किसी भी प्रकार से विवादित नहीं हैं । जैसाकि ऊपर उल्लेख किया गया है कि विद्वान् एकल न्यायाधीश ने दोनों इन्टर कालेजों, जो उत्तर प्रदेश शिक्षा अधिनियम, 1921

---

[1] 1994 (24) ए. एल. आर. 410 = 1995 इलाहाबाद ला जर्नल 427.

[2] 2009 (1) ए. डब्ल्यू. सी. 466.

(जिसे आगे संक्षेप में ''1921 का अधिनियम'' कहा गया है) से विनियमित होते हैं, से संबंधित निर्णयों पर विचार किया । इसके प्रतिकूल इस मामले में की याची जो एक स्नातकोत्तर महाविद्यालय की प्रबंध समिति है, उत्तर प्रदेश राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम, 1973 (जिसे आगे संक्षेप में ''1973 का अधिनियम'' कहा गया है) और इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन विश्वविद्यालय प्रत्यर्थी द्वारा विरचित कानूनों से विनियमित होती है । किसी भी अधिनियम के अधीन अपेक्षित मान्यता प्राप्त करने के लिए किसी माध्यमिक महाविद्यालय या डिग्री महाविद्यालय को सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1860 (जिसे आगे संक्षेप में ''1860 का अधिनियम'' कहा गया है) के अधीन सम्यक्त: रजिस्ट्रीकृत सोसाइटी द्वारा स्थापित किया गया होना चाहिए । किसी रजिस्ट्रीकृत सोसाइटी के रूप में वह अपनी स्वयं की उप-विधियां बना सकता है, तथापि, संबंधित अधिनियमों के अधीन शैक्षणिक संस्था की मान्यता के लिए उसकी अपनी प्रशासनिक स्कीम होनी आवश्यक है । किसी माध्यमिक संस्था के मामले में प्रशासनिक स्कीम, 1921 के अधिनियम के अधीन विशेषतया धारा 16-गग की आज्ञा के अनुसार तीसरी अनुसूची में अधिकथित सिद्धांतों के समरूप होनी चाहिए । 1921 के अधिनियम की धारा 16-गगग शिक्षा निदेशक में यह शक्ति निहित करती है कि वह प्रशासनिक स्कीम में उपांतरण करने का सुझाव करने वाली प्रबंध समिति को सूचना भेजे और ऐसी संस्था से वर्तमान स्कीम में नई स्कीम को प्रस्तुत करने या विद्यमान स्कीम में संशोधन करने के लिए नई स्कीम को प्रस्तुत करने की अपेक्षा करे । शिक्षा निदेशक प्रबंध समिति के अभ्यावेदन पर विचार करने के पश्चात् यथास्थिति नई स्कीम का अनुमोदन कर सकता है या वर्तमान स्कीम में संशोधन कर सकता है ।

6. खंड न्यायपीठ द्वारा **प्रबंध समिति एम. एम. आई. इन्टर कालेज, बिजनौर** बनाम **उप-निदेशक शिक्षा 10वीं सर्किल और अन्य**[1] वाले मामले में दिए गए निर्णय के अनुसार 1921 के अधिनियम द्वारा प्रत्येक सरकारी संस्था की स्कीम तीसरी अनुसूची में अधिकथित सिद्धांतों के अनुसार नहीं हो सकती और वर्तमान स्कीम में पुर:स्थापित संशोधन तुरन्त प्रभावी हो जाता है । यद्यपि संशोधन भूतलक्षी प्रभाव से नहीं है, तथापि, वर्तमान समिति की अवधि संशोधन के अनुसरण में संगणित की जानी चाहिए । न्यायालय ने यह स्पष्ट किया कि चूंकि संशोधन इसके किए जाने की

[1] 1994 (24) ए. एल. आर. 410 = 1995 इलाहाबाद ला जर्नल 427.

तारीख से ही प्रवर्तित होता है इसलिए इसे केवल भूतलक्षी रूप से प्रभावी नहीं कहा जा सकता क्योंकि यह उस समिति की अवधि को प्रभावित करेगा जो संशोधन की तारीख से पूर्व निर्वाचित की गई थी । खंड न्यायपीठ ने उच्चतम न्यायालय द्वारा **बिशन नारायण** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में दिए गए निर्णय का अवलंब लिया जिसमें जो विधि अधिकथित की गई थी वह अभी भी विद्यमान है और यदि किसी सरकारी सेवक की सेवानिवृत्ति की आयु को कम करने वाले नियम को केवल उस तारीख से प्रवर्तित किया जाता है जब यह प्रख्यापित किया गया था न कि किसी पूर्वतर तारीख से तो नियम मात्र इस कारण से भूतलक्षी प्रभाव से लागू नहीं होगा क्योंकि यह उस कर्मचारी को प्रभावित करेगा जिसने संशोधन के पूर्व सेवा ग्रहण की है ।

7. एक अन्य खंड न्यायपीठ ने भी वर्ष 2008 में **प्रबंध समिति आर्य कन्या इन्टर कालेज, बुलन्दशहर और अन्य** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य**[2] वाले मामले में ऐसे ही एक विवाद्यक पर विचार किया था जिसमें तथ्यात्मक और विधिक विषय पर महत्वपूर्ण और तात्विक परिवर्तन किया गया था । शिक्षा निदेशक ने तारीख 4 अगस्त, 2003 को एक परिपत्र जारी किया जिसमें निदेशक के तारीख 30 मार्च, 1998 के उस विनिश्चय का निर्देश किया गया था जिसके द्वारा गैर-सरकारी माध्यमिक विद्यालयों की प्रबंध समिति की अवधि दो वर्ष की अवधि से बढ़ाकर तीन वर्ष कर दी गई थी और इस संदर्भ में यह स्पष्ट किया गया था कि प्रबंध समिति की कार्य अवधि के दौरान ऐसे परिवर्तन/संशोधन की आवश्यक औपचारिकताएं साधारण निकाय द्वारा इस आशय का संकल्प पारित करके पूरी की जानी चाहिए । यदि ऐसे संकल्प का अनुमोदन होता है तभी नई गठित प्रबंध समिति के निर्वाचन के पश्चात् उसकी पदावधि के संबंध में ऐसा संशोधन लागू होगा जो कि पदावधि को विस्तारित करने के लिए प्रस्थापना को पारित करने की तारीख़ के पश्चात् आयोजित निर्वाचन द्वारा गठित हुई हो । ऐसी प्रस्थापना का फायदा उस प्रबंध समिति को उपलब्ध नहीं होगा जिसकी अवधि के दौरान ऐसा प्रस्ताव पारित किया गया है । उस मामले में आक्षेपित आदेश मंडलीय संयुक्त शिक्षा निदेशक द्वारा वर्ष 2007 में पारित किया गया था और यह आदेश तारीख 4 अगस्त, 2003 के उपर्युक्त पत्र पर आधारित था जिसे निर्णय के पैरा 15 में उद्धृत किया गया है । ऐसी

---

[1] ए. आई. आर. 1965 एस. सी. 1567.

[2] 2009 (1) ए. डब्ल्यू. सी. 466.

पश्चात्वर्ती सामग्री के आधार पर खंड न्यायपीठ ने पैरा 29 में यह मत व्यक्त किया कि निदेशक के पत्र को दृष्टिगत करते हुए पूर्वतर निर्णय लागू नहीं होते और इसलिए पक्षकारों द्वारा अवलंब लिए गए पूर्वतर निर्णयों का निर्देश करना आवश्यक नहीं था । चूंकि निर्वाचित प्रबंध समिति की अवधि के संबंध में प्रशासनिक स्कीम उस शर्त के साथ अनुमोदित की गई थी जो शिक्षा निदेशक के तारीख 4 अगस्त, 2003 के परिपत्र/आदेश के अधीन उपबंधित है इसलिए पश्चात्वर्ती निर्णय पर पूर्वतर खंड न्यायपीठ के निर्णयों में विचार करना सुसंगत नहीं था । तथापि, पश्चात्वर्ती खंड न्यायपीठ ने निर्णय के पैरा 28 में इस प्रकार मत व्यक्त किया :–

> "28. अन्यथा भी हमारा यह मत है कि यह उचित और सही है कि उस प्रबंध समिति को जो प्रशासनिक स्कीम के उपबंधों के अनुसरण में निर्वाचित की गई है, केवल उस अवधि के लिए बने रहने के लिए अनुज्ञात किया जाना चाहिए जो निर्वाचन के समय लागू थी । ऐसी अवधि का विस्तार जो अपनी स्वयं की अवधि की अनुमति प्राप्त करके और प्रशासनिक स्कीम में संशोधन का सुझाव करके उपबंधित की गई है, यथा उपबंधित अवधि के विस्तार का इस न्यायालय द्वारा अनुमोदन नहीं किया जा सकता और इसलिए हमें यह अभिनिर्धारित करने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि निदेशक के तारीख 4 अगस्त, 2003 के परिपत्र/पत्र में यथा अन्तर्विष्ट तथा मंडलीय संयुक्त शिक्षा निदेशक के तारीख 3 सितंबर, 2007 के आदेश में अधिरोपित शर्त के अनुसार भी प्रबंध समिति जो अनुमोदन के आदेश की तारीख के पश्चात् निर्वाचित हुई है, के संबंध में लागू विस्तारित अवधि के साथ प्रशासनिक स्कीम में संशोधनों का अनुमोदन करना ऋजु और न्यायोचित है । इन आदेशों में भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन साम्यापूर्ण अधिकारिता में हस्तक्षेप करने की कोई आवश्यकता नहीं है ।"

8. जहां तक उत्तर प्रदेश राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम, 1973 का संबंध है, इसकी धारा 2 विभिन्न निबंधनों में परिभाषाओं का उल्लेख करती है । केवल धारा 2 की उपधारा (13) इस मामले के प्रयोजन के लिए सुसंगत है । यह धारा "प्रबंधन" शब्द को सहबद्धता या महाविद्यालय संगम को परिभाषित करती है जिसका यह अर्थ है कि प्रबंध समिति या ऐसे कालेज के कार्यों के प्रबंधन से संबंधित प्रभार लेने वाला कोई अन्य निकाय जो ऐसे विश्वविद्यालय द्वारा मान्यताप्राप्त हो । प्रत्यर्थी-विश्वविद्यालय ने

कानून विरचित करने के लिए अपनी शक्तियों का प्रयोग किया है । प्रत्यर्थी-पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर के प्रथम कानून का अध्याय 10 इस मामले में ऊपर उल्लिखित दो विवाद्यकों का विनिश्चिय करने के लिए सुसंगत है । उप नियम 10.05 यह अपेक्षा करता है कि इस उप नियम में अन्तर्विष्ट कतिपय शर्तें और निबंधन प्रत्येक महाविद्यालय के प्रबंधन की स्कीम के गठन में निगमित होनी चाहिए । शर्त सं. (ङ) अन्य बातों के साथ-साथ यह उपबंध करती है कि प्रबंध समिति की पदावधि पांच वर्ष से अधिक नहीं होगी और कोई पद धारक कुल दो बार से ज्यादा पद धारित नहीं कर सकता । शर्त सं. (च) यह अन्य शर्त और निबंधन अधिकथित करती है कि उपर्युक्त गठन में अर्थात् प्रशासिक स्कीम के गठन में उप-कुलपति के पूर्व अनुमोदन के बिना कोई संशोधन नहीं किया जाना चाहिए ।

9. अत: यह स्पष्ट है कि प्रत्यर्थी-विश्वविद्यालय को सुसंगत कानूनों को विरचित करते समय प्रबंध समिति की अधिकतम अवधि पांच वर्ष होने की बात को ध्यान में रखना चाहिए और इस संबंध में कोई संशोधन उक्त अपेक्षा के अनुसार ही होना चाहिए । यह भी स्पष्ट है कि प्रशासनिक स्कीम में संशोधन संस्था के प्रबंध मंडल द्वारा स्वयं अपनी उप-विधियों के अनुसार या प्रशासनिक स्कीम के अनुसार करना चाहिए । तथापि, इस संबंध में उप-कुलपति का पूर्व अनुमोदन अपेक्षित है और अनुमोदन के अभाव में प्रशासनिक स्कीम में कोई संशोधन अस्तित्वयुक्त नहीं माना जाएगा और विधि की दृष्टि में कोई संशोधन नहीं होगा । केवल अनुमोदन प्राप्त होने पर ही प्रस्थापित संशोधन प्रभावी बनेगा । यदि "अनुमोदन" शब्द के पूर्व उल्लिखित "पूर्व" शब्द का अन्यथा निर्वचन किया जाता है तो वह व्यर्थ या अर्थहीन हो जाएगा । ऐसे निर्वचन से बचा जाना चाहिए ।

10. तद्नुसार प्रथम प्रश्न का सकारात्मक रूप में उत्तर दिया जाता है । संशोधन, संशोधन करने की तारीख से प्रभावी होगा और ऐसी तारीख वह तारीख होगी जब उप-कुलपित, प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय के प्रथम कानून के उप नियम 10.05 के खंड सं. (ङ) या शर्तों के निबंधनों में अपेक्षित अनुमोदन प्रदान करता है । यह स्पष्ट किया जाता है कि जहां कानून कानूनी प्राधिकारी से पूर्वतर अनुमोदन की अपेक्षा करता है वहां संशोधन उस तारीख से प्रभावी होगा जिस पर पूर्व अनुमोदन मंजूर किया जाता है और यदि अनुमोदन करने वाले प्राधिकारी को इस संबंध में शक्ति प्राप्त है और वह इस प्रयोजन के लिए कोई अन्य तारीख विनिर्दिष्ट करता है तो

संशोधन केवल उक्त विनिर्दिष्ट तारीख से ही प्रभावी होगा ।

11. जहां तक दूसरे प्रश्न का संबंध है, इसका उत्तर अधिनियम या कानूनों के निर्वचन पर निर्भर नहीं है अपितु विधि के एक साधारण सिद्धांत के रूप में ऐसे विवाद्यक को इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा **प्रबंध समिति, एम. एम. आई. इन्टर कालेज, बिजनौर** बनाम **उप-निदेशक शिक्षा 10वीं सर्किल और अन्य**[1] वाले मामले में विनिश्चित किया गया है । उच्चतम न्यायालय के निर्णय से विधि का यह सिद्धांत प्रकट होता है । हमारे सुविचारित मत के अनुसार **बिशन नारायण** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[2] वाले मामले में कोई अनियमितता नहीं है और इसे अभी भी विधिमान्य रूप में लागू माना जाना चाहिए ।

12. इसका अनुसरण करते हुए दूसरे प्रश्न का उत्तर यह अभिनिर्धारित करते हुए दिया जाता है कि ऐसा संशोधन जिसके द्वारा प्रबंध समिति की अवधि विस्तारित की गई है या कम की गई है, तुरंत प्रभावी होगा और इसके परिणामस्वरूप तत्समय की विद्यमान समिति की अवधि विस्तारित हो जाएगी या संशोधन के अनुसार उपांतरित हो जाएगी । हम यहां सावधानी के नाते यह उल्लेख करना चाहते हैं कि यदि प्राधिकारी संशोधन करने के लिए सक्षम है और स्वत: यह विनिर्दिष्ट करना पसंद करता है कि संशोधन भावी तारीख से प्रभावी होगा तो संशोधन ऐसी पश्चात्वर्ती तारीख से लागू होगा जो विनिर्दिष्ट की जाए । समान रूप में जहां अनुमोदन करने वाले प्राधिकारी को समान निर्बंधन अधिकथित करने की आवश्यक शक्ति प्राप्त है वहां संशोधन अनुमोदन करने वाले प्राधिकारी द्वारा अधिकथित शर्तों या निर्बंधनों के अनुसार ही लागू हो सकेगा । ऐसी किसी विशिष्टि या निर्बंधन के अभाव में संशोधन विद्यमान प्रबंध समिति को उस तारीख को लागू होगा जब संशोधन प्रवर्तन में आता है ।

13. दोनों खंड न्यायपीठों के निर्णयों की परीक्षा करने के पश्चात् हमारा यह मत है कि **प्रबंध समिति एम. एम. आई. इन्टर कालेज, बिजनौर** बनाम **उप-निदेशक शिक्षा 10वीं सर्किल और अन्य**[1] और **प्रबंध समिति आर्य कन्या इन्टर कालेज, बुलन्दशहर और अन्य** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य**[3] वाले मामलों का विनिश्चिय करने वाली दोनों खंड

---

[1] 1994 (24) ए. एल. आर. 410 = 1995 इलाहाबाद ला जर्नल 427.

[2] ए. आई. आर. 1965 एस. सी. 1567.

[3] 2009 (1) ए. डब्ल्यू. सी. 466.

न्यायपीठों द्वारा अधिकथित विधि या सिद्धांतों के संबंध में कोई वास्तविक विवाद या विभेद नहीं है । पश्चात्वर्ती निर्णय में विशेष रूप से यह उल्लेख किया गया है कि पश्चात्वर्ती परिपत्र के आधार पर यह पाया गया कि पूर्वतर निर्णय लागू नहीं होते । ऐसी स्थिति में यह नहीं कहा जा सकता कि दोनों निर्णय परस्पर विरोधी हैं । वहां कोई विवाद उत्पन्न हो सकता है जहां समान तथ्यों और परिस्थितियों में दो अलग-अलग मत व्यक्त किए गए हों । मामले की विवेचना करने के पश्चात् हमारा यह मत है कि उस निर्णय के पैरा 28 के आरंभ में समान प्रकृति की कतिपय मताभिव्यक्ति मात्र एक प्रासंगिक मताभिव्यक्ति है और उस निर्णय में विवेचित विवाद्यक को विनिश्चिय करने के लिए आवश्यक या सुसंगत नहीं है । अत: इस पैरा में की गई मताभिव्यक्ति इस प्रकार है :–

> "अन्यथा भी हम यह महसूस करते हैं कि यह उचित और सही है कि उस प्रबंध समिति को जो प्रशासनिक स्कीम के उपबंधों के अनुसरण में चयनित की जाती है, केवल उस अवधि के लिए बने रहने के लिए अनुज्ञात किया जाना चाहिए जो निर्वाचन के समय लागू थी । ऐसी अवधि के विस्तार का जो स्वयं अपनी अवधि की अनुज्ञा प्राप्त करके और प्रशासनिक स्कीम में संशोधन प्रस्तावित करके किया जाता है, इस न्यायालय द्वारा अनुमोदन नहीं किया जा सकता और हमारे द्वारा इसका अनुमोदन नहीं किया जा रहा है ।"

उपर्युक्त मताभिव्यक्तियां ऐसी प्रासंगिक मताभिव्यक्तियां समझी जाएंगी जो विशिष्ट मामले के तथ्यों में की गई हैं और यह कोई विधि अधिकथित करने के रूप में पूर्व निर्णय के रूप में नहीं समझी जाएंगी ।

14. उपर्युक्त दोनों विवाद्यकों या प्रश्नों का उत्तर देने के पश्चात् हम साधारणतया मामले को हमारे निर्णय को दृष्टिगत करते हुए रिट याचिका के निपटान के लिए विद्वान् एकल न्यायाधीश को वापस भेजते हैं, तथापि, इस तथ्य को दृष्टिगत करते हुए यह केवल औपचारिकता होगी क्योंकि इस मामले में विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा पारित अंतरिम आदेश के आधार पर भी दो वर्ष की विस्तारित अवधि समाप्त हो चुकी है और याची प्रबंध समिति ने पहले ही संशोधन के अनुसार अनुज्ञेय पांच वर्ष की सम्पूर्ण अवधि पूरी कर ली है । यह ऐसा अधिकतम फायदा है जो हमारे निर्णय के आधार पर और विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा निर्देश के आदेश में उल्लिखित तथ्यों के आधार पर याची को प्राप्त हो सकता है ।

इन तथ्यों के अनुसार प्रत्यर्थी विश्वविद्यालय से सहबद्ध महाविद्यालय, तारीख 3 मार्च, 2008 को आयोजित निर्वाचन के आधार पर याची प्रबंध समिति से विनियमित होगा । उसने तारीख 2 मार्च, 2011 की मूल प्रशासनिक स्कीम के अनुसार तीन वर्ष की अवधि पूरी कर ली है । तथापि, सोसाइटी के साधारण निकाय ने तारीख 25 जुलाई, 2010 सोसाइटी की उप-विधियों में संशोधन करके प्रबंध समिति की अवधि तीन वर्ष से बढ़ाकर पांच वर्ष तक विस्तारित कर दी है । यह संशोधन और प्रबंध समिति की विस्तारित अवधि उप-कुलपति द्वारा आरंभत: तारीख 11 नवंबर, 2010 के आदेश द्वारा अनुमोदित की गई थी । इसके पश्चात् खंड न्यायपीठ के निर्णय के आधार पर **प्रबंध समिति आर्य कन्या इन्टर कालेज, बुलन्दशहर और अन्य** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य**[1] वाले मामले में उप-कुलपति ने आक्षेपित आदेश द्वारा यह स्पष्ट किया था कि संशोधन का फायदा केवल अगली प्रबंध समिति को ही उपलब्ध होगा । उपर्युक्त उल्लिखित हमारे निष्कर्षों को दृष्टिगत करते हुए उप-कुलपति का मत भ्रमित करने वाला था और विधि द्वारा अपेक्षित नहीं था । तथापि, चूंकि याची ने अपनी पांच वर्ष की विधिक अवधि पहले ही पूरी कर ली है इसलिए उसे आगे कोई अनुतोष प्रदान नहीं किया जा सकता और इसलिए रिट याचिका विफल मानी जाएगी ।

15. मामले को इस दृष्टि से देखते हुए हम विद्वान् एकल न्यायाधीश को याचिका प्रतिप्रेषित करने के बजाय इसका विफल होने के रूप में निपटान करते हैं । खर्चों के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

रिट याचिका तद्नुसार निपटाई गई ।

मह.

---

[1] 2009 (1) ए. डब्ल्यू. सी. 466.

बिशनू चरण मोहन्ती और एक अन्य

बनाम

रहस बिहारी दास और अन्य

तारीख़ 3 मई, 2013

न्यायमूर्ति एस. के. मिश्रा

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – आदेश 21, नियम 99 और 100 – विधिक प्रक्रिया द्वारा संपत्ति का क़ब्ज़ा – क़ब्जेदार की जानकारी के बिना क़ब्ज़ेदार को डिक्री धारक द्वारा बेक़ब्ज़ा किया जाना – निष्पादन कार्यवाही के निपटान के पश्चात् क़ब्ज़े की वापसी के लिए आवेदन – ग्राह्यता – निष्पादन मामले के निपटान के पश्चात् भी आदेश 21, नियम 100 के अधीन क़ब्जा वापसी के लिए आवेदन फाइल किया जा सकता है ।

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 – आदेश 21, नियम 99 और 100 [सपठित परिसीमा अधिनियम, 1963 – धारा 17 और अनुच्छेद 128] – निष्पादन मामले का निपटान – पुन: स्थापन आवेदन – परिसीमा – क़ब्ज़ेदार की जानकारी के बिना क़ब्ज़ेदार को बेक़ब्ज़ा किया जाना – परिसीमा अवधि बेक़ब्ज़ा होने की सूचना की तारीख़ से संगणित की जाएगी न कि बेक़ब्ज़ा करने की तारीख़ से – अत: बेक़ब्ज़ा किए जाने के 30 दिन के पश्चात् फाइल किया गया प्रत्यास्थापन आवेदन कालवर्जित नहीं माना जा सकता ।

आवेदकों ने निचले न्यायालयों अर्थात् अधीनस्थ न्यायाधीश तथा अपर जिला न्यायाधीश, भुवनेश्वर के आदेशों से व्यथित होकर सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 के अधीन वर्तमान सिविल पुनरीक्षण आवेदन फाइल किया है । सिविल पुनरीक्षण आवेदन खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – चालू बंदोबस्त में वादान्तर्गत ग्राम को इकाई सं. 31 के अधीन सरला नगर के रूप में पुन: नामित किया गया था और आवेदक के क़ब्ज़े का उल्लेख किया गया था और आवेदक के क़ब्ज़े वाले क्षेत्र के लिए नया भू-खंड दिया गया था और आवेदक के हक में अधिकार संबंधी अभिलेख प्रकाशित किया गया था जो कि नए भू-खंड 71 के बारे में था

और जिसका क्षेत्र 0.189 एकड़ था । इस प्रकार आवेदक वाद से संबंधित भू-खंड पर अपनी खरीदारी की तारीख से जिसमें उसकी बेहतर हकदारी थी, भौतिक रूप से काबिज रही थी । आवेदक तारीख 31 जनवरी, 1987 को सेवानिवृत्त हुई और तारीख 20 फरवरी, 1987 को उसे यह पता चला कि विरोधी पक्षकार सं. 1 और 2 ने सीमा दीवार को भागत: गिराकर अनुसूचित क्षेत्र में अतिचार कर लिया है और उस पर बलपूर्वक खेती कर रहे हैं । जांच पर यह पता चला कि विरोधी पक्षकार सं. 1 और 2 ने इस न्यायालय के समक्ष एक वाद संस्थित किया था जिसकी सं. 1977 का मूल वाद सं. 32 थी और जो विरोधी पक्षकार 3 से 5 के विरुद्ध फाइल किया गया था और उसमें कतिपय भूमि के विभाजन की मांग की गई थी जिसमें वाद भूमि भी सम्मिलित थी और वाद तारीख 14 अप्रैल, 1980 को प्रारंभिक रूप से डिक्री किया गया था । उस प्रारंभिक डिक्री की तारीख 21 फरवरी, 1984 को आयुक्त की रिपोर्ट से पुष्टि हो गई थी और तत्पश्चात् 1975 का निष्पादन मामला सं. 18 संस्थित किया गया था और यह अभिकथित किया गया है कि विरोधी पक्षकार सं. 1 और 2 ने उक्त डिक्री के निष्पादन के अधीन क़ब्ज़ा प्राप्त कर लिया था । आवेदक उक्त मुकदमेदारी में एक पक्षकार नहीं थी और न ही वह डिक्री के निष्पादन के बारे में जानती थी । केवल तारीख 20 फरवरी, 1987 के पश्चात् ही आवेदक को अपने बेक़ब्ज़ा होने के बारे में पता चला । आवेदक का यह भी पक्षकथन है कि विरोधी पक्षकार सं. 1 और 2 तथा उसके पूर्व उत्तराधिकारियों ने आवेदक-विक्रेता की पुत्रियों से बाद में इसे क्रय कर लिया था और बीकाबेहरा की पुत्री ने अनुसूचित खाते से भूमि विक्रय की थी जब बीकाबेहरा जीवित था और इसलिए उसे हक नहीं मिल सकता था । तथापि, यदि कोई विक्रय हुआ हो तो वह बीकाबेहरा द्वारा आवेदक के हक में किए गए पूर्वतर विक्रय के अध्यधीन होगा और आवेदक द्वारा क्रय किया गया क्षेत्र विभाजन वाली वाद भूमि में सम्मिलित नहीं किया जाना चाहिए । किंतु विरोधी पक्षकार सं. 1 और 2 ने सही तथ्य और अपने हक का स्रोत प्रकट किए बिना न्यायालय के साथ कपट किया और विरोधी पक्षकार सं. 1 और 2 ने अवैध लाभ प्राप्त करने के लिए अद्यतन भू-धृति खाता प्रस्तुत नहीं किया और जानबूझकर चालू बंदोबस्त के तथ्यों को छुपाया जो 1974 में जारी था और जिसका पर्चा 1976 में उपलब्ध था । विरोधी पक्षकार सं. 1 और 2 ने डिक्रीधारक के रूप में अनुसूचित संपत्ति प्राप्त करते हुए याची को बेक़ब्ज़ा किया जो कि एक निर्णीत-ऋणी नहीं है और न ही डिक्री से आबद्ध है । इसके अतिरिक्त अनुसूचित भू-खंड की भिन्न संख्या है और भू-धृति खाते के

अनुसार वाद भूमि की भिन्न प्रविष्टि है जिसके लिए क्षेत्र वाद की विषयवस्तु नहीं हो सकता और न ही वह क्षेत्र डिक्री के निष्पादन में वाद भूमि का क़ब्ज़ा लेने के लिए दायी था । आवेदक द्वारा यह भी कहा गया है कि आवेदक विधिपूर्ण हक धारक थी और अनुसूचित संपत्ति उसके भौतिक क़ब्ज़े में है और वह किसी भी प्रकार से डिक्री से आबद्ध नहीं है और इसलिए वह क़ब्ज़ा पाने की और अनुसूचित संपत्ति पर क़ब्ज़ा बनाए रखने की हकदार है । अत: आवेदक द्वारा उपर्युक्त अनुतोष के लिए अनुरोध करते हुए प्रकीर्ण वाद फाइल किया गया था । जहां तक प्रथम प्रश्न का संबंध है । दोनों निचले न्यायालयों अर्थात् अपील न्यायालय और मूल न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला है कि दूसरे व्यक्ति को गलत रूप से किसी निष्पादन कार्यवाही में दी गई संपत्ति की वापसी के लिए आवेदन निष्पादन मामले के निपटान के पश्चात् भी संहिता के आदेश 21, नियम 100 के अधीन पुन:स्थापित किया जा सकता है । (पैरा 3 और 6)

जहां तक अगले प्रश्न अर्थात् परिसीमा का संबंध है । इस न्यायालय ने इस तथ्य की अवेक्षा की कि यह स्वीकार किया गया है कि बेक़ब्ज़ा तारीख 20 अगस्त, 1986 को किया गया था और वाद के पुन:स्थापन के लिए आवेदन तारीख 23 फरवरी, 1987 को दिया गया है । अत: स्वीकृतत: पुन:स्थापन आवेदन बेक़ब्ज़ा करने के 30 दिन के पश्चात् फाइल किया गया है । मामले को इस दृष्टि से देखते हुए इस न्यायालय का यह मत है कि परिसीमा की अवधि उसकी जानकारी की तारीख से आरंभ होगी न कि प्रश्नगत संपत्ति से बेक़ब्ज़ा करने की तारीख से । तद्नुसार इस न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि विद्वान् अधीनस्थ न्यायाधीश, भुवनेश्वर ने कोई त्रुटि नहीं की है और न ही अपर जिला न्यायाधीश ने विद्वान् अधीनस्थ न्यायाधीश द्वारा अभिलिखित निष्कर्षों की पुष्टि करके कोई गलती की है । मूल न्यायालय द्वारा पारित आदेश तथा अपील न्यायालय द्वारा पारित पुष्टिकरण आदेश में हस्तक्षेप करने के लिए कोई गुंजाइश नहीं है । (पैरा 7 और 11)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2005]	ए. आई. आर. 2005 एस. सी. 3460 : **दामोदरन पिल्लई और अन्य** बनाम **साउथ इंडियन बैंक लिमिटेड** ;	7, 9

[2001] ए. आई. आर. 2001 एस. सी. 2763 :
पल्लव शेठ बनाम **कस्टोडियन और अन्य** ; 10

[1973] ए. आई. आर. 1973 कलकत्ता 144 :
हेमंत कुमार देव बनाम **तारामणि देवी टिबरीवाला** ; 7, 8, 9

[1952] ए. आई. आर. (39) 1952 पटना 152 :
भुखल तिवारी बनाम **रामदयाल साह और अन्य** ; 6

[1938] ए. आई. आर. 1938 कलकत्ता 192 :
राजेन्द्र किशोर पाल चौधरी और अन्य बनाम **असीरउल्ला और एक अन्य** । 6

पुनरीक्षण (सिविल) अधिकारिता : 2004 का सिविल पुनरीक्षण सं. 43.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 115 के अधीन सिविल पुनरीक्षण ।

आवेदक की ओर से सर्वश्री पी. के. कार, डी. के. राथ, बी. पाढी, ए. आचार्य और आर. पी. दलई

विरोधी पक्षकार की ओर से मैसर्स जे. साहू, एच. के. त्रिपाठी, एम. के. राउत, जे. पी. पात्रा और एस. पी. नायक

न्यायमूर्ति एस. के. मिश्रा – सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (जिसे आगे संक्षेप में ''संहिता'' कहा गया है) की धारा 115 के अधीन फाइल इस सिविल पुनरीक्षण में आवेदक अधीनस्थ न्यायाधीश, भुवनेश्वर के न्यायालय में 1987 के प्रकीर्ण मामला सं. 95 में विरोधी पक्षकार है । आवेदकों ने विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश, भुवनेश्वर द्वारा पारित उस आदेश को आक्षेपित किया है जिसके द्वारा उसने उपर्युक्त मामले में विद्वान् अधीनस्थ न्यायाधीश द्वारा पारित उस आदेश की पुष्टि की है जिसके द्वारा वाद भूमि का क़ब्ज़ा विरोधी पक्षकारों द्वारा आवेदकों को वापस करने का निदेश दिया गया है ।

2. मूल न्यायालय के समक्ष आवेदकों द्वारा किए गए पक्षकथन का इस प्रकार उल्लेख किया जा सकता है :–

आवेदक ने तारीख 15 अप्रैल, 1958 को एक रजिस्ट्रीकृत विक्रय-

विलेख के अधीन आवेदन में दी गई अनुसूची के ब्यौरों के अनुसार खाता सं. 171 के अधीन खेत सं. 151/1314 से और खाता सं. 42 के अधीन खेत सं. 151/1312 से 0.189 एकड़ भूमि 470/- रुपए प्रतिफल के बदले खरीदी थी और उसका क़ब्ज़ा दिया गया था और उसमें सीमा दीवारें खड़ी करके वह लगातार काबिज़ रही थी और वह नियमित रूप से किराए का संदाय कर रही थी । चूंकि आवेदक सरकारी सेवक होने के नाते विभिन्न स्थानों पर तैनात रही थी इसलिए वह बन्दोबस्त कार्यवाही में समुचित रूप से भाग नहीं ले सकी और भूमि उसके भौतिक क़ब्ज़े में थी और बाद में उसे यह पता चला कि बन्दोबस्त कार्यवाही अंतिम हो गई थी और आर. ओ. आर. को वर्ष 1962 में प्रकाशित किया गया था । तथापि, आवेदक ने वर्ष 1964 में अपने नाम का नामांतरण कराने के लिए आवेदन दिया था क्योंकि आवेदक के क़ब्ज़े वाला क्षेत्र खेत सं. 260/1372 और खेत सं. 260 मौजा लक्ष्मीनगर के खाता सं. 179 में सम्मिलित था जिसका बंदोबस्त 1962 में हुआ था । तहसीलदार, भुवनेश्वर ने उक्त नामांतरण कार्यवाही में सम्यक् जांच के पश्चात् खाता सं. 179 से खाता सं. 313/54 पृथक् करके उस पर आवेदक के नाम का नामांतरण कर दिया । आवेदक के क़ब्ज़े वाले क्षेत्र को ध्यान में रखते हुए खेत सं. 260/1372/1612 से दो भू-खंड बनाए जिसका क्षेत्र 0.110 एकड़ था और खेत सं. 260/1613 से 0.79 एकड़ भूमि निकाली और जो क्रमश: साबिक भू-खंड सं. 151/1314 और 151/1312 के बराबर था । भू-धृति खाते और गांव के नक्शे में तद्नुसार संशोधन किए गए थे और आवेदक लगातार किराया अदा कर रही थी ।

3. चालू बंदोबस्त में वादान्तर्गत ग्राम को इकाई सं. 31 के अधीन सरला नगर के रूप में पुन: नामित किया गया था और आवेदक के क़ब्ज़े का उल्लेख किया गया था और आवेदक के क़ब्ज़े वाले क्षेत्र के लिए नया भू-खंड दिया गया था और आवेदक के हक में अधिकार संबंधी अभिलेख प्रकाशित किया गया था जो कि नए भू-खंड 71 के बारे में था और जिसका क्षेत्र 0.189 एकड़ था । इस प्रकार आवेदक वाद से संबंधित भू-खंड पर अपनी खरीदारी की तारीख से जिसमें उसकी बेहतर हकदारी थी, भौतिक रूप से काबिज रही थी । आवेदक तारीख 31 जनवरी, 1987 को सेवानिवृत्त हुई और तारीख 20 फरवरी, 1987 को उसे यह पता चला कि विरोधी पक्षकार सं. 1 और 2 ने सीमा दीवार को भागत: गिराकर अनुसूचित क्षेत्र में अतिचार कर लिया है और उस पर बलपूर्वक खेती कर रहे हैं । जांच पर यह पता चला कि विरोधी पक्षकार सं. 1 और 2 ने इस न्यायालय

के समक्ष एक वाद संस्थित किया था जिसकी सं. 1977 का मूल वाद सं. 32 थी और जो विरोधी पक्षकार सं. 3 से 5 के विरुद्ध फाइल किया गया था और उसमें कतिपय भूमि के विभाजन की मांग की गई थी जिसमें वाद भूमि भी सम्मिलित थी और वाद तारीख 14 अप्रैल, 1980 को प्रारंभिक रूप से डिक्री किया गया था । उस प्रारंभिक डिक्री की तारीख 21 फरवरी, 1984 को आयुक्त की रिपोर्ट से पुष्टि हो गई थी और तत्पश्चात् 1975 का निष्पादन मामला सं. 18 संस्थित किया गया था और यह अभिकथित किया गया है कि विरोधी पक्षकार सं. 1 और 2 ने उक्त डिक्री के निष्पादन के अधीन क़ब्ज़ा प्राप्त कर लिया था । आवेदक उक्त मुकदमेदारी में एक पक्षकार नहीं थी और न ही वह डिक्री के निष्पादन के बारे में जानती थी । केवल तारीख 20 फरवरी, 1987 के पश्चात् ही आवेदक को अपने बेक़ब्ज़ा होने के बारे में पता चला । आवेदक का यह भी पक्षकथन है कि विरोधी पक्षकार सं. 1 और 2 तथा उसके पूर्व उत्तराधिकारियों ने आवेदक-विक्रेता की पुत्रियों से बाद में इसे क्रय कर लिया था और बीकाबेहरा की पुत्री ने अनुसूचित खाते से भूमि विक्रय की थी जब बीकाबेहरा जीवित था और इसलिए उसे हक नहीं मिल सकता था । तथापि, यदि कोई विक्रय हुआ हो तो वह बीकाबेहरा द्वारा आवेदक के हक में किए गए पूर्वतर विक्रय के अध्यधीन होगा और आवेदक द्वारा क्रय किया गया क्षेत्र विभाजन वाली वाद भूमि में सम्मिलित नहीं किया जाना चाहिए । किंतु विरोधी पक्षकार सं. 1 और 2 ने सही तथ्य और अपने हक का स्रोत प्रकट किए बिना न्यायालय के साथ कपट किया और विरोधी पक्षकार सं. 1 और 2 ने अवैध लाभ प्राप्त करने के लिए अद्यतन भू-धृति खाता प्रस्तुत नहीं किया और जानबूझकर चालू बंदोबस्त के तथ्यों को छुपाया जो 1974 में जारी था और जिसका पर्चा 1976 में उपलब्ध था । विरोधी पक्षकार सं. 1 और 2 ने डिक्रीधारक के रूप में अनुसूचित संपत्ति प्राप्त करते हुए याची को बेक़ब्ज़ा किया जो कि एक निर्णीत-ऋणी नहीं है और न ही डिक्री से आबद्ध है । इसके अतिरिक्त अनुसूचित भू-खंड की भिन्न संख्या है और भू-धृति खाते के अनुसार वाद भूमि की भिन्न प्रविष्टि है जिसके लिए क्षेत्र वाद की विषयवस्तु नहीं हो सकता और न ही वह क्षेत्र डिक्री के निष्पादन में वाद भूमि का क़ब्ज़ा लेने के लिए दायी था । आवेदक द्वारा यह भी कहा गया है कि आवेदक विधिपूर्ण हक धारक थी और अनुसूचित संपत्ति उसके भौतिक क़ब्ज़े में है और वह किसी भी प्रकार से डिक्री से आबद्ध नहीं है और इसलिए वह क़ब्ज़ा पाने की और अनुसूचित संपत्ति पर क़ब्ज़ा बनाए रखने की हकदार है । अत: आवेदक द्वारा उपर्युक्त अनुतोष के लिए अनुरोध करते

हुए प्रकीर्ण वाद फाइल किया गया था ।

4. विरोधी पक्षकारों ने यह आक्षेप किया है कि आवेदक का आवेदन ग्राह्य नहीं है क्योंकि आवेदक चार सह भागीदारों के बीच सम्यक्त: संस्थित विभाजन वाद में विरोधी पक्षकारों के भाग में आने वाली भूमि में से समायोजन के जरिए क्रय की गई भूमि पर विधिक रूप से दावा नहीं कर सकती । अत: विरोधी पक्षकार अर्थात् इस पुनरीक्षण के आवेदकों ने इसे खारिज करने का अनुरोध किया है । विद्वान् अधीनस्थ न्यायाधीश ने अपने समक्ष पेश की गई सामग्री पर विचार करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला कि वाद भूमि गलत रूप से विभाजन वाद की अनुसूची में सम्मिलित की गई है और आवेदक को इस तथ्य की जानकारी नहीं थी । इसलिए वाद भूमि के विधिक स्वामी होना पाते हुए उसके लिए प्रश्नगत भूमि के क़ब्ज़े की वापसी के लिए आदेश पारित किया गया । इस आदेश को 2002/97 की प्रकीर्ण अपील सं. 41/101 में आक्षेपित किया गया था और विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश, भुवनेश्वर ने तारीख 22 मार्च, 2004 के निर्णय द्वारा विद्वान् अधीनस्थ न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश की पुष्टि करते हुए अपील खारिज कर दी । इस सिविल पुनरीक्षण में तथ्यों के इन्हीं समवर्ती निष्कर्षों को आक्षेपित किया गया है ।

5. सिविल पुनरीक्षण की सुनवाई के दौरान मुख्य रूप से आवेदकों अर्थात् डिक्रीधारकों के विद्वान् काउंसेल द्वारा दो विधिक प्रश्नों के संबंध में दलीलें दी गई हैं । प्रथमत: यह दलील दी गई है कि निष्पादन मामले के निपटान के पश्चात् सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21, नियम 99 या 100 के अधीन कोई आवेदन ग्राह्य नहीं है । द्वितीयत: यह दलील दी गई है कि परिसीमा अधिनियम, 1963 (जिसे आगे संक्षेप में "अधिनियम" कहा गया है) के अनुच्छेद 128 के अनुसार जंगम संपत्ति के बेक़ब्ज़ा व्यक्ति द्वारा क़ब्ज़े के लिए आवेदन और डिक्रीधारक के अधिकार के संबंध में विवाद या किसी डिक्री के निष्पादन में किसी विक्रय पर क्रेता द्वारा आवेदन क़ब्ज़े के 30 दिन के अंदर फाइल किया जाना चाहिए । इस रिट आवेदन में डिक्रीधारक-आवेदक के विद्वान् काउंसेल द्वारा यह दलील दी गई है कि चूंकि आवेदक को तारीख 20 अगस्त, 1986 को बेक़ब्ज़ा किया गया था और संहिता के आदेश 21, नियम 99 के अधीन आवेदन तारीख 22 जनवरी, 1987 को फाइल किया गया था इसलिए आवेदन परिसीमा द्वारा वर्जित है ।

6. जहां तक प्रथम प्रश्न का संबंध है । दोनों निचले न्यायालयों अर्थात् अपील न्यायालय और मूल न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला है कि दूसरे

व्यक्ति को गलत रूप से किसी निष्पादन कार्यवाही में दी गई संपत्ति की वापसी के लिए आवेदन निष्पादन मामले के निपटान के पश्चात् भी संहिता के आदेश 21, नियम 100 के अधीन पुन:स्थापित किया जा सकता है । संहिता के आदेश 21 का नियम 99 और 100 इस प्रकार है :–

> "99. **डिक्रीदार या क्रेता द्वारा बेक़ब्ज़ा किया जाना** – (1) जहां निर्णीत-ऋणी से भिन्न कोई व्यक्ति स्थावर संपत्ति पर क़ब्ज़े की डिक्री के धारक द्वारा या जहां ऐसी संपत्ति का डिक्री के निष्पादन में विक्रय किया गया है वहां, उसके क्रेता द्वारा ऐसी सम्पत्ति पर से बेकब्जा कर दिया गया हो वहां वह ऐसे बेक़ब्ज़ा किए जाने का परिवाद करते हुए न्यायालय से आवेदन कर सकेगा ।
>
> (2) जहां ऐसा कोई आवेदन किया जाता है वहां न्यायालय उस आवेदन पर न्यायनिर्णयन इसमें अन्तर्विष्ट उपबंधों के अनुसार करने के लिए अग्रसर होगा ।
>
> 100. **बेकब्जा किए जाने का परिवाद करने वाले आवेदन पर पारित किया जाने वाला आदेश** – नियम 101 में निर्दिष्ट प्रश्नों के अवधारण पर, न्यायालय ऐसे अवधारण के अनुसार –
>
> (क) आवेदन को मंजूर करते हुए और यह निदेश देते हुए कि आवेदक को संपत्ति का क़ब्ज़ा दे दिया जाए या आवेदन को खारिज करते हुए, आदेश करेगा ; या
>
> (ख) ऐसा अन्य आदेश पारित करेगा जो वह मामले की परिस्थितियों में ठीक समझे ।"

अत: जहां नियम 99 के अधीन क़ब्ज़े की वापसी के लिए कोई आवेदन फाइल किया जाता है वहां न्यायालय को नियम 100 के अधीन आवेदक को संपत्ति का क़ब्ज़ा वापस करने के लिए शक्ति प्राप्त है । कलकत्ता उच्च न्यायालय ने **राजेन्द्र किशोर पाल चौधरी और एक अन्य** बनाम **असीरउल्ला और एक अन्य**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया कि संहिता के आदेश 21, नियम 100 के अधीन किसी आदेश पर न्यायालय द्वारा निष्पादन कार्यवाहियों की समाप्ति के पश्चात् भी विचार किया जा सकता है जहां बेक़ब्ज़ा किया गया हो । पटना उच्च न्यायालय ने **भुखल तिवारी** बनाम **रामदयाल साह और अन्य**[2] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया

[1] ए. आई. आर. 1938 कलकत्ता 192.

[2] ए. आई. आर. (39) 1952 पटना 152.

कि आवेदक क़ब्ज़े की वापसी द्वारा व्यथित था, यद्यपि उसे यह बात बाद में तब पता चली जब नीलाम क्रेता वस्तुत: वहां गया और उसने उसके क़ब्ज़े में हस्तक्षेप किया । न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि निष्पादन मामले के निपटान के पश्चात् भी संहिता के आदेश 21 के नियम 100 के अधीन आवेदन ग्राह्य है । अत: आवेदक-डिक्रीधारक के विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई दलील स्वीकार किए जाने योग्य नहीं है और इसलिए इसे खारिज किया जाता है ।

7. जहां तक अगले प्रश्न अर्थात् परिसीमा का संबंध है । इस न्यायालय ने इस तथ्य की अवेक्षा की कि यह स्वीकार किया गया है कि बेक़ब्ज़ा तारीख 20 अगस्त, 1986 को किया गया था और वाद के पुन: स्थापन के लिए आवेदन तारीख 23 फरवरी, 1987 को दिया गया है । अत: स्वीकृतत: पुन:स्थापन आवेदन बेक़ब्ज़ा करने के 30 दिन के पश्चात् फाइल किया गया है । इस संबंध में आवेदकों के विद्वान् काउंसेल ने **हेमंत कुमार देव** बनाम **तारामणि देवी टिबरीवाला**[1] वाले मामले का तथा **दामोदरन पिल्लई और अन्य** बनाम **साउथ इंडियन बैंक लिमिटेड**[2] वाले मामले का अवलंब लिया है ।

8. **हेमंत कुमार देव** बनाम **तारामणि देवी टिबरीवाला**[1] वाले मामले में कलकत्ता उच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से यह अधिकथित किया है कि परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के अधीन आवेदन संहिता के आदेश 21 के किसी उपबंध को लागू नहीं होता और यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि बेक़ब्ज़ा करने की तारीख से क़ब्ज़े की अवधि के 30 दिनों के पश्चात् फाइल किया गया कोई आवेदन नियम के अधीन संक्षिप्तत: खारिज किए जाने योग्य है ।

9. उच्चतम न्यायालय ने **दामोदरन पिल्लई और अन्य** बनाम **साउथ इंडियन बैंक लिमिटेड**[2] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया कि निष्पादन आवेदन के पुन:स्थापन के लिए परिसीमा निष्पादन आवेदन की खारिजी के आदेश की तारीख से आरंभ होगी न कि इसकी जानकारी की तारीख से । अत: उपर्युक्त मामले में विनिश्चित सिद्धांत वर्तमान मामले को लागू नहीं होता । तथापि, **हेमंत कुमार देव** बनाम **तारामणि देवी टिबरीवाला**[1] वाले मामले में विनिश्चित सिद्धांत वर्तमान मामले को लागू होता है । अत: यह

---

[1] ए. आई. आर. 1973 कलकत्ता 144.

[2] ए. आई. आर. 2005 एस. सी. 3460.

विचारणीय है कि क्या संहिता के आदेश 21, नियम 99 के अधीन पुन:स्थापन आवेदन परिसीमा द्वारा वर्जित है या नहीं ।

10. विरोधी पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल ने सुनवाई के दौरान परिसीमा अधिनियम की धारा 17 के उपबंध का अवलंब लिया है जो इस प्रकार है :–

> "17. **कपट या भूल का प्रभाव** – (1) जहां कि किसी ऐसे वाद या आवेदन के मामले में, जिसके लिए इस अधिनियम द्वारा कोई परिसीमा काल विहित है –
>
> (क) वह वाद या आवेदन प्रतिवादी या प्रत्यर्थी या उसके अभिकर्ता के कपट पर आधारित है, अथवा
>
> (ख) उस अधिकार या हक का ज्ञान, जिस पर वाद या आवेदन आधारित है, किसी यथा पूर्वोक्त व्यक्ति के कपट द्वारा छिपाया गया है, अथवा
>
> (ग) वह वाद या आवेदन किसी भूल के परिणाम से मुक्ति के लिए है, अथवा
>
> (घ) वादी या आवेदक के अधिकार को स्थापित करने के लिए आवश्यक कोई दस्तावेज उससे कपटपूर्वक छिपाई गई है,
>
> वहां परिसीमा काल का चलना तब तक के बिना आरंभ न होगा जब वादी या आवेदक को उस कपट या भूल का पता चल न जाए या सम्यक् तत्परता से पता चल सकता था, अथवा छिपाई गई दस्तावेज की दशा में तब तक के बिना आरंभ न होगा, जबकि छिपाई गई दस्तावेज के पेश करने या उसका पेश किया जाना विवश करने के साधन वादी या आवेदक को सर्वप्रथम प्राप्त न हुए हों :
>
> परन्तु इस धारा की कोई भी बात किसी ऐसी सम्पत्ति के प्रत्युद्धरण के या उसके विरुद्ध कोई भार प्रवर्तित कराने के या तत्संबंधी किसी संव्यवहार को अपास्त कराने के वाद का संस्थित किया जाना या आवेदन का किया जाना शक्य नहीं बनाएगी जो –
>
> (i) कपट के मामले में, किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा मूल्यवान प्रतिफलेन क्रय की गई हो जिसका न तो कपट में कोई हाथ था, और न जो क्रय के समय यह जानता या यह विश्वास करने का कारण रखता था कि कोई कपट किया गया है, अथवा

(ii) भूल के मामले में, उस संव्यवहार के पश्चात् जिसमें भूल की गई, ऐसे व्यक्ति द्वारा मूल्यवान प्रतिफलेन क्रय की गई है, जो न यह जानता या विश्वास करने का कारण रखता था कि भूल की गई है, अथवा

(iii) छिपाई गई दस्तावेज के मामले में, ऐसे व्यक्ति द्वारा मूल्यवान प्रतिफलेन क्रय की गई है जिसका न तो छिपाने में कोई हाथ था और न जो क्रय करने के समय यह जानता या विश्वास करने का कारण रखता था कि वह दस्तावेज छिपाई गई है ।

(2) जहां कि किसी निर्णीत-ऋणी ने किसी डिक्री या आदेश का परिसीमा काल के भीतर निष्पादन कपट या बल प्रयोग द्वारा निवारित कर दिया हो, वहां न्यायालय उक्त परिसीमा काल के अवसान के पश्चात् निर्णीत लेनदार द्वारा किए गए आवेदन पर डिक्री या आदेश के निष्पादन के लिए परिसीमा काल को बढ़ा सकेगा :

पंरतु यह तब जबकि ऐसा आवेदन, यथास्थिति, कपट का पता लगाने की या बल प्रयोग के बंद होने की तारीख से एक वर्ष के भीतर किया गया हो ।"

उच्चतम न्यायालय ने **पल्लव शेठ** बनाम **कस्टोडियन और अन्य**[1] वाले मामले में विधि के उपबंध का निर्वचन करते हुए निर्णय के पैरा 47 में इस प्रकार अभिनिर्धारित किया : –

"47. परिसीमा अधिनियम की धारा 17 अन्य बातों के साथ यह उपबंध करती है कि जहां किसी वाद या आवेदन के मामले में जिसके लिए अधिनियम द्वारा परिसीमा की अवधि विहित की गई है, उस बारे में अधिकार या हक की जानकारी है जिस पर वाद या आवेदन आधारित है, प्रतिवादी या उसके अभिकर्ता द्वारा छिपाया गया है । [धारा (17)(1)(ख)] या जहां वादी या आवेदक के अधिकार को साबित करने के लिए कोई दस्तावेज फाइल करना आवश्यक है उससे कपटपूर्वक द्वारा छिपाया गया है, [धारा (18)(1)(घ)] परिसीमा की अवधि तब तक आरंभ नहीं होगी जब तक वादी या आवेदक कपट या गलती प्रकट नहीं कर देता है या युक्तियुक्त सतर्कता से इसे प्रकट नहीं किया जा सका हो ; या छिपाए गए दस्तावेज के मामले में

[1] ए. आई. आर. 2001 एस. सी. 2763.

तब तक जब तक कि वादी या आवेदक प्रथमत: छुपाए गए दस्तावेज को पेश नहीं कर देता है या इसके प्रस्तुतीकरण को बाध्य नहीं किया जाता है । इन उपबंधों में न्याय और साम्य का मूल सिद्धांत सम्मिलित है अर्थात् किसी पक्षकार को विधिक कार्यवाही का अनुसरण करने के लिए दंडित नहीं किया जाना चाहिए जहां तथ्य या सामग्री उसे ऐसा करने के लिए बाध्य न करता हो या उसने जानबूझकर न छिपाया हो और वहां भी जहां किसी पक्षकार ने जिसने कपटपूर्वक कार्य किया है, ऐसे कपट के आधार पर अपने हक में परिसीमा जारी रखने का फायदा या लाभ न उठाया हो ।"

पल्लव शेठ बनाम **कस्टोडियन और अन्य**[1] वाले मामले में विनिश्चित सिद्धांत वर्तमान मामले को लागू होता है । यह स्वीकार किया गया है कि न तो वादी और न ही प्रतिवादी वस्तुत: न्यायालय की जानकारी में यह बात लाया कि विरोधी पक्षकारों ने अपने पूर्व उत्तराधिकारियों के हक में से प्रश्नगत भूमि का क्रय कर लिया है । न्यायालय के लिए यह बात छिपाना कपट के बराबर है । उसने अन्य किसी स्रोत से अपने बेक़ब्ज़ा होने की जानकारी के पश्चात् उसने अपने हक में संपत्ति के क़ब्ज़े के पुन:स्थापन के लिए आवेदन फाइल किया है ।

11. मामले को इस दृष्टि से देखते हुए इस न्यायालय का यह मत है कि परिसीमा की अवधि उसकी जानकारी की तारीख से आरंभ होगी न कि प्रश्नगत संपत्ति से बेक़ब्ज़ा करने की तारीख से । तद्नुसार इस न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि विद्वान् अधीनस्थ न्यायाधीश, भुवनेश्वर ने कोई त्रुटि नहीं की है और न ही अपर जिला न्यायाधीश ने विद्वान् अधीनस्थ न्यायाधीश द्वारा अभिलिखित निष्कर्षों की पुष्टि करके कोई गलती की है । मूल न्यायालय द्वारा पारित आदेश तथा अपील न्यायालय द्वारा पारित पुष्टिकरण आदेश में हस्तक्षेप करने के लिए कोई गुंजाइश नहीं है ।

12. तद्नुसार यह सिविल पुनरीक्षण आवेदन खारिज किया जाता है । तथापि, मामले के तथ्यों को दृष्टिगत करते हुए खर्चों के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

सिविल पुनरीक्षण आवेदन खारिज किया गया ।

मह.

---

[1] ए. आई. आर. 2001 एस. सी. 2763.

सुभाष उर्फ प्रकाश

बनाम

प्रियंका सुभाष देवांगन

तारीख 2 जुलाई, 2013

न्यायमूर्ति सुनील कुमार सिन्हा और न्यायमूर्ति आर. एस. चन्द्राकर

कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम, 1984 (1984 का 66) – धारा 10(1) – कुटुम्ब न्यायालय – प्रक्रिया – सिविल प्रक्रिया संहिता का प्रवर्तन – कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम को अधिनियमित करने का उद्देश्य विवाह और कुटुम्ब से संबंधित विवादों को शीघ्रतापूर्वक सुलझाना है इसलिए सिविल प्रक्रिया संहिता के कठोर नियमों के पालन और साक्ष्य को कम महत्व दिया गया है ।

कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम, 1984 – धारा 17 – कुटुम्ब न्यायालय – प्रक्रिया – विवाद्यक विरचित करने की अपेक्षा – अधिनियम के उपबंधों को दृष्टिगत करते हुए कुटुम्ब न्यायालय द्वारा मामले में विवाद्यक विरचित करना आवश्यक नहीं है तथापि, मामले को सरलता से निपटाने के लिए विवाद्यक विरचित किए जा सकते हैं ।

वादी ने सिविल वाद संख्या 1-ए/2008 में कुटुंब न्यायालय रायगढ़ जिला रायगढ़ द्वारा तारीख 31 मार्च, 2010 को पारित निर्णय और डिक्री से व्यथित होकर यह अपील फाइल की है । कुटुंब न्यायालय द्वारा आक्षेपित निर्णय द्वारा हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 के अधीन फाइल किया गया वाद खारिज कर दिया गया था । अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम, 1984 विरचित करने का उद्देश्य विवाह, कुटुम्बीय क्रियाकलापों से संबंधित कुटुम्बीय विवादों तथा इससे संबंधित मामलों को शीघ्रता से सुलझाना था । इस पृष्ठभूमि में विनिश्चय करने वाले तन्त्र ने समाज द्वारा वांछनीय परिणाम प्राप्त करने पर समझौते पर अधिक बल दिया और प्रक्रिया के कठोर नियमों के पालन तथा साक्ष्य को कम महत्व दिया । धारा 10(1) की वाक्यरचना का जो "इस अधिनियम के अन्य उपबंधों के अध्यधीन" जैसे शब्दों से आरंभ होती है, अत्यधिक महत्व है । यह बात इस विचार को स्पष्ट करती है कि सिविल

प्रक्रिया संहिता इस अधिनियम के अधीन कार्यवाहियों को कठोरता पूर्वक और पूर्ण रूप से लागू नहीं होगी और यदि अधिनियम में अन्य कोई उपबंध दिया गया है तो इसका प्रवर्तन ऐसे उपबंध के अध्यधीन होगा । अतः कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम के अध्याय 4 में विहित प्रक्रिया कुटुंब न्यायालय के समक्ष कार्यवाहियों को सफल बनाने की दृष्टि से दी गई है जिससे कि कुटुंब न्यायालय अधिनियम का उद्देश्य पूरा हो सके और जिससे कि सिविल प्रक्रिया संहिता के कठोर उपबंधों का अनुपालन किए बिना मामलों का शीघ्रता से निपटान हो सके जिसे निस्संदेह साधारणतया लागू किया गया है किन्तु अधिनियम, 1984 के अन्य उपबंधों के अध्यधीन लागू किया गया है । (पैरा 11, 12 और 14)

कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम, 1984 की धारा 17 के उपबंध और अधिनियम के अन्य उपबंधों को दृष्टिगत करते हुए कुटुंब न्यायालय के लिए विवाद्यक विरचित करना आज्ञापक नहीं है ; तथापि, इसके निर्णय में मामले का संक्षिप्त कथन, अवधार्य प्रश्न, इस पर विनिश्चय और ऐसे विनिश्चय के लिए कारण अन्तर्विष्ट होने चाहिए । (पैरा 15)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2010 की प्रथम प्रकीर्ण सिविल अपील संख्या 56.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री टी. आर. दाहिरे

प्रत्यर्थियों की ओर से –

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति सुनील कुमार सिन्हा ने दिया ।

न्या. सिन्हा – वादी ने सिविल वाद संख्या 1-ए/2008 में कुटुंब न्यायालय रायगढ़ जिला रायगढ़ द्वारा तारीख 31 मार्च, 2010 को पारित निर्णय और डिक्री से व्यथित होकर यह अपील फाइल की है । कुटुंब न्यायालय द्वारा आक्षेपित निर्णय द्वारा हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 के अधीन फाइल किया गया वाद खारिज कर दिया गया था ।

2. अपीलार्थी/वादी (पति) ने हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13 के अधीन विवाह-विच्छेद की डिक्री के लिए वाद फाइल किया था । तथ्यतः प्रत्यर्थी (पत्नी) के विरुद्ध क्रूरता के अभिकथन किए गए थे और यह भी कथन किया गया था कि उसने (पत्नी ने) उसे काफी समय से

परित्यक्त कर दिया है जिससे कि उपर्युक्त सिविल वाद फाइल करने के लिए हेतुक उत्पन्न हुआ ।

3. प्रत्यर्थी (पत्नी) ने वाद पत्र में किए गए कथनों से इनकार करते हुए अपना लिखित कथन फाइल किया । उसने अपीलार्थी द्वारा अपने साथ दुर्व्यवहार करने और दहेज की मांग करके तंग करने का भी अभिवाक् किया । उसने यह भी अभिवाक् किया कि उसने इस संबंध में एक दांडिक परिवाद पत्र भी फाइल किया है ।

4. अभिलेख से यह प्रतीत होता है कि इसके पश्चात् विवाद्यक विरचित नहीं किए गए थे और विद्वान् न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय ने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 18, नियम 4 के अधीन शपथपत्रों द्वारा अपने-अपने साक्ष्य पेश करने के लिए पक्षकारों को कहा ।

5. वादी ने 4 साक्षियों (अर्थात्) सुभाष **उर्फ** प्रकाश (ए. डब्ल्यू.-1) स्वयं वादी, बलराम (ए. डब्ल्यू.-2), बिरधी राम (ए. डब्ल्यू.-3) और सत्यानंद (ए. डब्ल्यू.-4) के शपथपत्र फाइल किए । प्रतिवादी ने एन. ए. डब्ल्यू. के रूप में स्वयं का, परदाशी (एन. ए. डब्ल्यू.-2) और श्रीमती राधाबाई (एन. ए. डब्ल्यू.-3) के शपथपत्र फाइल किए । तारीख 13 अगस्त, 2009 की कार्यवाहियों से यह उपदर्शित होता है कि प्रतिवादी ने यह अभिव्यक्त किया था कि वह वादी के साक्षियों की प्रतिपरीक्षा नहीं करना चाहती तथापि, अभिलेख से यह उपदर्शित नहीं होता है कि वादी को भी प्रतिवादी की साक्षियों की प्रतिपरीक्षा करने का अवसर दिया गया था या वादी ने यह अभिव्यक्त किया था कि वह साक्षियों की प्रतिपरीक्षा नहीं करना चाहता । उन शपथपत्रों या अभिसाक्ष्य पत्र पर भी ऐसा कोई पृष्ठांकन नहीं है जो अभिलेख पर हैं ।

6. इसके पश्चात् कुटुंब न्यायालय के विद्वान् न्यायाधीश ने मामला अंतिम सुनवाई के लिए नियत किया । दोनों पक्षकारों को सुना और वाद खारिज करते हुए आक्षेपित आदेश पारित किया । अतः यह अपील फाइल की गई है ।

7. अपीलार्थी/वादी की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री टी. आर. दाहिरे ने यह दलील दी है कि कुटुंब न्यायालय के विद्वान् न्यायाधीश ने विवाद्यक विरचित न करके गंभीर अनियमितता की है ; निर्णय में भी निर्धारण के लिए इन मुदों को समुचित रूप से उल्लिखित नहीं किया है । इसके अलावा चूंकि अपीलार्थी को प्रत्यर्थी/प्रतिवादी के साक्षियों की प्रतिपरीक्षा

करने का अवसर नहीं दिया गया था, इसलिए आक्षेपित डिक्री और निर्णय को कायम नहीं रखा जा सकता ।

8. हमने अपीलार्थी के काउंसेल को सुनने के पश्चात् कुटुंब न्यायालय के अभिलेख का परिशीलन किया ।

9. प्रथम प्रश्न यह है कि "क्या कुटुंब न्यायालय के लिए विवाद्यक विरचित करना आज्ञापक था ?"

10. कुटुंब न्यायालय अधिनियम, 1984 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "अधिनियम" या 1984 का अधिनियम कहा गया है।) की धारा 10 "प्रक्रिया साधारणतया" के शीर्षक से है । धारा 10 की उपधारा (1) यह उपबंध करती है कि इस अधिनियम और नियमों के उपबंधों के अध्यधीन सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) और तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के उपबंध किसी कुटुंब न्यायालय के समक्ष वादों और दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) के अध्याय 9 के अधीन कार्यवाहियों से भिन्न कार्यवाहियों को लागू होंगे और संहिता के उक्त प्रयोजनों के लिए कुटुंब न्यायालय को सिविल न्यायालय समझा जाएगा और उसे ऐसे न्यायालय की सभी शक्तियां प्राप्त होंगी । इसके अतिरिक्त धारा 2 के खण्ड (ङ) में यह परिभाषित किया गया है कि जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो ऐसे सभी पदों के, जो इस अधिनियम में प्रयुक्त हैं, किंतु इस अधिनियम में परिभाषित नहीं हैं और सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) में परिभाषित हैं, वही अर्थ होंगे जो संहिता में हैं । धारा 11 से 16 साधारणतया अनुसरण की गई प्रक्रिया के बारे में उपबंध करती है और धारा 17 निर्णय के बारे में उपबंध करती है । इस धारा में यह उपबंध है कि किसी कुटुंब न्यायालय में निर्णय में मामले का संक्षिप्त कथन, अवधारित प्रश्न, उस पर उसका विनिश्चय और ऐसे विनिश्चय के कारण अन्तर्विष्ट होंगे ।

11. कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम, 1984 विरचित करने का उद्देश्य विवाह, कुटुम्बीय क्रियाकलापों से संबंधित कुटुम्बीय विवादों तथा इससे संबंधित मामलों को शीघ्रता से सुलझाना था । इस पृष्ठभूमि में विनिश्चय करने वाले तन्त्र ने समझौते पर समाज द्वारा वांछनीय परिणाम प्राप्त करने पर अधिक बल दिया और प्रक्रिया के कठोर नियमों के पालन तथा साक्ष्य को कम महत्व दिया । इन्हीं कारणों से सिविल प्रक्रिया संहिता को इस प्रकार लागू किया गया है, जैसे कि अधिनियम के अन्य उपबंधों के

अध्यधीन अधिनियम के अधीन वादों या कार्यवाहियों को (दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के अध्याय 9 के अधीन कार्यवाहियों के सिवाय) साधारणतया प्रक्रिया के रूप में लागू होते हैं ।

12. धारा 10(1) की वाक्यरचना का जो "इस अधिनियम के अन्य उपबंधों के अध्यधीन" जैसे शब्दों से आरंभ होती है, अत्यधिक महत्व है । यह बात इस विचार को स्पष्ट करती है कि सिविल प्रक्रिया संहिता इस अधिनियम के अधीन कार्यवाहियों को कठोरता पूर्वक और पूर्ण रूप से लागू नहीं होगी और यदि अधिनियम में अन्य कोई उपबंध दिया गया है तो इसका प्रवर्तन ऐसे उपबंध के अध्यधीन होगा ।

13. सिविल प्रक्रिया संहिता का आदेश 20 "निर्णय और डिक्री" के संबंध में है । आदेश 20 का नियम 4 "लघुवाद न्यायालय के निर्णय" के बारे में उपबंध करता है । नियम 4 का उप-नियम(1) यह उपबंध करता है कि लघुवाद न्यायालयों के निर्णय में अवधार्य प्रश्नों और उनके विनिश्चय से अधिक और कुछ अन्तर्विष्ट होना आवश्यक नहीं है और उप-नियम(2) "अन्य न्यायालयों के निर्णयों" के बारे में है जो कि यह उपबंध करता है कि अन्य न्यायालयों के निर्णयों में मामले का संक्षिप्त कथन, अवधार्य प्रश्न, उनका विनिश्चय और ऐसे विनिश्चय के कारण अर्न्तविष्ट होंगे । आदेश 20 के नियम 4 का उप-नियम (2) और अधिनियम, 1984 की धारा 17 दोनों ही एक-दूसरे के समान हैं । अतः सिविल प्रक्रिया संहिता जो किसी सिविल वाद के विनिश्चय के लिए पूर्ण प्रक्रिया तथा किसी वाद में उठाए गए विवाद्यकों पर निर्णय और डिक्री पारित करने के बारे में उपबंध करती है, यह भी उपबंध करती है कि अन्य न्यायालय ऐसे निर्णय पारित कर सकेंगे जिनमें मामले का संक्षिप्त कथन, अवधार्य प्रश्न, उन पर विनिश्चय और ऐसे विनिश्चय के लिए कारण अन्तर्विष्ट होंगे और यही उपबंध कुटुंब न्यायालय अधिनियम, 1984 में भी अंतः स्थापित किए गए हैं और ये दोनों ही उपबंध न्यायालय द्वारा विरचित किए जाने वाले "विवाद्यकों" और "विवाद्यकों" पर विनिश्चयों के बारे में उपबंध नहीं करती ।

14. अतः कुटुंब न्यायालय अधिनियम के अध्याय 4 में विहित प्रक्रिया कुटुंब न्यायालय के समक्ष कार्यवाहियों को सफल बनाने की दृष्टि से दी गई है जिससे कि कुटुंब न्यायालय अधिनियम के उद्देश्य पूरे हो सकें और जिससे कि सिविल प्रक्रिया संहिता के कठोर उपबंधों का अनुपालन किए बिना मामलों का शीघ्रता से निपटान हो सके जिसे निस्संदेह साधारणतया

लागू किया गया है किन्तु अधिनियम, 1984 के अन्य उपबंधों के अध्यधीन लागू किया गया है ।

15. अतः धारा 17 के उपबंध और अधिनियम के अन्य उपबंधों को दृष्टिगत करते हुए कुटुंब न्यायालय के लिए विवाद्यक विरचित करना आज्ञापक नहीं है ; तथापि, इसके निर्णय में मामले का संक्षिप्त कथन, अवधार्य प्रश्न, इस पर विनिश्चय और ऐसे विनिश्चय के लिए कारण अन्तर्विष्ट होने चाहिए ।

16. वर्तमान मामले में, कुटुंब न्यायालय के विद्वान् न्यायाधीश ने निर्णय के पैरा 5(क) द्वारा विचार के लिए केवल दो प्रश्न अवधारित किए :–

1. क्या अनावेदक श्रीमती प्रियंका ने अभिकथित रूप से आवेदक सुभाष **ऊर्फ** प्रकाश को आवेदन फाइल करने की तारीख से पिछले 2 वर्षों से अभित्यक्त कर दिया है ?

2. क्या आवेदक सुभाष **उर्फ** प्रकाश अभित्यजन के आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री प्राप्त करने का हकदार है ?

3. अनुतोष और व्यय ।

17. हमें अपीलार्थी/वादी के अभिवचनों से यह प्रतीत होता है कि उसके द्वारा मानसिक क्रूरता का आधार लिया गया है जिससे प्रत्यर्थी ने इनकार किया है और प्रत्यर्थी ने भी अपीलार्थी द्वारा क्रूरता बरते जाने का आधार लिया है । यह आधार अभित्यजन के आधार के अतिरिक्त है । जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है कि कुटुंब न्यायालय ने केवल अभित्यजन के आधार पर विचार करते हुए अवधारण किया है और कुटुंब न्यायालय ने क्रूरता के आधार पर विचार नहीं किया है ।

18. इसके अतिरिक्त हम यह भी उल्लेख कर सकते हैं कि अपीलार्थी को प्रत्यर्थी (एन. ए. डब्ल्यू. -1) के जिसने अपने अभिवचनों के समर्थन में तीन शपथपत्र फाइल किए थे, उपर्युक्त तीनों साक्षियों की प्रतिपरीक्षा करने का अवसर नहीं दिया गया है । मामले के उपर्युक्त तथ्यों को दृष्टिगत करते हुए हमारा यह मत है कि पक्षकारों के बीच विवाद को निपटाने के लिए कुटुंब न्यायालय द्वारा समुचित रूप से जांच नहीं की गई है और आक्षेपित निर्णय पक्षकारों द्वारा उठाए गए सभी आधारों पर विचार किए बिना पारित किया गया है ।

19. उपर्युक्त कारणों से अपील मंजूर की जाती है । कुटुंब न्यायालय द्वारा तारीख 31 मार्च, 2010 को पारित आक्षेपित निर्णय और डिक्री अपास्त की जाती है । पक्षकारों के अभिवचनों का परिशीलन करने पर हमें यह प्रतीत होता है कि कुटुंब न्यायालय के लिए यह उचित होगा कि वह इस मामले में विवाद्यक विरचित करे । अतः हम यह निदेश देते हैं कि कुटुंब न्यायालय मामले में विवाद्यक विरचित करे और पक्षकारों को साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए नए सिरे से अवसर दे और विधि के अनुसार मामले का निपटान करे ।

20. पक्षकार अपना-अपना खर्चा स्वयं वहन करेंगे ।

अपील मंजूर की गई ।

महः

(2014) 1 सि. नि. प. 210 **पटना**

बिहार राज्य और अन्य

बनाम

मैसर्स अमलोरी कंस्ट्रक्शन प्राइवेट लिमिटेड और एक अन्य

तारीख 16 जुलाई, 2013

न्यायमूर्ति एस. एन. हुसैन और न्यायमूर्ति एहसान उद्दीन अमानुल्लाह

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 14 – राज्य द्वारा निविदा आमंत्रण – शर्तें – निविदाकार द्वारा अनुभव की अपेक्षित शर्त पूरी न की जानी – निविदा की खारिजी – समानता के अधिकार के आधार पर चुनौती – खारिजी न्यायोचित होने के कारण मात्र इस आधार पर विनिश्चय में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता ।

ये दोनों लेटर्स पेटेन्ट अपीलें एक साथ सुनी जा रही हैं और इस एक ही आदेश द्वारा विनिश्चित की जा रही हैं क्योंकि ये दोनों अपीलें तारीख 19 सितंबर, 2006 के उस आदेश के विरुद्ध फाइल की गई हैं जिसके द्वारा इस न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश ने कतिपय निदेशों के साथ याचिका का निपटान किया है । प्रथम लेटर्स पेटेन्ट अपील बिहार राज्य और उसके प्राधिकारियों द्वारा फाइल की गई है जबकि दूसरी लेटर्स पेटेन्ट

अपील कार्यपालक इंजीनियर लोक स्वास्थ्य इंजीनियरिंग विभाग, छपरा (जिला सारण) द्वारा फाइल की गई है । लेटर्स पेटेन्ट अपीलें मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई दलीलों और अभिलेख पर की सामग्री पर विचार करने के पश्चात् यह पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है कि रिट याचिका का प्रत्यर्थी सं. 2 लोक स्वास्थ्य इंजीनियरिंग सर्किल, पी. ओ. छपरा, जिला सारण में अधीक्षण इंजीनियर था, जिसे रिट याचिका में नाम से अर्थात् श्री ए. के. श्रीवास्तव के नाम से प्रत्यर्थी सं. 5 के रूप में पक्षकार बनाया गया था । इसके अतिरिक्त रिट याचिका में संलग्न प्रति-शपथपत्र उसी व्यक्ति द्वारा अर्थात् अरुण कुमार श्रीवास्तव अधीक्षण इंजीनियर लोक स्वास्थ्य इंजीनियरिंग विभाग, सर्किल आफिसर, पी. ओ. छपरा, जिला सारण द्वारा शपथ पर दिया गया था । अत: अपीलार्थियों का यह आक्षेप सही नहीं है कि रिट याचिका में प्रत्यर्थी सं. 5 को कोई सूचना नहीं दी गई थी । इसके अतिरिक्त रिट याचिका से यह पूर्णतया स्पष्ट होता है कि सभी अनुतोष प्रत्यर्थी सं. 2 के जिसे नाम से प्रत्यर्थी सं. 5 के रूप में पक्षकार बनाया गया था और रिट याचिका के विभिन्न पैरों में उसके विरुद्ध विनिर्दिष्ट अभिकथन किए गए थे, विरुद्ध मांगे गए हैं । अत: इस संबंध में अपीलार्थियों का दावा सही और न्यायोचित प्रतीत नहीं होता । अभिलेख से यह भी स्पष्ट होता है कि आरंभत: कार्यपालक इंजीनियर द्वारा तैयार किए गए तुलनात्मक पत्रक में रिट याची का नाम सम्मिलित किया गया था और उसे अधीक्षण इंजीनियर (प्रत्यर्थी सं. 2 और 5) को भेजा गया था किंतु अधीक्षण इंजीनियर ने कार्यपालक इंजीनियर से नए तुलनात्मक पत्रक की मांग करते हुए वापस भेज दिया था और जब कार्यपालक इंजीनियर ने अनुभव प्रमाणपत्र पेश न किए जाने के आधार पर रिट याची के नाम को हटाते हुए तारीख 5 जुलाई, 2006 को तकनीकी बोलियों का नया तुलनात्मक पत्रक तैयार किया तो उक्त नए तुलनात्मक पत्रक का अधीक्षण इंजीनियर (रिट याचिका के प्रत्यर्थी सं. 2 और 5) द्वारा अनुमोदन किया गया था । निविदा सं. 2/2006-07 के खंड 18 जिसके द्वारा निविदाएं आमंत्रित की गई थीं, में स्पष्ट रूप से यह उपबंधित है कि केवल उन निविदाकारों को तकनीकी बोली के लिए मान्यता दी जाएगी जिन्होंने विभाग में वर्तमान एन. आई. टी. की निविदा राशि से 50 प्रतिशत से अधिक के लिए कार्य किया है और यदि इसके सबूत में कोई दस्तावेज पेश नहीं किया जाता है तो वित्तीय बोली के संबंध

में उसका दूसरा लिफाफा नहीं खोला जाएगा । इन परिस्थितियों में उक्त खंड के अनुसार संबंधित प्राधिकारी रिट याची की वित्तीय बोली का दूसरा लिफाफा न खोलने में पूर्णतया न्यायोचित थे क्योंकि तकनीकी बोली के प्रथम लिफाफे में कोई अनुभव प्रमाणपत्र नहीं दिया गया था । चूंकि रिट याची द्वारा अपेक्षित और विहित अनुभव अर्हता उपदर्शित नहीं की गई थी इसलिए पक्षकार के जिसने अपेक्षित मानदंड पूरे नहीं किए, अनुरोध पर कोई न्यायिक अनुतोष दिया जाना सही नहीं है । इस आधार पर प्राधिकारियों ने रिट याची का दावा खारिज कर दिया और हम यह समझने में असमर्थ हैं कि किस प्रकार रिट याची की वित्तीय बोली खोली जा सकती थी और अपेक्षित मानदंड को पूरा किए बिना उसे किस प्रकार निविदा अधिनिर्णीत की जा सकती है । अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल ने यह दावा करते हुए गंभीर आक्षेप उठाया था कि प्राधिकारियों के विवेक में राज्य का हित सर्वोपरि होना चाहिए । यह सही है किंतु इसके साथ राज्य का हित केवल वित्तीय निबंधनों तक ही सीमित नहीं है । अपितु राज्य का हित विशेषतया किसी कल्याणकारी राज्य का हित अनुभवी व्यक्तियों द्वारा अपनी परियोजनाओं को उचित रूप से पूरा किया जाना भी है । अत: ''राज्य का हित'' पद को व्यापक रूप से समझा जाना चाहिए न कि संकुचित दृष्टि से तुच्छ और अस्थायी लाभों को प्राप्त करने के लिए । इसके अतिरिक्त बीओक्यू (उपाबंध ए/1) में दिए गए निविदा के वर्गीकरण से स्पष्ट रूप से यह उपदर्शित होता है कि तकनीकी बोली के लिफाफे के साथ अद्यतन विक्रय कर अनापत्ति प्रमाणपत्र जो अब वैट प्रमाणपत्र के बराबर है, की भी प्रमाणित प्रति सम्मिलित होनी चाहिए किंतु रिट याची द्वारा ऐसी कोई प्रति नहीं दी गई थी । इस आधार पर भी रिट याची की तकनीकी बोली त्रुटिपूर्ण थी और इस कारण से रिट याची की वित्तीय बोली खोले जाने योग्य नहीं थी और इसलिए प्राधिकारी रिट याची की वित्तीय बोली के संबंध में दूसरे लिफाफे को न खोलने में न्यायोचित थे । अविवादित तथ्यों से यह भी स्पष्ट होता है कि जुलाई मास में सक्षम व्यक्तियों की वित्तीय बोलियां खोली गई थीं और मैसर्स जे. पी. इन्टरप्राइजेज की बोली सबसे निम्नतर पाई गई थी और इसलिए उसका चयन किया गया था और मैसर्स जे. पी. इन्टरप्राइजेज को आशय पत्र भेजा गया था जिसके साथ 12 मास के भीतर कार्य पूरा करने के लिए तारीख 9 अगस्त, 2006 को एक करार भी निष्पादित किया गया था । उपर्युक्त तथ्य के बावजूद मैसर्स जे. पी. इन्टरप्राइजेज को रिट याची द्वारा किसी भी प्रक्रम

पर रिट याचिका में पक्षकार नहीं बनाया गया था, यद्यपि रिट याचिका का तारीख 19 सितंबर, 2006 को निपटान किया गया था । (पैरा 11, 12, 13, 14, 15, 16 और 17)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[1999] ए. आई. आर. 1999 एस. सी. 393 = (1999) 1 एस. सी. सी. 492 : **रौनक इंटरनेशनल लिमिटेड** बनाम **आई. वी. आर. कंस्ट्रक्शन लिमिटेड** ; 9

[1995] ए. आई. आर. 1995 पटना 183 : **मैसर्स कान्टीनेंटल पम्प और मोटर्स लिमिटेड, गाजियाबाद** बनाम **बिहार राज्य** । 9

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2007 की लेटर्स पेटेन्ट अपील सं. 189.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन फाइल रिट याचिका से उद्‌भूत लेटर्स पेटेन्ट अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से सर्वश्री मैसर्स पी. के. भगत, जी. पी. विनय कुमार, मैसर्स अमित श्रीवास्तव और गिरीश पांडे

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री एन. के. सिंह

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति एस. एन. हुसैन और एहसान उद्‌दीन अमानुल्लाह ने दिया ।

निर्णय

ये दोनों लेटर्स पेटेन्ट अपीलें एक साथ सुनी जा रही हैं और इस एक ही आदेश द्वारा विनिश्चित की जा रही हैं क्योंकि ये दोनों अपीलें तारीख 19 सितंबर, 2006 के उस आदेश के विरुद्ध फाइल की गई हैं जिसके द्वारा इस न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश ने कतिपय निदेशों के साथ याचिका का निपटान किया है । प्रथम लेटर्स पेटेन्ट अपील बिहार राज्य और उसके प्राधिकारियों द्वारा फाइल की गई है जबकि दूसरी लेटर्स पेटेन्ट अपील कार्यपालक इंजीनियर लोक स्वास्थ्य इंजीनियरिंग विभाग, छपरा (जिला सारण) द्वारा फाइल की गई है ।

2. उक्त रिट याचिका जिसकी संख्या 2006 की सी. डब्ल्यू. जे. सी. सं. 9414 है, मैसर्स अमलोरी कंस्ट्रक्शन प्राइवेट लिमिटेड द्वारा फाइल की गई थी जो इन दोनों अपीलों में प्रत्यर्थी सं. 1 है । उक्त रिट याचिका निम्नलिखित अनुतोषों के लिए फाइल की गई थी :–

(i) प्रत्यर्थी सं. 2, को प्रत्यर्थी सं. 2 द्वारा जारी निविदा सूचना 2/2006-07 के जवाब में याची द्वारा तारीख 20 जून, 2006 को प्रस्तुत निविदा को जिसके बारे में यह कहा गया है कि उसे राज्य राजस्व के खर्चे पर किसी विशिष्ट व्यक्ति के हक में बाह्य बातों के आधार पर बोली से मनमाने रूप से और अवैध रूप से विवर्जित कर दिया गया है, खोलने के लिए परमादेश रिट या अन्य कोई उचित रिट/आदेश/निदेश जारी किया जाए ;

(ii) प्रत्यर्थियों को यह निदेश या आदेश जारी किया जाए कि यदि निविदा खोलने पर याची की दर निम्नतर पाई जाती है तो उसे अन्य शर्तें पूरी करने के अध्यधीन प्रश्नगत कार्य आबंटित किया जाए ।

(iii) अन्य कोई समुचित अनुतोष प्रदान किया जाए जिसके लिए याची मामले के तथ्यों के अधीन हकदार पाया जाए ।

3. उपर्युक्त रिट याचिका में बिहार राज्य और उसके प्राधिकारियों अर्थात् प्रत्यर्थी सं. 1 से 4 की ओर से प्रति-शपथपत्र फाइल किए गए थे और विद्वान् एकल न्यायाधीश ने पक्षकारों के काउंसेलों को सुनने के पश्चात् तारीख 19 सितंबर, 2006 के आक्षेपित आदेश द्वारा निम्नलिखित स्पष्ट निष्कर्ष और विनिर्दिष्ट निर्देश देते हुए रिट याचिका का निपटान किया :–

"उपर्युक्त तथ्यों से यह प्रकट होता है कि वाटर टावर के निर्माण के लिए उस सूचना में अनुभव प्रमाणपत्र फाइल करने की कोई विनिर्दिष्ट शर्त नहीं थी जिसके द्वारा निविदा आमंत्रित की गई थी और उसमें इस प्रकार की कोई पात्रता शर्त नहीं थी । प्राधिकारियों ने भी प्रारंभिक प्रक्रम पर इसे इसी प्रकार समझा किंतु अचानक जब मामला कार्यपालक इंजीनियर के पास पहुंचा तो उसने स्पष्टत: खंड 31 के अनपकारी उपबंध का निर्देश किया और गलत रूप से यह अभिनिर्धारित किया कि याची द्वारा ऐसा कोई प्रमाणपत्र फाइल नहीं किया गया है और यह निदेश दिया कि याची की तकनीकी बोली खारिज की जाए और इस प्रकार उसे उसकी वित्तीय

बोली पर विचार करने से निरर्हित कर दिया । निरर्हित करने का कारण पूर्णतया बाह्य है और निविदा दस्तावेज द्वारा समर्थित नहीं है । इसका परिणाम राज्य को हानि भी है । द्वितीयत: उसने दूसरे निविदाकारों को जो अभिलेख को दृष्टिगत करते हुए पात्र नहीं थे, उनकी निविदाएं खारिज करने के बजाय निविदा प्रक्रिया जारी रखने के लिए अनुज्ञात किया । यह जानबूझकर सुसंगत तथ्य की उपेक्षा करने का मामला था । प्रति-शपथपत्र फाइल करने के प्रक्रम पर भी इन दोनों विनिश्चयों को न्यायोचित ठहराया गया है । इस बात से इस न्यायालय को केवल यह विश्वास होता है कि वह रीति जिसमें प्रत्यर्थी कार्यपालक इंजीनियर ने कार्यवाही की है, सद्भाविक कार्यवाही नहीं है । यह कार्यवाही स्पष्टतया असद्भाविक थी और बाह्य बातों पर आधारित थी । उसने स्पष्ट रूप से याची को असद्भाविक रूप से विवर्जित किया और अन्यों को उन बातों के आधार पर फायदा प्रदत्त किया जिन्हें विधिपूर्ण नहीं माना जा सकता । उपर्युक्त तथ्यों को दृष्टिगत करते हुए मेरे पास यह अभिनिर्धारित करने के सिवाय और कोई विकल्प नहीं है कि वह सम्पूर्ण प्रक्रिया जिसका निविदा के निपटान के लिए अनुसरण किया गया है, तथ्यत: और विधित: दूषित है और प्रकटत: असद्भावना से प्रेरित है । सामान्य परिणाम यह होता कि पहले ही आबंटित निविदाओं को अपास्त किया जाता किंतु इस तथ्य को दृष्टिगत करते हुए कि यह एक लोक हित की परियोजना है जिसे यदि विलंबित किया जाता है तो इससे जनता को नुकसान होगा, यह न्यायालय ऐसी कोई कार्रवाई नहीं कर रहा है । प्रत्यर्थी कार्यपालक इंजीनियर की असद्भाविक कार्यवाही के कारण जनता को नुकसान नहीं होना चाहिए अपितु निश्चित रूप से न्यायालय इस बात के लिए कर्तव्याबद्ध है कि वह ऐसी कार्यवाही के लिए जिम्मेदारी सुनिश्चित करे ।

असद्भावना के विरुद्ध प्रशासनिक शक्तियों के दुरुपयोग के इस प्रकार के स्पष्ट मामलों में जिम्मेदारी केवल यह अभिनिर्धारित करने से समाप्त नहीं हो जाती है कि यह एक अनुचित मामला है जहां प्रत्यर्थी कार्यपालक इंजीनियर के विरुद्ध विभागीय कार्यवाही की जानी चाहिए अपितु सरकार के समुचित अधिकारियों को बिहार विनिर्दिष्ट भ्रष्ट आचरण निवारण अधिनियम, 1983 की ओर भी ध्यान दिलाया जाना चाहिए जिसका वर्तमान मामले में प्रत्यर्थी कार्यपालक इंजीनियर के विरुद्ध अवलंब लिया जाना चाहिए क्योंकि यदि इस प्रकार की अवैध

कार्यवाहियों पर नियंत्रण नहीं किया जाता है तो यह केवल लोक खर्चे पर अनियंत्रित भ्रष्टाचार को बढ़ावा देना होगा । ऊपर उल्लिखित तथ्यों को दृष्टिगत करते हुए मैं यह उल्लेख कर सकता हूं कि यह केवल एक सद्भाविक त्रुटि या सद्भाविक समझ का मामला नहीं है अथवा न ही सद्भाविक गलत विनिश्चय का मामला है । यह प्रत्यर्थी कार्यपालक इंजीनियर की ओर से एक सोचा-समझा मामला है और इसलिए वह अपने दायित्व से नहीं बच सकता । उसे रिट याचिका में उसके पद से और उसकी वैयक्तिक क्षमता में एक पक्षकार बनाया गया है । उसने वैयक्तिक रूप से शपथ पर अपना प्रति-शपथपत्र फाइल करना पसन्द किया है और इसलिए यह नहीं कहा जा सकता है कि उसे इस रिट याचिका के परिणामों की जानकारी नहीं है । मामले को इस दृष्टि से देखते हुए मैं यह निदेश देता हूं कि इस आदेश की एक प्रति दोषी कर्मचारियों और इस संबंध में किसी अन्य दोषी व्यक्ति के विरुद्ध आवश्यक कार्रवाई करने के लिए बिहार सरकार के मुख्य सचिव और लोक स्वास्थ्य तथा इंजीनियरी विभाग, बिहार सरकार, पटना के सचिव को भेजी जाए ।"

4. रिट याचिका के प्रत्यर्थियों द्वारा उपर्युक्त आदेश के विरुद्ध ये दोनों लेटर्स पेटेन्ट अपीलें फाइल की गई हैं ।

5. अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि रिट याचिका में प्रत्यर्थी सं. 2 के विरुद्ध कोई अनुतोष नहीं मांगा गया है और प्रत्यर्थी सं. 5 के विरुद्ध अवैध घूस का कोई अभिकथन नहीं किया गया है और प्रत्यर्थी सं. 5 को उसकी वैयक्तिक क्षमता में रिट याचिका में कोई सूचना जारी नहीं की गई है । अत: विद्वान् एकल न्यायाधीश प्रत्यर्थी सं. 5 के विरुद्ध जिसे उसके नाम से पक्षकार बनाया गया था, उसे अवसर दिए बिना विधिक रूप से उपर्युक्त निष्कर्षों पर नहीं पहुंच सकता ।

6. अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी कि रिट याचिका में मांगे गए अनुतोष रिट याची की निविदा न खोलने और उसे आबंटित न करने तक सीमित हैं । यह भी दलील दी गई है कि निविदा आमंत्रित करने वाली सूचना तारीख 5 जून, 2006 और 6 जून, 2006 के समाचारपत्रों में प्रकाशित की गई थी और परिमाण का बिल जारी किया गया था और उसके पश्चात् ही अभ्यर्थियों द्वारा वित्तीय निविदाएं और तकनीकी निविदाएं पेश की गई थीं । तकनीकी निविदाएं तारीख 20 जून, 2006 को खोली गई थीं और कार्यपालक इंजीनियर द्वारा तारीख 26 जून,

2006 को तुलनात्मक पत्रक तैयार किया गया था तथा अधीक्षण इंजीनियर को अनुमोदन के लिए भेजा गया था जिसके पश्चात् अधीक्षण इंजीनियर ने तारीख 3 जुलाई, 2006 के पत्र द्वारा कार्यपालक इंजीनियर से तकनीकी बोली का नया तुलनात्मक पत्रक भेजने के लिए लिखा । इसके पश्चात् कार्यपालक इंजीनियर ने यह विनिर्दिष्ट करते हुए नया तुलनात्मक पत्रक तैयार किया कि रिट याची की निविदा अनुभव प्रमाणपत्र के बिना प्रस्तुत की गई थी और इसलिए अधीक्षण इंजीनियर ने तारीख 10 जुलाई, 2006 को तकनीकी बोली के उपर्युक्त नए तुलनात्मक पत्रक का अनुमोदन कर दिया और इसके पश्चात् तारीख 18 जुलाई, 2006 को प्राक्कलन का भी अनुमोदन किया गया था ।

7. अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि जुलाई, 2006 के अंत में वित्तीय बोलियां भी खोली गई थीं और मैसर्स जे. पी. इन्टरप्राइजेज की जिसने सभी मानदंड पूरे किए थे, सबसे कम बोली पाई गई थी और तद्नुसार मैसर्स जे. पी. इन्टरप्राइजेज जिसके साथ 12 मास के भीतर कार्य पूरा करने के लिए तारीख 9 अगस्त, 2006 का करार किया गया था, के हक में निविदा अधिनिर्णीत करते हुए तारीख 1 अगस्त, 2006 को आशय पत्र जारी किया गया था । यह भी दलील दी गई है कि उपर्युक्त परिणामों के बावजूद न तो मैसर्स जे. पी. इन्टरप्राइजेज को पक्षकार बनाया गया था और न ही रिट याचिका में आशय पत्र या करार को आक्षेपित किया गया था तथा न ही रिट मामले में एन. आई. टी. के खंड 18 या बी ओ क्यू के वर्गीकरण या तुलनात्मक पत्रक पर आदेश में विचार किया गया था ।

8. अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि याची के तारीख 24 जुलाई, 2006 के पत्र से जो रिट याचिका में उपाबंध 2 है, स्पष्ट रूप से यह उपदर्शित होता है कि रिट याची प्रत्येक कार्यवाही से पूर्णतया अवगत था और उस कारण के बारे में जानता था जिसके कारण उसकी वित्तीय बोली नहीं खोली गई थी । तथापि, उसने संबंधित प्राधिकारियों के समक्ष इस संबंध में कोई कार्रवाई नहीं की । इसके अतिरिक्त रिट याची के इस अभिकथन के समर्थन में कोई सामग्री नहीं है कि रिट याचिका के प्रत्यर्थी सं. 5 ने अवैध घूस ली थी और इसलिए रिट याची का सम्पूर्ण दावा तुच्छ है और इसके अतिरिक्त रिट याचिका का प्रत्यर्थी सं. 5 अभिलेख का अभिरक्षक नहीं था और न ही विवक्षा द्वारा ऐसा कुछ उपदर्शित किया गया है जिसके कारण उसके द्वारा बोली नहीं खोली

गई थी और न ही उसके द्वारा तुलनात्मक पत्रक तैयार किया गया था और न ही उसने प्राक्कलन किया था ।

9. अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि बोली के प्रयोजन के लिए अनुभव प्रमाणपत्र आवश्यक था, तथापि, न तो यह तकनीकी बोली के साथ संलग्न किया गया था और न ही इस मामले में याची ने उसे प्रस्तुत किया और इसलिए याची की वित्तीय बोली को खोलने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता था । अत: यदि याची की निविदा निम्नतर भी हो तो भी यह एन. आई. टी. के खंड 18 के अनुसार विभाग में कोई अनुभव प्रमाणपत्र पेश न किए जाने के कारण खोले जाने के लिए उपयुक्त नहीं थी । इस संबंध में अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल ने दो विनिश्चयों का अवलंब लिया है । उनमें एक विनिश्चय उच्चतम न्यायालय का है और दूसरा उच्च न्यायालय का है अर्थात् **रौनक इंटरनेशनल लिमिटेड** बनाम **आई. वी. आर. कंस्ट्रक्शन लिमिटेड**[1] और **मैसर्स कान्टीनेंटल पम्प और मोटर्स लिमिटेड, गाजियाबाद** बनाम **बिहार राज्य**[2] वाले मामले ।

10. इसके प्रतिकूल रिट याची के जो दोनों अपीलों में प्रत्यर्थियों में से एक है, विद्वान् काउंसेल ने अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल की दलीलों का विरोध करते हुए विद्वान् एकल न्यायाधीश के इन निष्कर्षों का अवलंब लिया है कि चूंकि वे विधिक हैं और इसलिए इनमें हस्तक्षेप करने की कोई आवश्यकता नहीं है । उन्होंने उसके प्रति-शपथपत्र के विभिन्न पैरों का भी अवलंब लिया है ।

11. पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई दलीलों और अभिलेख पर की सामग्री पर विचार करने के पश्चात् यह पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है कि रिट याचिका का प्रत्यर्थी सं. 2 लोक स्वास्थ्य इंजीनियरिंग सर्किल, पी. ओ. छपरा, जिला सारण में अधीक्षण इंजीनियर था, जिसे रिट याचिका में नाम से अर्थात् श्री ए. के. श्रीवास्तव के नाम से प्रत्यर्थी सं. 5 के रूप में पक्षकार बनाया गया था । इसके अतिरिक्त रिट याचिका में संलग्न प्रति-शपथपत्र उसी व्यक्ति द्वारा अर्थात् अरुण कुमार श्रीवास्तव अधीक्षण इंजीनियर लोक स्वास्थ्य इंजीनियरिंग विभाग, सर्किल आफिसर, पी. ओ. छपरा, जिला सारण द्वारा शपथ पर दिया गया था । अत: अपीलार्थियों का यह आक्षेप सही नहीं है कि रिट याचिका में प्रत्यर्थी सं. 5 को कोई सूचना

---

[1] ए. आई. आर. 1999 एस. सी. 393 = (1999) 1 एस. सी. सी. 492.

[2] ए. आई. आर. 1995 पटना 183.

नहीं दी गई थी । इसके अतिरिक्त रिट याचिका से यह पूर्णतया स्पष्ट होता है कि सभी अनुतोष प्रत्यर्थी सं. 2 के जिसके नाम से प्रत्यर्थी सं. 5 के रूप में पक्षकार बनाया गया था और रिट याचिका के विभिन्न पैरों में उसके विरुद्ध विनिर्दिष्ट अभिकथन किए गए थे, विरुद्ध मांगे गए हैं । अत: इस संबंध में अपीलार्थियों का दावा सही और न्यायोचित प्रतीत नहीं होता ।

12. अभिलेख से यह भी स्पष्ट होता है कि आरंभत: कार्यपालक इंजीनियर द्वारा तैयार किए गए तुलनात्मक पत्रक में रिट याची का नाम सम्मिलित किया गया था और उसे अधीक्षण इंजीनियर (प्रत्यर्थी सं. 2 और 5) को भेजा गया था किंतु अधीक्षण इंजीनियर ने कार्यपालक इंजीनियर से नए तुलनात्मक पत्रक की मांग करते हुए वापस भेज दिया था और जब कार्यपालक इंजीनियर ने अनुभव प्रमाणपत्र पेश न किए जाने के आधार पर रिट याची के नाम को हटाते हुए तारीख 5 जुलाई, 2006 को तकनीकी बोलियों का नया तुलनात्मक पत्रक तैयार किया तो उक्त नए तुलनात्मक पत्रक का अधीक्षण इंजीनियर (रिट याचिका के प्रत्यर्थी सं. 2 और 5) द्वारा अनुमोदन किया गया था ।

13. निविदा सं. 2/2006-07 के खंड 18 जिसके द्वारा निविदाएं आमंत्रित की गई थीं, में स्पष्ट रूप से यह उपबंधित है कि केवल उन निविदाकारों को तकनीकी बोली के लिए मान्यता दी जाएगी जिन्होंने विभाग में वर्तमान एन. आई. टी. की निविदा राशि से 50 प्रतिशत से अधिक के लिए कार्य किया है और यदि इसके सबूत में कोई दस्तावेज पेश नहीं किया जाता है तो वित्तीय बोली के संबंध में उसका दूसरा लिफाफा नहीं खोला जाएगा । इन परिस्थितियों में उक्त खंड के अनुसार संबंधित प्राधिकारी रिट याची की वित्तीय बोली का दूसरा लिफाफा न खोलने में पूर्णतया न्यायोचित थे क्योंकि तकनीकी बोली के प्रथम लिफाफे में कोई अनुभव प्रमाणपत्र नहीं दिया गया था ।

14. चूंकि रिट याची द्वारा अपेक्षित और विहित अनुभव अर्हता उपदर्शित नहीं की गई थी इसलिए पक्षकार के जिसने अपेक्षित मानदंड पूरे नहीं किए, अनुरोध पर कोई न्यायिक अनुतोष दिया जाना सही नहीं है । इस आधार पर प्राधिकारियों ने रिट याची का दावा खारिज कर दिया और हम यह समझने में असमर्थ हैं कि किस प्रकार रिट याची की वित्तीय बोली खोली जा सकती थी और अपेक्षित मानदंड को पूरा किए बिना उसे किस प्रकार निविदा अधिनिर्णीत की जा सकती है ।

15. अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल ने यह दावा करते हुए गंभीर

आक्षेप उठाया था कि प्राधिकारियों के विवेक में राज्य का हित सर्वोपरि होना चाहिए । यह सही है किंतु इसके साथ राज्य का हित केवल वित्तीय निबंधनों तक ही सीमित नहीं है । अपितु राज्य का हित विशेषतया किसी कल्याणकारी राज्य का हित अनुभवी व्यक्तियों द्वारा अपनी परियोजनाओं को उचित रूप से पूरा किया जाना भी है । अत: ''राज्य का हित'' पद को व्यापक रूप से समझा जाना चाहिए न कि संकुचित दृष्टि से तुच्छ और अस्थायी लाभों को प्राप्त करने के लिए ।

16. इसके अतिरिक्त बी ओ क्यू (उपाबंध ए/1) में दिए गए निविदा के वर्गीकरण से स्पष्ट रूप से यह उपदर्शित होता है कि तकनीकी बोली के लिफाफे के साथ अद्यतन विक्रय-कर अनापत्ति प्रमाणपत्र जो अब वैट प्रमाणपत्र के बराबर है, की भी प्रमाणित प्रति सम्मिलित होनी चाहिए किंतु रिट याची द्वारा ऐसी कोई प्रति नहीं दी गई थी । इस आधार पर भी रिट याची की तकनीकी बोली त्रुटिपूर्ण थी और इस कारण से रिट याची की वित्तीय बोली खोले जाने योग्य नहीं थी और इसलिए प्राधिकारी रिट याची की वित्तीय बोली के संबंध में दूसरे लिफाफे को न खोलने में न्यायोचित थे ।

17. अविवादित तथ्यों से यह भी स्पष्ट होता है कि जुलाई मास में सक्षम व्यक्तियों की वित्तीय बोलियां खोली गई थीं और मैसर्स जे. पी. इन्टरप्राइजेज की बोली सबसे निम्नतर पाई गई थी और इसलिए उसका चयन किया गया था और मैसर्स जे. पी. इन्टरप्राइजेज को आशय पत्र भेजा गया था जिसके साथ 12 मास के भीतर कार्य पूरा करने के लिए तारीख 9 अगस्त, 2006 को एक करार भी निष्पादित किया गया था । उपर्युक्त तथ्य के बावजूद मैसर्स जे. पी. इन्टरप्राइजेज को रिट याची द्वारा किसी भी प्रक्रम पर रिट याचिका में पक्षकार नहीं बनाया गया था, यद्यपि रिट याचिका का तारीख 19 सितंबर, 2006 को निपटान किया गया था ।

18. उपर्युक्त तथ्यों और परिस्थितियों में और उपर्युक्त निष्कर्षों के आधार पर उक्त दोनों लेटर्स पेटेन्ट अपीलें मंजूर की जाती हैं और विद्वान् एकल न्यायाधीश का तारीख 19 सितंबर, 2006 का आक्षेपित आदेश अपास्त किया जाता है और रिट याची द्वारा 2006 की सी. डब्ल्यू. जे. सी. सं. 9414 में मांगे गए अनुतोष एतद्द्वारा खारिज किए जाते हैं ।

लेटर्स पेटेन्ट अपीलें मंजूर की गईं ।

मह.

———

पवन कुमार

बनाम

पालमपुर रोटरी आई फाउंडेशन मार्फत **इसके अध्यक्ष**

तारीख 3 अप्रैल, 2012

न्यायमूर्ति राजीव शर्मा

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – धारा 80 और 100 – संस्था सम्पत्ति – मुख्तार की नियुक्ति – यदि कोई संस्था नियमानुसार मुख्तार की नियुक्ति करती है और वह संस्था की ओर से संस्था के किराएदारों को विवादित सम्पत्ति खाली करने के लिए नोटिस देता है जिसकी तामील सम्यक् रूप से कराई जाती है तो ऐसी नियुक्ति और नोटिस, वैध और विधिमान्य होगी और इसे चुनौती नहीं दी जा सकती है जब तक कि इससे अन्यथा कोई तथ्य साबित नहीं कर दिया जाता है ।

वर्तमान मामले में, प्रत्यर्थी-वादी ने मोहल और मौजा बागियाल (मरान्दा), तहसील पालमपुर, जिला कांगड़ा (हिमाचल प्रदेश) में स्थित खाता सं. 145, खतौनी सं. 262, खसरा सं. 170, 171 में समाविष्ट 0-31-36 हेक्टेयर भूमि पर मौजूद दुकान सं. 25, जो उत्तर में दुकान सं. 20, दक्षिण में अस्पताल भवन, पूर्व में सड़क और मेला माल सूद, रोटरी आई अस्पताल भवन के पश्चिम में अस्पताल भवन के कारिडोर से घिरा हुआ है, के कब्जे के लिए एक वाद फाइल किया था । दुकान, 535/- रुपए प्रतिमाह किराए पर किराएदार के रूप में अपीलार्थी-प्रतिवादी (जिसे इसमें इसके पश्चात् "प्रतिवादी" कहा गया है) के कब्जे में है । किराएदारी प्रत्येक कैलेण्डर माह के प्रथम दिन से आरम्भ होती थी । यह भी प्रकथन किया गया है कि प्रतिवादी ने बिना किसी युक्तियुक्त कारण के दिसम्बर, 2008 माह का किराया संदत्त नहीं किया है । यह भी प्रकथन किया गया है कि वादी ने तारीख 30 दिसम्बर, 2006 को आयोजित अपनी बैठक में भवन के ब्लाक को नष्ट करने और जनता की मांग को देखते हुए उसका पुनर्निर्माण करने का विनिश्चय किया था । वादी ने प्रतिवादी से परिसरों को खाली करने का निवेदन किया था । तथापि, उसने उसे नहीं माना । विवादित परिसरों का खाली कब्जा सौंपने के लिए प्रतिवादी को एक नोटिस तामील किया गया था । इन्हीं परिस्थितियों के अधीन कब्जे के लिए वाद फाइल किया गया ।

प्रतिवादी द्वारा वाद का विरोध किया गया । प्रतिवादी के अनुसार, श्री दिले राम (अभि. सा. 1) वाद फाइल करने के लिए सक्षम नहीं था । यह स्वीकार किया गया कि माहवार किराया 535/- रुपए था । तथापि, यह अभिवाक् किया गया कि प्रतिवादी की किराएदारी स्थायी प्रकृति की थी । वह किराया संदत्त करने के लिए तैयार और रजामंद था किन्तु, वादी ने उसे लेने से इनकार कर दिया था । यह भी अभिवाक् किया गया कि प्रतिवादी ने मरीजों को भोजन की आपूर्ति की थी और फिर भी वादी ने प्रतिवादी को उसके निमित्त 12,500/- रुपए का संदाय नहीं किया । यह भी अभिवाक् किया गया कि तारीख 30 दिसम्बर, 2006 की बैठक में शासकीय निकाय द्वारा दुकान को नष्ट करने के बारे में कोई चर्चा नहीं की गई थी । वादी द्वारा प्रत्युत्तर फाइल किया गया । तारीख 13 जुलाई, 2009 को विवाद्यक विरचित किए गए । विद्वान् सिविल न्यायाधीश (वरिष्ठ खंड), पालमपुर, जिला कांगड़ा (हिमाचल प्रदेश) ने वाद भागतः डिक्री कर दिया । दिसम्बर, 2008 माह के लिए किराया बकाया की रकम 535/- रुपए की वसूली के लिए वादी के पक्ष में और प्रतिवादी के विरुद्ध एक डिक्री पारित की । तथापि, कब्जे के लिए वादी का वाद खारिज कर दिया गया । वादी ने विद्वान् सिविल न्यायाधीश (वरिष्ठ खंड), पालमपुर, जिला कांगड़ा (हिमाचल प्रदेश) द्वारा पारित तारीख 7 जनवरी, 2011 के निर्णय और डिक्री के विरुद्ध विद्वान् जिला न्यायाधीश, कांगड़ा खंड, धर्मशाला (हिमाचल प्रदेश) के समक्ष एक अपील प्रस्तुत की । प्रथम अपील न्यायालय ने तारीख 30 सितम्बर, 2011 को अपील भागतः स्वीकार कर ली और दुकान सं. 25 के कब्जे के लिए वाद डिक्री कर दी । यह भी अभिनिर्धारित किया कि तारीख 31 दिसम्बर, 2008 के पश्चात् विवादित दुकान पर प्रतिवादी का कब्जा अवैध था । विचारण न्यायालय के निर्णय को इस सीमा तक उपांतरित कर दिया गया । अतएव, यह नियमित द्वितीय अपील फाइल की गई । न्यायालय द्वारा यह द्वितीय अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – प्रतिवादी पर तामील नोटिस के अनुसार, उसे 31 दिसम्बर, 2008 तक परिसरों को खाली कर देना था । उसने ऐसा करने से इनकार कर दिया था । वादी के अध्यक्ष डा. शिव कुमार ने वाद फाइल करने के लिए श्री दिले राम को प्राधिकृत किया था । अध्यक्ष वाद फाइल करने के लिए सक्षम था । शासकीय निकाय ने तारीख 6 जनवरी, 2007 को आयोजित अपनी बैठक में दस्तावेज, चिह्न-पी. एक्स. द्वारा भवन का पुनर्निर्माण करने का विनिश्चय किया और परिसरों को खाली करने के लिए

प्रतिवादी को नोटिस भी जारी किया था । इसके अलावा, पुनर्निर्माण करने के प्रयोजन के लिए विभिन्न दुकानों के कब्जाधारी सभी किराएदारों को भी नोटिस जारी करने का विनिश्चय लिया गया था । वर्ष 2001-2002 के लिए जमाबंदी प्रदर्श पी-6 के अनुसार, वादी वाद सम्पत्ति में 117/128 हिस्से का कब्जा सहित स्वामी था और वाद सम्पत्ति की प्रकृति अस्पताल और दुकानें थीं । इस बात में कोई अवैधता नहीं है कि डा. शिव कुमार, अध्यक्ष ने वर्तमान वाद फाइल करने के लिए विशेष मुख्तारनामा के रूप में श्री दिले राम को नियुक्त किया था । परिणामतः, इस नियमित द्वितीय अपील में कोई विधि का सारवान् प्रश्न अन्तर्ग्रस्त नहीं हैं । (पैरा 12)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2011] (2011) 5 एस. सी. सी. 142 :
अध्यक्ष-सह-प्रबन्ध निदेशक, कोल इंडिया लिमिटेड और अन्य बनाम **अनन्त शाह और अन्य** ; 11

[2010] (2010) 13 एस. सी. सी. 657 :
सुनील कुमार संभुदयाल गुप्ता और अन्य बनाम **महाराष्ट्र राज्य** । 10

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2012-ए की नियमित द्वितीय अपील सं. 94.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री अश्वनी के. शर्मा, अधिवक्ता

प्रत्यर्थी की ओर से –

न्यायमूर्ति राजीव शर्मा – यह नियमित द्वितीय अपील विद्वान् जिला न्यायाधीश, कांगड़ा खंड, धर्मशाला (हिमाचल प्रदेश) द्वारा सिविल अपील सं. 11-पी./xiii-2011 में पारित तारीख 30 सितम्बर, 2011 के निर्णय और डिक्री के विरुद्ध निदेशित है ।

2. इस नियमित द्वितीय अपील का न्यायनिर्णयन करने के लिए आवश्यक तात्विक तथ्य यह हैं कि प्रत्यर्थी-वादी (जिसे इसमें इसके पश्चात् सुविधा के लिए "वादी" कहा गया है) ने मोहल और मौजा बागियाल (मरान्दा), तहसील पालमपुर, जिला कांगड़ा (हिमाचल प्रदेश) में स्थित खाता

सं. 145, खतौनी सं. 262, खसरा सं. 170, 171 में समाविष्ट 0-31-36 हेक्टेयर भूमि पर मौजूद दुकान सं. 25, जो उत्तर में दुकान सं. 20, दक्षिण में अस्पताल भवन, पूर्व में सड़क और मेला माल सूद, रोटरी आई अस्पताल भवन के पश्चिम में अस्पताल भवन के कोरिडोर से घिरा हुआ है, के कब्जे के लिए एक वाद फाइल किया था । दुकान, 535/- रुपए प्रतिमाह किराए पर किराएदार के रूप में अपीलार्थी-प्रतिवादी (जिसे इसमें इसके पश्चात् "प्रतिवादी" कहा गया है) के कब्जे में है । किराएदारी प्रत्येक कैलेण्डर माह के प्रथम दिन से आरम्भ होती थी । यह भी प्रकथन किया गया है कि प्रतिवादी ने बिना किसी युक्तियुक्त कारण के दिसम्बर, 2008 माह का किराया संदत्त नहीं किया है । यह भी प्रकथन किया गया है कि वादी ने तारीख 30 दिसम्बर, 2006 को आयोजित अपनी बैठक में भवन के ब्लाक को नष्ट करने और जनता की मांग को देखते हुए उसका पुनर्निर्माण करने का विनिश्चय किया था । वादी ने प्रतिवादी से परिसरों को खाली करने का निवेदन किया था । तथापि, उसने उसे नहीं माना । विवादित परिसरों का खाली कब्जा सौंपने के लिए प्रतिवादी को एक नोटिस तामील किया गया था । इन्हीं परिस्थितियों के अधीन कब्जे के लिए वाद फाइल किया गया ।

3. प्रतिवादी द्वारा वाद का विरोध किया गया । प्रतिवादी के अनुसार, श्री दिले राम (अभि. सा. 1) वाद फाइल करने के लिए सक्षम नहीं था । यह स्वीकार किया गया कि माहवार किराया 535/- रुपए था । तथापि, यह अभिवाक् किया गया कि प्रतिवादी की किराएदारी स्थायी प्रकृति की थी । वह किराया संदत्त करने के लिए तैयार और रजामंद था किन्तु, वादी ने उसे लेने से इनकार कर दिया था । यह भी अभिवाक् किया गया कि प्रतिवादी ने मरीजों को भोजन की आपूर्ति की थी और फिर भी वादी ने प्रतिवादी को उसके निमित्त 12,500/- रुपए का संदाय नहीं किया । यह भी अभिवाक् किया गया कि तारीख 30 दिसम्बर, 2006 की बैठक में शासकीय निकाय द्वारा दुकान को नष्ट करने के बारे में कोई चर्चा नहीं की गई थी ।

4. वादी द्वारा प्रत्युत्तर फाइल किया गया । तारीख 13 जुलाई, 2009 को विवाद्यक विरचित किए गए । विद्वान् सिविल न्यायाधीश (वरिष्ठ खंड), पालमपुर, जिला कांगड़ा (हिमाचल प्रदेश) ने वाद भागतः डिक्री कर दिया । दिसम्बर, 2008 माह के लिए किराया बकाया की रकम 535/- रुपए की वसूली के लिए वादी के पक्ष में और प्रतिवादी के विरुद्ध एक डिक्री पारित की । तथापि, कब्जे के लिए वादी का वाद खारिज कर दिया गया । वादी

ने विद्वान् सिविल न्यायाधीश (वरिष्ठ खंड), पालमपुर, जिला कांगड़ा (हिमाचल प्रदेश) द्वारा पारित तारीख 7 जनवरी, 2011 के निर्णय और डिक्री के विरुद्ध विद्वान् जिला न्यायाधीश, कांगड़ा खंड, धर्मशाला (हिमाचल प्रदेश) के समक्ष एक अपील प्रस्तुत की । प्रथम अपील न्यायालय ने तारीख 30 सितम्बर, 2011 को अपील भागतः स्वीकार कर ली और दुकान सं. 25 के कब्जे के लिए वाद डिक्री कर दी । यह भी अभिनिर्धारित किया कि तारीख 31 दिसम्बर, 2008 के पश्चात् विवादित दुकान पर प्रतिवादी का कब्जा अवैध था । विचारण न्यायालय के निर्णय को इस सीमा तक उपांतरित कर दिया गया । अतएव, यह नियमित द्वितीय अपील फाइल की गई ।

5. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल श्री अश्वनी कुमार शर्मा ने विरचित सारवान् विधि के प्रश्न के आधार पर यह जोरदार तर्क दिया कि श्री दिले राम वाद फाइल करने के लिए सक्षम नहीं है । उन्होंने यह भी तर्क दिया कि प्रतिवादी को जारी नोटिस वैध नहीं है । उनके अनुसार, किराएदारी स्थायी प्रकृति की है । उन्होंने यह भी तर्क दिया कि श्री शिव कुमार, अध्यक्ष भी श्री दिले राम के पक्ष में "विशेष मुख्तारनामा" निष्पादित करने के लिए विधि के अधीन सक्षम नहीं था ।

6. मैंने, पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल को सुना और अभिवचनों का ध्यानपूर्वक परिशीलन किया ।

7. अभि. सा. 1 दिले राम ने यह अभिसाक्ष्य दिया कि वादी विवादित दुकान का स्वामी है । उसने यह भी कथन किया कि डा. शिव कुमार, अध्यक्ष ने प्रदर्श पी-1 के द्वारा उसके पक्ष में विशेष मुख्तारनामा निष्पादित किया था । उसके अनुसार, प्रतिवादी 535/- रुपए प्रतिमाह के किराए पर एक किराएदार है । उसने यह भी कथन किया कि प्रतिवादी ने नवम्बर, 2008 तक किराया संदत्त किया है । प्रश्नगत दुकान को विस्तार के लिए वादी द्वारा अर्जित किया गया था । वादी का शासकीय निकाय ने भी तारीख 6 जनवरी, 2007 को आयोजित अपनी बैठक में उस भवन का पुनर्निर्माण करने का विनिश्चय किया था । तारीख 12 दिसम्बर, 2008 को एक नोटिस प्रदर्श पी-2 जारी करते हुए, प्रतिवादी को 31 दिसम्बर, 2008 तक दुकान खाली करने के लिए कहा गया था । उसने डाक प्राप्ति प्रदर्श पी-3 और अभिस्वीकृति प्रदर्श पी-4 को साबित किया है । उसने स्थल नक्शा प्रदर्श पी-5 और जमाबंदी की प्रति प्रदर्श पी-6 को भी साबित किया है । उसके अनुसार, प्रतिवादी ने दिसम्बर, 2008 तक का किराया संदत्त नहीं किया है ।

8. प्रतिवादी साक्षी 1 पवन कुमार ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि वादी 12,500/- रुपए का संदाय करने के लिए दायी था । तथापि, उसने उसके लिए कोई बिल प्रस्तुत नहीं किया । उसने यह भी अभिसाक्ष्य दिया कि उसे कोई नोटिस प्राप्त नहीं हुआ था । उसने मनीआर्डर के माध्यम से किराया भेजा था किन्तु वादी ने उसे स्वीकार नहीं किया था ।

9. याची के विद्वान् काउंसेल श्री अश्वनी कुमार शर्मा की इस दलील में कोई गुणागुण नहीं है कि नोटिस प्रदर्श पी-2 उसके मुवक्किल पर तामील नहीं हुआ था । नोटिस तारीख 12 दिसम्बर, 2008 को जारी हुआ था । वादी ने डाक प्राप्ति प्रदर्श पी-3 और अभिस्वीकृति प्रदर्श पी-4 को साबित किया है । साधारण खंड अधिनियम, 1897 के अधीन यह उपधारणा की जा सकती है कि प्रतिवादी को नोटिस प्राप्त हुआ था । वस्तुतः प्रतिवादी ने अभिस्वीकृति प्रदर्श पी-4 पर हस्ताक्षर किए हैं ।

10. माननीय उच्चतम न्यायालय के माननीय न्यायाधीशों ने **सुनील कुमार संभुदयाल गुप्ता और अन्य** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि रजिस्ट्रीकृत डाक पत्र द्वारा तामीली की उपधारणा की जा सकती है और उसमें यह विवक्षित होता है कि प्रेषिती यह साबित कर सकता है कि पत्र उसे नहीं मिला है । माननीय न्यायाधीशों ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

> "53. परिवादियों ने अपीलार्थी सं. 2 द्वारा लिखित तारीख 3 अप्रैल, 1985 का पत्र इसमें उपर्युक्त निर्दिष्ट मृतक के पिता को प्राप्त होने से इनकार किया है । तथापि, अपीलार्थियों ने डाकघर के साथ हुए पत्राचार को प्रस्तुत किया है और यह दर्शित करने के लिए डाक स्टाम्प को साबित किया है कि उक्त पत्र रजिस्ट्रीकृत डाक द्वारा रामकिशन गुप्ता (अभि. सा. 8) को भेजा गया था । इस बारे में विधि सुस्थिर है ।
>
> 54. गुजरात विद्युत बोर्ड और एक अन्य **बनाम** आत्मा राम सुंगामल पोशानी (ए. आई. आर. 1989 एस. सी. 1433) वाले मामले में इस न्यायालय ने साधारण खंड अधिनियम, 1897 की धारा 27 के अधीन रजिस्ट्रीकृत डाक द्वारा भेजे गए पत्र की तामीली की उपधारणा के बारे में विवाद्यक की परीक्षा की थी और यह अभिनिर्धारित किया था कि –
>
> > 'रजिस्ट्रीकृत डाक के द्वारा भेजे गए पत्र की तामील की उपधारणा की जाती है .....। निःसंदेह, यह उपधारणा

[1] (2010) 13 एस. सी. सी. 657.

खंडनीय है और यह संबंधित पक्षकार के लिए खुला होता है कि वह ऐसी उपधारणा को खंडित करने के लिए न्यायालय के समक्ष साक्ष्य प्रस्तुत करे, यह दर्शित करते हुए कि लिफाफे के ऊपर उल्लिखित पता गलत था अथवा यह कि डाक प्राधिकारियों ने उसे कभी भी रजिस्ट्रीकृत पत्र नहीं दिया .....। ऐसी उपधारणा को खंडित करने का भार उस पक्षकार पर होता है जिसने तामीली के तथ्य को चुनौती दी है ।'

इसी प्रकार का मत, इस न्यायालय द्वारा मुख्य आय-कर आयुक्त (प्रशासन), बंगलौर **बनाम** वी. के. गुरुराज और अन्य [(1996) 7 एस. सी. सी. 275] और शिमला विकास प्राधिकरण और अन्य **बनाम** संतोष शर्मा (श्रीमती) और एक अन्य [(1997) 2 एस. सी. सी. 637] वाले मामलों में दोहराया गया ।

55. हरिहर बनर्जी **बनाम** रामशशि राय (ए. आई. आर. 1918 प्रिवी कौंसिल 102) वाले मामले में, प्रिवी कौंसिल द्वारा भी भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 114 के दृष्टांत (च) को निर्दिष्ट करते हुए इसी प्रकार का मत अपनाया गया था ।

56. उपर्युक्त को ध्यान में रखते हुए, यह शिकायतकर्ताओं का दायित्व था कि वे डाकघर, कानपुर के कार्यालय में साक्ष्य प्रस्तुत करते हुए यह साबित करें कि उक्त पत्र उसे नहीं प्रदान किया गया था । तथापि, उन कारणों से, जो अभियोजन पक्ष ही बेहतर तरीके से जान सकता था, ऐसा वचनबद्ध नहीं किया गया ।"

11. **अध्यक्ष-सह-प्रबन्ध निदेशक, कोल इंडिया लिमिटेड और अन्य** बनाम **अनन्त शाह और अन्य**[1] वाले नवीनतम मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के माननीय न्यायाधीशों ने यह दोहराया है कि यदि रजिस्ट्रीकृत डाक द्वारा कारण बताओ नोटिस भेजा जाता है तो यह उपधारणा की जा सकती है कि वह प्रेषिती को प्राप्त हुई है । माननीय न्यायाधीशों ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया :–

"23. इस प्रकार, हम अपचारी द्वारा दी गई इस दलील में कोई बल नहीं पाते हैं कि उसने अनुशासनिक कार्यवाहियों में भाग नहीं लिया और जांच रिपोर्ट के साथ ही द्वितीय कारण बताओ नोटिस की प्राप्ति पर कोई टिप्पणी नहीं की क्योंकि उसके ऊपर नोटिसें विधि के

[1] (2011) 5 एस. सी. सी. 142.

अनुसरण में तामील नहीं की गई थीं । द्वितीय कारण बताओ नोटिस और जांच रिपोर्ट की प्रति उसे रजिस्ट्रीकृत डाक द्वारा भेजी गई थी । इसलिए, विधि में यह उपधारणा की जाती है विशिष्टतया, साधारण खंड अधिनियम, 1897 की धारा 27 और भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 114 दृष्टांत (च) के अधीन कि प्रेषिती ने डाक द्वारा भेजी गई सामग्री को प्राप्त किया है । (देखें – ग्रेटर मोहाली क्षेत्र विकास प्राधिकरण और अन्य **बनाम** मंजू जैन और अन्य (ए. आई. आर. 2010 एस. सी. 3817) ।"

12. प्रतिवादी पर तामील नोटिस के अनुसार, उसे 31 दिसम्बर, 2008 तक परिसरों को खाली कर देना था । उसने ऐसा करने से इनकार कर दिया था । वादी के अध्यक्ष डा. शिव कुमार ने वाद फाइल करने के लिए श्री दिले राम को प्राधिकृत किया था । अध्यक्ष वाद फाइल करने के लिए सक्षम था । शासकीय निकाय ने तारीख 6 जनवरी, 2007 को आयोजित अपनी बैठक में दस्तावेज, चिह्न-पी. एक्स. द्वारा भवन का पुनर्निर्माण करने का विनिश्चय किया और परिसरों को खाली करने के लिए प्रतिवादी को नोटिस भी जारी किया था । इसके अलावा, पुनर्निर्माण करने के प्रयोजन के लिए विभिन्न दुकानों के कब्जाधारी सभी किराएदारों को भी नोटिस जारी करने का विनिश्चय लिया गया था । वर्ष 2001-2002 के लिए जमाबंदी प्रदर्श पी-6 के अनुसार, वादी वाद सम्पत्ति में 117/128 हिस्से का कब्जा सहित स्वामी था और वाद सम्पत्ति की प्रकृति अस्पताल और दुकानें थीं । इस बात में कोई अवैधता नहीं है कि डा. शिव कुमार, अध्यक्ष ने वर्तमान वाद फाइल करने के लिए विशेष मुख्तारनामा के रूप में श्री दिले राम को नियुक्त किया था । परिणामतः, इस नियमित द्वितीय अपील में कोई विधि का सारवान् प्रश्न अन्तर्ग्रस्त नहीं हैं ।

13. तद्नुसार, इसमें उपर्युक्त की गई मताभिव्यक्तियों और चर्चाओं को ध्यान में रखते हुए इस नियमित द्वितीय अपील में कोई गुणागुण नहीं हैं और इसे खारिज किया जाता है, इसके साथ ही लम्बित आवेदन/आवेदनों, यदि कोई हो, को भी खारिज किया जाता है । खर्चे का कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

अपील खारिज की गई ।

क.

———

धनिया

बनाम

भगवान सिंह और एक अन्य

तारीख 9 अप्रैल, 2012

न्यायमूर्ति राजीव शर्मा

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – धारा 100 [सपठित हिमाचल प्रदेश अभिधृति और भूमि सुधार अधिनियम, 1974] – विवादित भूमि का कब्जे सहित स्वामी होने का दावा करना – दावे की पुष्टि दस्तावेजी साक्ष्यों से नहीं होना – दावा खारिज होना – यदि कोई व्यक्ति किसी भूमि का कब्जे सहित स्वामी होने का दावा करता है तो उसे ग्राह्य अभिलेखों द्वारा इसे वैध और विधिसम्मत साबित करना होगा जिसके अभाव में उसका दावा खारिज होने योग्य होगा और इसमें हस्तक्षेप करना अपेक्षित नहीं होगा ।

वर्तमान मामले में, अपीलार्थी-वादी ने यह दावा किया है कि वह चक करोथ, परगना नागरु, तहसील थियाग, जिला शिमला में स्थित खसरा सं. 126 और 127 में समाविष्ट भूमि, जो वाद के साथ उपाबंध है, राजस्व अभिलेखों के अनुसार वर्ष 1930-31 से कब्जा सहित अधिकार में आ गया था । उसके अनुसार, वर्ष 1930-31 में उसे और उसके भाइयों को थियाग एस्टेट के पहले के तत्कालीन शासकों द्वारा उनको दी गई सेवाओं के बदले में ''गैर मौरुसी'' अभिधारी के रूप में कब्जा दे दिया था जो वाद भूमि के स्वामी थे । उसने यह भी अभिवाक् किया कि वर्ष 1930-31 में उसने अपने भाइयों से उनका हिस्सा क्रय-कर लिया जो उसके साथ सह-हिस्सेदार थे । वर्ष 1935-36 में भरत सिंह, प्रत्यर्थियों-प्रतिवादियों का पिता ने बिना किसी अधिकार, हक हित के राजस्व प्राधिकारियों के साथ दुरभिसंधि करके वाद भूमि के ''मोजरा सिकमी'' के रूप में राजस्व अभिलेख में अपना नाम अंतःस्थापित करा लिया । वर्ष 1949-50 में राजस्व प्रविष्टियां परिवर्तित की गईं और तद्द्वारा प्रत्यर्थियों के पिता ने कब्जे के कॉलम से वादी का नाम कटवा लिया और हिमाचल प्रदेश राज्य के अधीन स्वयं को अभिधारी के रूप में दर्शित किया । इसके पश्चात्, प्रतिवादियों ने

हिमाचल प्रदेश भू-धृति और भूमि सुधार अधिनियम के उपबंधों के अधीन कपटपूर्वक वर्ष 1985-86 में प्रदत्त साम्पत्तिक अधिकारों को प्राप्त कर लिया । उसके अनुसार, राजस्व प्रविष्टियों अप्राधिकृत परिवर्तन के बावजूद वह वाद भूमि के कब्जे में बना रहा और विधि के प्रवर्तन द्वारा वह वाद भूमि का पूर्णरूपेण स्वामी हो गया । यह भी कथन किया गया है कि वाद भूमि में उसके कब्जे को उस क्षेत्र में की गई बंदोबस्त कार्यवाहियों में भी पुष्टि कर दी गई । उसके अनुसार, गलत राजस्व प्रविष्टियों के आधार पर अब प्रतिवादियों ने वाद भूमि पर उसके कब्जे में हस्तक्षेप करना आरम्भ कर दिया और वे उसे बाहर निकालने की धमकी देने लगे हैं । इन परिस्थितियों में, उसने इस प्रभाव की घोषणा की डिक्री की ईप्सा करते हुए यह वाद फाइल किया है कि वह विधि के प्रवर्तन द्वारा वाद भूमि का कब्जे सहित पूर्णरूपेण स्वामी हो गया है और राजस्व प्रविष्टियों में प्रतिवादियों का कब्जे सहित स्वामियों के रूप में दर्शित करना गलत और अवैध है तथा वाद भूमि के ऊपर कोई भी हस्तक्षेप करने से प्रतिवादियों को अवरुद्ध करते हुए स्थायी प्रतिषेधात्मक व्यादेश का पारिणामिक अनुतोष भी प्रदान किया जाए । वैकल्पिक रूप में उसने यह प्रार्थना की है कि यदि वह अपने अभिधारी के अभिवाक् को साबित करने में असफल रहता है तो उसका वर्ष 1931 से प्रतिकूल कब्जा, खुला, निरन्तरता द्वारा और अधिकारपूर्वक तथा वर्ष 1935-36 से प्रतिवादियों की जानकारी में प्रतिकूल कब्जा द्वारा वाद भूमि पर उसका हक सुनिश्चित किया जाए । प्रतिवादियों द्वारा वाद का विरोध किया गया । प्रतिवादियों ने इस बात से इनकार किया कि वाद भूमि वर्ष 1930-31 से वादी के कब्जे में है । प्रतिवादियों के अनुसार, वादी कभी भी वाद भूमि या उसके किसी भाग के कब्जे में नहीं रहे और 'गैर-मौरुसी' अभिधारी के रूप में उनके कब्जे में होने का प्रश्न ही नहीं उद्भूत होता है । उन्होंने यह अभिवाक् किया कि आरम्भतः उनके पिता वाद भूमि में अभिधारी के रूप में कब्जे में थे और हिमाचल प्रदेश भू-धृति और भूमि सुधार अधिनियम के उपबंधों के प्रवर्तन में आने के पश्चात् वह उसके पूर्णरूपेण स्वामी हो गए और इसके पश्चात् उनके द्वारा वाद भूमि का विकास किया गया और अब वे उसके कब्जे में है । तथापि, परिसीमा अवधि का अभिवाक् भी उद्भूत किया गया । उनके अनुसार, राजस्व प्रविष्टियों में कभी भी कपटपूर्वक परिवर्तन नहीं किया गया न ही राजस्व स्टाफ के साथ कोई दुरभिसंधि की गई थी । उन्होंने इस बात से इनकार

किया कि नवीनतम बंदोबस्त में वादी का कब्जा बंदोबस्त स्टाफ द्वारा पुष्ट किया गया है । हस्तक्षेप के अभिवाक् से इनकार किया गया । वादी ने प्रत्युत्तर फाइल किया । विद्वान् उप-न्यायाधीश, प्रथम श्रेणी ने तारीख 6 जनवरी, 1998 को विवाद्यक विरचित किया और इसके पश्चात् तारीख 30 नवम्बर, 1998 को अतिरिक्त विवाद्यक विरचित किए गए । विद्वान् उप-न्यायाधीश, प्रथम श्रेणी ने तारीख 5 दिसम्बर, 2001 को वाद खारिज कर दिया । इसके पश्चात्, वादी ने विद्वान् जिला न्यायाधीश, शिमला के समक्ष एक अपील फाइल की । उन्होंने उसे तारीख 31 जुलाई, 2002 को खारिज कर दिया । अतएव, वर्तमान नियमित द्वितीय अपील फाइल की गई । न्यायालय द्वारा अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – सभी जमाबंदियों प्रदर्श पी-1 से पी-9 में भरत सिंह, प्रतिवादियों का पिता, को वर्ष 1935-36 से वाद भूमि के अभिधारी के रूप में दर्शित किया गया है । वर्ष 1990-91 के लिए जमाबंदी के अनुसार, भरत सिंह, प्रतिवादियों का पिता, को वाद भूमि के स्वामी के रूप में दर्शित किया गया है । टिप्पण कालम में इस प्रभाव की एक प्रविष्टि की गई है कि नामांतरण सं. 43 द्वारा प्रतिवादियों के पिता अर्थात् भरत सिंह के 'विल' के आधार पर प्रतिवादियों के पक्ष में नामांतरण किया गया है और नामांतरण सं. 48 द्वारा वाद भूमि भरत सिंह द्वारा निष्पादित त्यक्त विलेख के आधार पर भगवान सिंह के पक्ष में अनन्य रूप से नामांतरण किया गया है । वर्ष 1991 से 1998 के लिए खसरा गिरदावरी की प्रतियों प्रदर्श डी डी और प्रदर्श डी ई के अनुसार, वाद भूमि को भरत सिंह के कब्जे में दर्शित किया गया है और उसके बाद प्रतिवादी भगवान सिंह के कब्जे में दर्शित किया गया है । नवीनतम बंदोबस्त प्रवर्तन प्रदर्श डी ए के दौरान बंदोबस्त स्टाफ द्वारा तैयार जमींदारी पर्चा के अनुसार, प्रतिवादी भगवान सिंह को वाद भूमि में कब्जे सहित स्वामी दर्शित किया गया है । इस प्रकार, वादी द्वारा लिया गया यह अभिवाक् कि वाद भूमि पर उसके कब्जे को बंदोबस्त कार्यवाहियों के अधीन पुष्टि की गई है, मिथ्या है । वादी के अनुसार, वह वर्ष 1930-1931 से वाद भूमि के कब्जे में आया था । उसने तारीख 2 अप्रैल, 1998 और 23 मार्च, 1999 को स्वयं की परीक्षा कराई । तारीख 2 अप्रैल, 1998 को अपने कथन में, उसने यह अभिसाक्ष्य दिया कि वाद भूमि को राजा साहब द्वारा उसके पिता को दिया गया था । तथापि, वह यह कथन नहीं कर सका कि किस वर्ष में भूमि, तत्कालीन शासकों द्वारा उसके

पिता को दी गई थी । वादी का अभिवाचित पक्षकथन यह है कि वाद भूमि, तत्कालीन शासकों द्वारा उसे और उसके भाइयों को दी गई थी । वादी ने यह प्रकट नहीं किया कि किस वर्ष में वह अभिधारी के रूप में कब्जे में आ गया था । तारीख 2 अप्रैल, 1998 को उसने यह कथन किया कि उसकी आयु 77 वर्ष है और तारीख 23 मार्च, 1999 को उसने यह कथन किया कि उसकी आयु 75 वर्ष है । वादी द्वारा दिए गए आयु के अनुसार वर्ष 1930-31 में उसकी आयु मात्र 7 से 10 वर्ष की थी । इस प्रकार, उसके द्वारा उद्‌भूत यह अभिवाक् कि उसे तत्कालीन शासकों द्वारा वाद भूमि कब्जे में दी गई थी, को स्वीकार नहीं किया जा सकता है । इसी प्रकार, यह अभिवाक् कि उसने वर्ष 1930 में अपने भाइयों से वाद भूमि क्रय की थी, पर विश्वास नहीं किया जा सकता है । इस बात पर भी विश्वास नहीं किया जा सकता है कि 7 से 10 वर्ष की आयु का बालक भूमि क्रय करने के लिए सक्षम था । श्री जी. डी. वर्मा, विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता ने यह भी जोरदार तर्क दिया कि पश्चात्‌वर्ती राजस्व प्रविष्टियां बिना किसी आदेश के परिवर्तित की गई हैं । वर्तमान मामले में भी वादी ने यह स्पष्टीकरण नहीं दिया है कि वर्ष 1930-31 में किस प्रकार अवांछित प्रविष्टि की गई थी । वादी वर्ष 1930-31 से चुप रहा और वर्तमान वाद भी तारीख 27 मई, 1997 को ही संस्थित किया गया । संबद्ध नवीनतम जमाबंदी की सत्यता की उपधारणा की जाती है यद्यपि, यह खंडनीय है । वादी ने जमाबंदियों में की गई इन प्रविष्टियों के खंडन में कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया है । खसरा गिरदावरी की प्रतियों में भी वाद भूमि का कब्जा भरत सिंह का दर्शित किया गया है और उसके पश्चात् प्रतिवादियों का कब्जा दर्शित किया गया है । प्रतिवादियों के पिता की सांपत्तिक अधिकारों की पुष्टि की गई है और उसके पश्चात् यह प्रतिवादियों के स्वामित्व और कब्जे में आ गई थी । वादी ने उन आदेशों को चुनौती नहीं दी है जिनके द्वारा प्रतिवादियों के पिता के सांपत्तिक अधिकारों की पुष्टि की गई थी । वादी ने प्रतिकूल कब्जे का अभिवाक् उद्‌भूत किया । तथापि, इसे साबित करने के लिए कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया सिवाय इसके कि वादी द्वारा उद्‌भूत अभिवाक् परस्पर खंडनीय थे । यदि वह स्वयं को अभिधारी होने का दावा करता है तो वह प्रतिकूल कब्जे के अभिवाक् को उद्‌भूत करने से निवारित है । यह सुस्थिर विधि है कि अभिधृति एक द्विपक्षीय कार्य है । वादी ने यह दर्शित करने के लिए अभिलेख पर कोई ठोस साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया है कि वह भू-स्वामी

को कोई किराया संदत्त कर रहा था । दोनों निचले न्यायालयों द्वारा पारित निर्णय सकारण हैं और इनमें हस्तक्षेप करने की कोई आवश्यकता नहीं है । (पैरा 14, 15 और 16)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2003 की नियमित द्वितीय अपील सं. 36.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन द्वितीय अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री जी. डी. वर्मा, ज्येष्ठ अधिवक्ता के साथ रोमेश वर्मा, अधिवक्ता

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री नीरज गुप्ता, अधिवक्ता

न्यायमूर्ति राजीव शर्मा – यह नियमित द्वितीय, अपील विद्वान् जिला न्यायाधीश, शिमला द्वारा 2001 की सिविल अपील सं. 110-एस./13 में पारित तारीख 31 जुलाई, 2002 के निर्णय और डिक्री के विरुद्ध निदेशित है ।

2. इस नियमित द्वितीय अपील के अधिनिर्णय के लिए आवश्यक तात्विक तथ्य यह है कि अपीलार्थी-वादी (जिसे इसमें इसके पश्चात् सुविधा के लिए 'वादी' कहा गया है) ने यह दावा किया है कि वह चक करोथ, परगना नागरु, तहसील थियाग, जिला शिमला में स्थित खसरा सं. 126 और 127 में समाविष्ट भूमि, जो वाद के साथ उपाबंध है, राजस्व अभिलेखों के अनुसार वर्ष 1930-31 से कब्जा सहित अधिकार में आ गया था । उसके अनुसार, वर्ष 1930-31 में उसे और उसके भाइयों को थियाग एस्टेट के पहले के तत्कालीन शासकों द्वारा उनको दी गई सेवाओं के बदले में 'गैर मौरुसी' अभिधारी के रूप में कब्जा दे दिया था जो वाद भूमि के स्वामी थे । उसने यह भी अभिवाक् किया कि वर्ष 1930-31 में उसने अपने भाइयों से उनका हिस्सा क्रय कर लिया जो उसके साथ सह-हिस्सेदार थे । वर्ष 1935-36 में भरत सिंह, प्रत्यर्थियों-प्रतिवादियों का पिता (जिसे इसमें इसके पश्चात् सुविधा के लिए 'प्रतिवादियों' के रूप में कहा गया है) ने बिना किसी अधिकार, हक हित के राजस्व प्राधिकारियों के साथ दुरभिसंधि करके वाद भूमि के 'मोजरा सिकमी' के रूप में राजस्व अभिलेख में अपना नाम अंतःस्थापित करा लिया । वर्ष 1949-50 में राजस्व प्रविष्टियां परिवर्तित की गईं और तद्द्वारा प्रत्यर्थियों के पिता ने कब्जे के कॉलम से वादी का नाम कटवा लिया और हिमाचल प्रदेश राज्य के अधीन

स्वयं को अभिधारी के रूप में दर्शित किया । इसके पश्चात्, प्रतिवादियों ने हिमाचल प्रदेश भू-धृति और भूमि सुधार अधिनियम के उपबंधों के अधीन कपटपूर्वक वर्ष 1985-86 में प्रदत्त साम्पत्तिक अधिकारों को प्राप्त कर लिया । उसके अनुसार, राजस्व प्रविष्टियों में अप्राधिकृत परिवर्तन के बावजूद वह वाद भूमि के कब्जे में बना रहा और विधि के प्रवर्तन द्वारा वह वाद भूमि का पूर्णरूपेण स्वामी हो गया । यह भी कथन किया गया है कि वाद भूमि में उसके कब्जे को उस क्षेत्र में की गई बंदोबस्त कार्यवाहियों में भी पुष्टि कर दी गई । उसके अनुसार, गलत राजस्व प्रविष्टियों के आधार पर अब प्रतिवादियों ने वाद भूमि पर उसके कब्जे में हस्तक्षेप करना आरम्भ कर दिया और वे उसे बाहर निकालने की धमकी देने लगे हैं । इन परिस्थितियों में, उसने इस प्रभाव की घोषणा की डिक्री की ईप्सा करते हुए यह वाद फाइल किया है कि वह विधि के प्रवर्तन द्वारा वाद भूमि का कब्जे सहित पूर्णरूपेण स्वामी हो गया है और राजस्व प्रविष्टियों में प्रतिवादियों का कब्जे सहित स्वामियों के रूप में दर्शित करना गलत और अवैध है तथा वाद भूमि के ऊपर कोई भी हस्तक्षेप करने से प्रतिवादियों को अवरुद्ध करते हुए स्थायी प्रतिषेधात्मक व्यादेश का पारिणामिक अनुतोष भी प्रदान किया जाए । वैकल्पिक रूप में उसने यह प्रार्थना की है कि यदि वह अपने अभिधारी के अभिवाक् को साबित करने में असफल रहता है तो उसका वर्ष 1931 से प्रतिकूल कब्जा, खुला, निरन्तरता द्वारा और अधिकारपूर्वक तथा वर्ष 1935-36 से प्रतिवादियों की जानकारी में प्रतिकूल कब्जा द्वारा वाद भूमि पर उसका हक सुनिश्चित किया जाए ।

3. प्रतिवादियों द्वारा वाद का विरोध किया गया । प्रतिवादियों ने इस बात से इनकार किया कि वाद भूमि वर्ष 1930-31 से वादी के कब्जे में है । प्रतिवादियों के अनुसार, वादी कभी भी वाद भूमि या उसके किसी भाग के कब्जे में नहीं रहे और 'गैर-मौरुसी' अभिधारी के रूप में उनके कब्जे में होने का प्रश्न ही नहीं उद्भूत होता है । उन्होंने यह अभिवाक् किया कि आरम्भतः उनके पिता वाद भूमि में अभिधारी के रूप में कब्जे में थे और हिमाचल प्रदेश भू-धृति और भूमि सुधार अधिनियम के उपबंधों के प्रवर्तन में आने के पश्चात् वह उसके पूर्णरूपेण स्वामी हो गए और इसके पश्चात् उनके द्वारा वाद भूमि का विकास किया गया और अब वे उसके कब्जे में है । तथापि, परिसीमा अवधि का अभिवाक् भी उद्भूत किया गया । उनके अनुसार, राजस्व प्रविष्टियों में कभी भी कपटपूर्वक परिवर्तन नहीं किया गया

न ही राजस्व स्टाफ के साथ कोई दुरभिसंधि की गई थी । उन्होंने इस बात से इनकार किया कि नवीनतम बंदोबस्त में वादी का कब्जा बंदोबस्त स्टाफ द्वारा पुष्ट किया गया है । हस्तक्षेप के अभिवाक् से इनकार किया गया ।

4. वादी ने प्रत्युत्तर फाइल किया । विद्वान् उप-न्यायाधीश, प्रथम श्रेणी ने तारीख 6 जनवरी, 1998 को विवाद्यक विरचित किया और इसके पश्चात् तारीख 30 नवम्बर, 1998 को अतिरिक्त विवाद्यक विरचित किए गए । विद्वान् उप-न्यायाधीश, प्रथम श्रेणी ने तारीख 5 दिसम्बर, 2001 को वाद खारिज कर दिया । इसके पश्चात्, वादी ने विद्वान् जिला न्यायाधीश, शिमला के समक्ष एक अपील फाइल की । उन्होंने उसे तारीख 31 जुलाई, 2002 को खारिज कर दिया । अतएव, वर्तमान नियमित द्वितीय अपील फाइल की गई इसे निम्नलिखित सारवान् विधिक प्रश्नों पर स्वीकार कर लिया गया :–

(i) क्या राजस्व अभिलेख प्रदर्श पी-1 से प्रदर्श पी-10 पर विचार नहीं करने के कारण अपीलार्थी के विरुद्ध अभिलिखित निष्कर्ष अपास्त किए जाने योग्य हैं ?

(ii) क्या प्रत्यर्थियों द्वारा प्रस्तुत राजस्व अभिलेख प्रदर्श डी ए से प्रदर्श डी ई से सत्यता की उपधारणा नहीं की जा सकती है क्योंकि ये प्रविष्टियां किसी विधिपूर्ण आदेश पर आधारित नहीं हैं ?

5. श्री जी. डी. वर्मा, ज्येष्ठ अधिवक्ता ने यह जोरदार तर्क दिया कि दोनों निचले न्यायालयों ने राजस्व अभिलेखों में अर्थात् प्रदर्श पी-1 से पी-9 तथा प्रदर्श डी ए से प्रदर्श डी ई का गलत निर्वचन किया है ।

6. श्री नीरज गुप्ता ने दोनों निचले न्यायालयों द्वारा पारित निर्णयों और डिक्रियों का समर्थन किया ।

7. मैंने, पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल को सुना तथा अभिलेखों का ध्यानपूर्वक परिशीलन किया ।

8. चूंकि दोनों सारवान् विधिक प्रश्न एक दूसरे से संबंधित और एक दूसरे से जुड़े हुए हैं, इसलिए, साक्ष्य के चर्चा की पुनरावृत्ति से बचने के लिए अवधारण हेतु उन पर एक साथ विचार किया जाएगा ।

9. वादी ने अभिलेख पर वर्ष 1930-31 के लिए जमाबंदी की प्रति प्रदर्श पी-1, वर्ष 1935-36 के लिए जमाबंदी की प्रति प्रदर्श पी-2, वर्ष

1945-46 के लिए जमाबंदी की प्रति प्रदर्श पी-3, वर्ष 1949-50 के लिए जमाबंदी की प्रति प्रदर्श पी-4, वर्ष 1957-58 के लिए जमाबंदी की प्रति प्रदर्श पी-5, वर्ष 1961-62 के लिए जमाबंदी की प्रति प्रदर्श पी-6, वर्ष 1965-66 के लिए जमाबंदी की प्रति प्रदर्श पी-7, वर्ष 1970-71 के लिए जमाबंदी की प्रति प्रदर्श पी-8 और वर्ष 1985-86 के लिए जमाबंदी की प्रति प्रदर्श पी-9 प्रस्तुत की है । वादी तारीख 2 अप्रैल, 1998 और तारीख 23 मार्च, 1999 को अभि. सा. 1 के रूप में उपस्थित हुआ । परमानन्द अभि. सा. 5 के रूप में उपस्थित हुआ ।

10. प्रतिवादियों ने साक्ष्य में पर्चा जमींदारी प्रदर्श डी ए, वर्ष 1990-91 के लिए जमाबंदी की प्रति प्रदर्श डी बी, तारीख 28 अगस्त, 1976 के नामांतरण की प्रति प्रदर्श डी सी । वर्ष 1997-98 के लिए खसरा गिरदावरी की प्रति प्रदर्श डी डी और वर्ष 1991 से 1996 की अवधि के लिए खसरा गिरदावरी की प्रति प्रदर्श पी ई को दिया ।

11. वादी, अभि. सा. 1 के रूप में उपस्थित हुआ । उसने अभि. सा. 2 कामना राम, अभि. सा. 3 लइक राम, अभि. सा. 4 हरि राम और उपर्युक्त उल्लिखित अभि. सा. 5 परमानन्द की भी परीक्षा की ।

12. अभि. सा. 2 कामना राम ने यह स्वीकार किया है कि संबंधित राजस्व एस्टेट में और उसके आस-पास उसकी स्वयं की कोई भूमि नहीं है । अभि. सा. 3 लइक राम ने भी यह स्वीकार किया है कि वह वाद भूमि के क्षेत्र और वर्गीकरण के बारे में कुछ नहीं जानता है न ही उसने खसरा सं. 127 की भूमि में वादी को जोतते हुए कभी भी देखा है । अभि. सा. 4 हरि राम की संबंधित राजस्व एस्टेट में स्वयं की कोई भूमि नहीं है अथवा किसी भूमि पर कब्जा है । अभि. सा. 5 परमानन्द ने अभिलेख प्रस्तुत किया है । वह यह कहने की प्रास्थिति में नहीं था कि वर्ष 1945-46 के लिए जमाबंदी में प्रविष्टियां किस प्रकार परिवर्तित की गईं ।

13. प्रतिवादी सं. 1, प्रतिवादी साक्षी 1 के रूप में उपस्थित हुआ और श्रीमती मोना भी प्रतिवादी साक्षी 2 के रूप में उपस्थित हुई ।

14. सभी जमाबंदियों प्रदर्श पी-1 से पी-9 में भरत सिंह, प्रतिवादियों का पिता, को वर्ष 1935-36 से वाद भूमि के अभिधारी के रूप में दर्शित किया गया है । वर्ष 1990-91 के लिए जमाबंदी के अनुसार, भरत सिंह, प्रतिवादियों का पिता, को वाद भूमि के स्वामी के रूप में दर्शित किया गया

है । टिप्पण कालम में इस प्रभाव की एक प्रविष्टि की गई है कि नामांतरण सं. 43 द्वारा प्रतिवादियों के पिता अर्थात् भरत सिंह के 'विल' के आधार पर प्रतिवादियों के पक्ष में नामांतरण किया गया है और नामांतरण सं. 48 द्वारा वाद भूमि भरत सिंह द्वारा निष्पादित त्यक्त विलेख के आधार पर भगवान सिंह के पक्ष में अनन्य रूप से नामांतरण किया गया है । वर्ष 1991 से 1998 के लिए खसरा गिरदावरी की प्रतियों प्रदर्श डी डी और प्रदर्श डी ई के अनुसार, वाद भूमि को भरत सिंह के कब्जे में दर्शित किया गया है और उसके बाद प्रतिवादी भगवान सिंह के कब्जे में दर्शित किया गया है । नवीनतम बंदोबस्त प्रवर्तन प्रदर्श डी ए के दौरान बंदोबस्त स्टाफ द्वारा तैयार जमींदारी पर्चा के अनुसार, प्रतिवादी भगवान सिंह को वाद भूमि में कब्जे सहित स्वामी दर्शित किया गया है । इस प्रकार, वादी द्वारा लिया गया यह अभिवाक् कि वाद भूमि पर उसके कब्जे को बदोबस्त कार्यवाहियों के अधीन पुष्टि की गई है, मिथ्या है ।

15. वादी के अनुसार, वह वर्ष 1930-1931 से वाद भूमि के कब्जे में आया था । उसने तारीख 2 अप्रैल, 1998 और 23 मार्च, 1999 को स्वयं की परीक्षा कराई । तारीख 2 अप्रैल, 1998 को अपने कथन में, उसने यह अभिसाक्ष्य दिया कि वाद भूमि को राजा साहब द्वारा उसके पिता को दिया गया था । तथापि, वह यह कथन नहीं कर सका कि किस वर्ष में भूमि, तत्कालीन शासकों द्वारा उसके पिता को दी गई थी । वादी का अभिवाचित पक्षकथन यह है कि वाद भूमि, तत्कालीन शासकों द्वारा उसे और उसके भाइयों को दी गई थी । वादी ने यह प्रकट नहीं किया कि किस वर्ष में वह अभिधारी के रूप में कब्जे में आ गया था । तारीख 2 अप्रैल, 1998 को उसने यह कथन किया कि उसकी आयु 77 वर्ष है और तारीख 23 मार्च, 1999 को उसने यह कथन किया कि उसकी आयु 75 वर्ष है । वादी द्वारा दिए गए आयु के अनुसार वर्ष 1930-31 में उसकी आयु मात्र 7 से 10 वर्ष की थी । इस प्रकार, उसके द्वारा उद्भूत यह अभिवाक् कि उसे तत्कालीन शासकों द्वारा वाद भूमि कब्जे में दी गई थी, को स्वीकार नहीं किया जा सकता है । इसी प्रकार, यह अभिवाक् कि उसने वर्ष 1930 में अपने भाइयों से वाद भूमि क्रय की थी, पर विश्वास नहीं किया जा सकता है । इस बात पर भी विश्वास नहीं किया जा सकता है कि 7 से 10 वर्ष की आयु का बालक भूमि क्रय करने के लिए सक्षम था ।

16. श्री जी. डी. वर्मा, विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता ने यह भी जोरदार

तर्क दिया कि पश्चात्वर्ती राजस्व प्रविष्टियां बिना किसी आदेश के परिवर्तित की गई हैं । वर्तमान मामले में भी वादी ने यह स्पष्टीकरण नहीं दिया है कि वर्ष 1930-31 में किस प्रकार अवांछित प्रविष्टि की गई थी । वादी वर्ष 1930-31 से चुप रहा और वर्तमान वाद भी तारीख 27 मई, 1997 को ही संस्थित किया गया । संबद्ध नवीनतम जमाबंदी की सत्यता की उपधारणा की जाती है यद्यपि, यह खंडनीय है । वादी ने जमाबंदियों में की गई इन प्रविष्टियों के खंडन में कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया है । खसरा गिरदावरी की प्रतियों में भी वाद भूमि का कब्जा भरत सिंह का दर्शित किया गया है और उसके पश्चात् प्रतिवादियों का कब्जा दर्शित किया गया है । प्रतिवादियों के पिता की सांपत्तिक अधिकारों की पुष्टि की गई है और उसके पश्चात् यह प्रतिवादियों के स्वामित्व और कब्जे में आ गई थी । वादी ने उन आदेशों को चुनौती नहीं दी है जिनके द्वारा प्रतिवादियों के पिता के सांपत्तिक अधिकारों की पुष्टि की गई थी । वादी ने प्रतिकूल कब्जे का अभिवाक् उद्भूत किया । तथापि, इसे साबित करने के लिए कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया सिवाय इसके कि वादी द्वारा उद्भूत अभिवाक् परस्पर खंडनीय थे । यदि वह स्वयं को अभिधारी होने का दावा करता है तो वह प्रतिकूल कब्जे के अभिवाक् को उद्भूत करने से निवारित है । यह सुस्थिर विधि है कि अभिधृति एक द्विपक्षीय कार्य है । वादी ने यह दर्शित करने के लिए अभिलेख पर कोई ठोस साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया है कि वह भू-स्वामी को कोई किराया संदत्त कर रहा था । दोनों निचले न्यायालयों द्वारा पारित निर्णय सकारण हैं और इनमें हस्तक्षेप करने की कोई आवश्यकता नहीं है ।

17. तद्नुसार, इसमें उपर्युक्त व्यक्त की गई मताभिव्यक्तियों और चर्चाओं को ध्यान में रखते हुए, इस नियमित द्वितीय अपील में कोई गुणागुण नहीं हैं और इसे खारिज किया जाता है । तथापि, खर्चे का कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

अपील खारिज की गई ।

क.

———

नेशनल इंश्योरेंस कम्पनी लि.

बनाम

श्री रवीन्द्र कुमार और अन्य

तारीख 16 अप्रैल, 2012

न्यायमूर्ति सुरिन्दर सिंह

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59) – धारा 170, 173 – अपील – यान दुर्घटना – अंशदायी उपेक्षा साबित नहीं होना – बिना अनुज्ञा के यान चलाया जाना – दायित्व – प्रतिकर – यदि यह साबित कर दिया जाता है कि दुर्घटना, यान को उतावलेपन और उपेक्षापूर्वक चलाए जाने के कारण घटित हुई है तो बीमा कम्पनी आहत व्यक्ति को कारित क्षति के लिए प्रतिकर संदाय करने के लिए दायी होगी किन्तु यदि यान बिना अनुज्ञा के चलाया जा रहा था तो बीमा कम्पनी संदत्त प्रतिकर रकम को यान के स्वामी से वसूल सकती है ।

वर्तमान मामले में, तारीख 28 जून, 2005 को लगभग अपराह्न 7.50 बजे प्रत्यर्थी सतीश कुमार और उसका भाई रविन्द्र कुमार गगल के पास सवारी का इन्तजार कर रहे थे, इसी बीच में प्रत्यर्थी मंजीत सिंह अपने ग्रामीण साथी के साथ मोटरसाइकिल पर आया और दोनों को ही अपने मोटरसाइकिल पर बैठा लिया । जब वे गगल और ईछी के बीच चौधरी सर्विस स्टेशन के पास पहुंचे तभी प्रत्यर्थी मंजीत सिंह द्वारा चलाया जा रहा एक ट्रक रजिस्ट्रेशन सं. पी बी-10-पी-9816 को उतावलेपन और उपेक्षापूर्वक चलाते हुए मोटरसाइकिल की ओर सड़क के कच्चे भाग के विपरीत दिशा से आया और मोटरसाइकिल को जोरदार धक्का दे दिया । मोटरसाइकिल भी कुछ दूरी तक घसीटता चला गया जिसके परिणामस्वरूप दावेदारों को गंभीर क्षतियां कारित हुईं और ट्रक चालक ट्रक को लेकर वहां से भाग गया । यान को "चेत्रू" के रूप में ज्ञात स्थान से पकड़ लिया गया । क्षतिग्रस्त/दावेदारों को धर्मशाला स्थित अस्पताल में भर्ती किया गया जहां से उन्हें डी. एम. सी., लुधियाना ले जाया गया । वहां उनका उपचार किया गया और अन्ततोगत्वा उन्होंने यह दावा याचिका फाइल की । स्वामी और चालक दोनों उपस्थित नहीं हुए, अतएव, एकपक्षीय कार्यवाही की गई । मात्र बीमा कम्पनी ने ही दावा याचिका का प्रतिरोध/विरोध किया । उन्होंने

मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 170 के अधीन एक आवेदन भी फाइल किया जिसे मंजूर कर लिया गया था । जांच करने के पश्चात्, विद्वान् अधिकरण ने यह अभिनिर्धारित किया कि दुर्घटना ट्रक चालक द्वारा ट्रक को उतावलेपन और उपेक्षापूर्वक चलाए जाने के कारण अंशदायी रूप से घटित हुई है और ट्रक, बीमा नीति के निबंधनों और शर्तों के उपबंधों के अतिलंघन में चलाया जा रहा था क्योंकि उसे भिन्न मार्ग पर चलाए जाने की अनुज्ञा दी गई थी । इसलिए, दावेदारों की दावा याचिका को मंजूर करते हुए बीमा कम्पनी को इस स्वतंत्रता के साथ प्रतिकर रकम जमा/संदत्त करने का आदेश दिया जाता है कि वे उसे अपराध करने वाले यान के स्वामी और चालक से वसूल कर सकते हैं । इससे व्यथित होकर वर्तमान अपील फाइल की गई । न्यायालय द्वारा अपीलें खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – जहां तक प्रथम मुद्दे का संबंध है, मोटरसाइकिल चलाने वाले ने मात्र एक व्यक्ति को बैठाया था, इसलिए, उसकी ओर से अंशदायी उपेक्षा की उपधारणा करने का प्रश्न ही नहीं उठता है । चूंकि अपीलार्थी ने यह अभिकथन नहीं किया है और साबित नहीं किया है कि मोटरसाइकिल चलाने वाले के अंशदायी कार्य के कारण दुर्घटना घटित हुई थी, इसलिए यथापूर्वोक्त नियमों के अतिलंघन करने के कारण अंशदायी उपेक्षा का निष्कर्ष भी नहीं निकाला जा सकता है । बीमा कम्पनी ने यह अभिकथित किया कि यान बिना अनुज्ञा के चलाया जा रहा था जो बीमा नीति का अतिलंघन है जिसे अविवादित रूप से साबित कर दिया गया है किन्तु उसने प्रतिकर रकम को जमा कर दिया जिसे वाद फाइल किए बिना उनके द्वारा वसूल किया जा सकता था । विद्वान् अधिकरण ने यह आदेश दिया कि प्रतिकर की रकम बीमा कम्पनी द्वारा संदत्त/जमा किया जाएगा इस स्वतंत्रता के साथ कि वह इसे इस न्यायालय के समक्ष आवेदन फाइल करते हुए, स्वामी और चालक से वसूल कर सकता है । उपर्युक्त मत को ध्यान में रखते हुए न्यायालय इस अधिनिर्णय में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं पाता है । (पैरा 7, 8, 9 और 10)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2008] 2008 ए. सी. जे. 393 (डी. बी.) :
देवी सिंह बनाम **विक्रम सिंह और अन्य** ; 7

[2004] 2004 ए. सी. जे. 2094 :
नेशनल इंश्योरेन्स कम्पनी लि. बनाम **छल्ला भरथम्मा और अन्य** ; 8

[1998] 1998 (2) शिमला एल. सी. 126 :
हरबंसी देवी और अन्य बनाम **राकेश कुमार** उर्फ **काला और अन्य** ; 7

[1980] ए. आई. आर. 1980 गुजरात 46 :
एस. एम. व्यास और एक अन्य बनाम **श्रीमती सुधावेन सुकेथू सुतारिया और एक अन्य** ; 7

[1980] ए. आई. आर. 1980 पंजाब-हरियाणा 183 :
आज्ञाकौर और अन्य बनाम **महाप्रबन्धक, पेप्सू सड़क परिवहन निगम, पटियाला और अन्य** । 7

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2010 की एफ. ए. ओ. (एम. वी. ए.) सं. 398 के साथ 399 और 411.

मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 173 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री दीपक भसीन, अधिवक्ता

प्रत्यर्थी सं. 1 की ओर से श्री आशीष वर्मा, अधिवक्ता

प्रत्यर्थी सं. 2 और 3 की ओर से –

न्यायमूर्ति सुरिन्दर सिंह – उपर्युक्त शीर्षक अपील बीमा कम्पनी ने एक ही दुर्घटना में विद्वान् मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण-II कांगड़ा, धर्मशाला द्वारा पारित तारीख 6 जून, 2010 के पृथक् अधिनिर्णयों से व्यथित होकर फाइल की है । चुनौती दो आधारों पर दी गई है (i) मोटरसाइकिल चलाने वाले द्वारा अंशदायी उपेक्षा की गई है क्योंकि वह अनुज्ञेय सीमा के परे दो पिछली सीट वाली मोटरसाइकिल चला रहा था और (ii) प्रश्नगत ट्रक हिमाचल प्रदेश राज्य में चलाया जा रहा था, जहां दुर्घटना घटित हुई थी जबकि इसे पंजाब राज्य में चलाने की अनुज्ञा दी गई थी ।

2. अभिलेखों का परिशीलन किया और पक्षकारों की सुनवाई की ।

3. संक्षेप में वर्तमान अपील में उद्भूत होने वाले तथ्य निम्नलिखित

कथित किए जा सकते हैं । तारीख 28 जून, 2005 को लगभग अपराह्न 7.50 बजे प्रत्यर्थी सतीश कुमार और उसका भाई रविन्द्र कुमार गगल के पास सवारी का इन्तजार कर रहे थे, इसी बीच में प्रत्यर्थी मंजीत सिंह अपने ग्रामीण साथी के साथ मोटरसाइकिल पर आया और दोनों को ही अपने मोटरसाइकिल पर बैठा लिया । जब वे गगल और ईछी के बीच चौधरी सर्विस स्टेशन के पास पहुंचे तभी प्रत्यर्थी मंजीत सिंह द्वारा चलाया जा रहा एक ट्रक रजिस्ट्रेशन सं. पी बी-10-पी-9816 को उतावलेपन और उपेक्षापूर्वक चलाते हुए मोटरसाइकिल की ओर सड़क के कच्चे भाग के विपरीत दिशा से आया और मोटरसाइकिल को जोरदार धक्का दे दिया । मोटरसाइकिल भी कुछ दूरी तक घसीटता चला गया जिसके परिणामस्वरूप दावेदारों को गंभीर क्षतियां कारित हुईं और ट्रक चालक ट्रक को लेकर वहां से भाग गया । यान को "चेत्रू" के रूप में ज्ञात स्थान से पकड़ लिया गया । क्षतिग्रस्त/दावेदारों को धर्मशाला स्थित अस्पताल में भर्ती किया गया जहां से उन्हें डी. एम. सी., लुधियाना ले जाया गया । वहां उनका उपचार किया गया और अन्ततोगत्वा उन्होंने यह दावा याचिका फाइल की ।

4. स्वामी और चालक दोनों उपस्थित नहीं हुए, अतएव, एकपक्षीय कार्यवाही की गई । मात्र बीमा कम्पनी ने ही दावा याचिका का प्रतिरोध/विरोध किया । उन्होंने मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 170 के अधीन एक आवेदन भी फाइल किया जिसे मंजूर कर लिया गया था ।

5. जांच करने के पश्चात्, विद्वान् अधिकरण ने यह अभिनिर्धारित किया कि दुर्घटना ट्रक चालक द्वारा ट्रक को उतावलेपन और उपेक्षापूर्वक चलाए जाने के कारण अंशदायी रूप से घटित हुई है और ट्रक, बीमा नीति के निबंधनों और शर्तों के उपबंधों के अतिलंघन में चलाया जा रहा था क्योंकि उसे भिन्न मार्ग पर चलाए जाने की अनुज्ञा दी गई थी । इसलिए, दावेदारों की दावा याचिका को मंजूर करते हुए बीमा कम्पनी को इस स्वतंत्रता के साथ प्रतिकर रकम जमा/संदत्त करने का आदेश दिया जाता है कि वे उसे अपराध करने वाले यान के स्वामी और चालक से वसूल कर सकते हैं ।

6. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल श्री दीपक भसीन ने यह जोरदार तर्क दिया कि अभिलेख पर साबित उपर्युक्त तथ्यों के कारण बीमा कम्पनी अपने दायित्व से मुक्त हो जानी चाहिए जबकि दावेदारों के विद्वान् काउंसेल ने आक्षेपित अधिनिर्णय का समर्थन किया ।

7. जहां तक प्रथम मुद्दे का संबंध है, मोटरसाइकिल चलाने वाले ने मात्र एक व्यक्ति को बैठाया था, इसलिए, उसकी ओर से अंशदायी उपेक्षा की उपधारणा करने का प्रश्न ही नहीं उठता है जैसा कि मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय द्वारा **देवी सिंह** बनाम **विक्रम सिंह और अन्य**[1] तथा **हरबंसी देवी और अन्य** बनाम **राकेश कुमार** उर्फ **काला और अन्य**[2] वाले मामलों में अभिनिर्धारित किया गया है, जब तक कि साक्ष्य से यह दर्शित नहीं होता है कि मोटरसाइकिल चलाने वाले के एक या अन्य कारणों से दुर्घटना गठित हुई । मात्र नियमों के उल्लंघन के कारण ही इसमें हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है कि ऐसा उल्लंघन अंशदायी उपेक्षा से परिगणित किया गया है (देखें **एस. एम. व्यास और एक अन्य** बनाम **श्रीमती सुधावेन सुकेथू सुतारिया और एक अन्य**[3] तथा **आज्ञाकौर और अन्य** बनाम **महाप्रबन्धक, पेप्सू सड़क परिवहन निगम, पटियाला और अन्य**[4]) जैसा कि इस न्यायालय के खंड न्यायपीठ के उपर्युक्त निर्दिष्ट निर्णयों का अवलंब लिया गया था । चूंकि अपीलार्थी ने यह अभिकथन नहीं किया है और साबित नहीं किया है कि मोटरसाइकिल चलाने वाले के अंशदायी कार्य के कारण दुर्घटना घटित हुई थी, इसलिए यथापूर्वोक्त नियमों के अतिलंघन करने के कारण अंशदायी उपेक्षा का निष्कर्ष भी नहीं निकाला जा सकता है । तद्नुसार, मुद्दा सं. 1 का विनिश्चय किया जाता है ।

8. जहां तक मुद्दा सं. (II) का संबंध है, बीमा कम्पनी ने यह अभिकथित किया कि यान बिना अनुज्ञा के चलाया जा रहा था जो बीमा नीति का अतिलंघन है जिसे अविवादित रूप से साबित कर दिया गया है किन्तु उसने प्रतिकर रकम को जमा कर दिया जिसे वाद फाइल किए बिना उनके द्वारा वसूल किया जा सकता था । इस बारे में, **नेशनल इश्योरेंस कम्पनी लि.** बनाम **छल्ला भरथम्मा और अन्य**[5] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय के प्रति निर्दिष्ट किया जा सकता है जिसमें निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया था :–

> "12. उच्च न्यायालय का यह मत था कि चूंकि कोई अनुज्ञा नहीं थी इसलिए उसके किन्हीं शर्तों के अतिलंघन का प्रश्न ही नहीं

---

[1] 2008 ए. सी. जे. 393 (डी. बी.).

[2] 1998 (2) शिमला एल. सी. 126.

[3] ए. आई. आर. 1980 गुजरात 46.

[4] ए. आई. आर. 1980 पंजाब-हरियाणा 183.

[5] 2004 ए. सी. जे. 2094.

उठता है । यह मत स्पष्टतः भ्रांतिपूर्ण है । एक व्यक्ति जो एक यान बिना अनुज्ञा के चलाता है तो उसे उस व्यक्ति के मुकाबले बेहतर स्थिति में नहीं रखा जा सकता है जो अनुज्ञा लेकर यान चलाता है किन्तु उसके किन्हीं शर्तों का अतिलंघन करता है । बिना अनुज्ञा के यान चलाना एक व्यतिक्रम है । इसलिए, धारा 149(2) के निबंधनों में उस संबंध में बीमाकर्ता को प्रतिरक्षा उपलब्ध है । इस आधार को स्वीकार करते हुए भी मामले का अधिनिर्णयन किया जाता है । प्रवर्तित बीमा नीति का प्रश्न बीमाकर्ता के दायित्व के बारे में कोई सुसंगतता नहीं है । इसलिए, उच्च न्यायालय बीमाकर्ता के दायित्व को अभिनिर्धारित करने में न्यायोचित नहीं था ।

13. अवशिष्ट प्रश्न यह है कि क्या समुचित निर्देश हो सकता है । अधिनियम के फायदाप्रद उद्देश्य पर विचार करते हुए, बीमाकर्ता को अधिनिर्णय से समाधान होना समुचित होता है यद्यपि विधि में उसका कोई दायित्व नहीं है । कुछ मामलों में, बीमाकर्ता को यह विकल्प और स्वतंत्रता दी गई है कि वह बीमाकृत से रकम वसूल कर सकता है । संदत्त रकम को स्वामी से वसूल करने के प्रयोजन के लिए बीमाकर्ता को वाद फाइल करने की आवश्यकता नहीं होगी । वह संबंधित निष्पादन न्यायालय के समक्ष कार्यवाहियां आरम्भ कर सकता है यदि यह बीमाकर्ता और स्वामी के बीच अधिकरण के समक्ष अवधारण की विषयवस्तु है और विवाद्यक को स्वामी के विरुद्ध तथा बीमाकर्ता के पक्ष में विनिश्चित किया गया है । दावेदारों को रकम अवमुक्त करने के पूर्व अपराध करने वाले यान के स्वामी को उस सम्पूर्ण रकम की प्रतिभूति देनी होगी जिसे बीमाकर्ता द्वारा दावेदारों को संदाय किया जाएगा । अपराध करने वाला यान कुर्की कर लिया जाएगा क्योंकि वह प्रतिभूति का एक भाग है । यदि निष्पादन न्यायालय यह आवश्यक समझता है तो वह संबंधित क्षेत्रीय यातायात प्राधिकारी की सहायता ले सकेगा । निष्पादन न्यायालय विधि के अनुसरण में समुचित आदेश पारित करेगा उस तरीके से जिसमें यान का स्वामी बीमाकर्ता को रकम संदाय करेगा । यदि कोई व्यतिक्रम किया जाता है तो निष्पादन न्यायालय के लिए यह खुला होगा कि वह दी गई प्रतिभूतियों के व्ययन द्वारा उद्ग्रहण करने का निर्देश दे सकेगा अथवा यान के स्वामी अर्थात् बीमाकर्ता के किसी संपत्ति या संपत्तियों से भी उद्ग्रहण करने का निर्देश दे सकेगा । वर्तमान मामले

में, अन्तर्ग्रस्त रकम की मात्रा पर विचार करते हुए हम इसे बीमाकर्ता के विवेक पर छोड़ते हैं कि वह यह विनिश्चय करे कि वह बीमाकृत से रकम वसूल करने के लिए क्या कदम उठाएगा ।'

(जोर देने के लिए रेखांकन किया गया है)

इस निर्णय का अनुसरण, इस न्यायालय द्वारा तारीख 12 जनवरी, 2012 को विनिश्चित 2007 की एफ. ए. ओ. सं. 13 में भी किया गया ।

9. विद्वान् अधिकरण ने यह आदेश दिया कि प्रतिकर की रकम बीमा कम्पनी द्वारा संदत्त/जमा किया जाएगा इस स्वतंत्रता के साथ कि वह इसे इस न्यायालय के समक्ष आवेदन फाइल करते हुए, स्वामी और चालक से वसूल कर सकता है ।

10. उपर्युक्त मत को ध्यान में रखते हुए, मैं अधिनिर्णय में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं पाता हूं, इस प्रकार, बीमा कम्पनी द्वारा फाइल अपीलें बिना गुणागुण के हैं, अतएव, इन्हें खारिज किया जाता है :–

2010 की एफ. ए. ओ. (एम. वी. ए.) सं. 398 में 2011 की सी. एम. पी. सं. 453.

2010 की एफ. ए. ओ. (एम. वी. ए.) सं. 399 में 2011 की सी. एम. पी. सं. 454.

2010 की एफ. ए. ओ. (एम. वी. ए.) सं. 411 में 2011 की सी. एम. पी. सं. 580.

11. अधिनिर्णीत रकम का 50 प्रतिशत के साथ समानुपातिक ब्याज जैसी कि प्रार्थना की गई है, दावेदारों को अवमुक्त किया जाता है और आवेदनों के पैरा 4 में उल्लिखित उनके व्यक्तिगत बचत बैंक खाता संख्या में वापस किया जाता है । सभी आवेदनों को निपटाया जाता है ।

अपीलें खारिज की गईं ।

क.

———

सरोज कुमारी (श्रीमती)

बनाम

राजेश कुमार

तारीख 27 अप्रैल, 2012

न्यायमूर्ति देव दर्शन सूद

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25) – धारा 28 और धारा 13(ik) तथा (ikख) – अपील – सामान्य अनुक्रम में पत्नी द्वारा पति को सहवास करने से मना करना तथा पति के कुटुम्ब सदस्यों को दांडिक मामलों में फंसाने की धमकी देते हुए जहर खा लेना – कलह और तनावपूर्ण पारिवारिक स्थिति में एक-दूसरे के साथ रहना असम्भव होना – ऐसी परिस्थितियों में विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित होना – यदि अभिलेख पर यह साबित कर दिया जाता है कि सामान्य अनुक्रम में पत्नी, पति को सहवास करने की अनुमति नहीं देती है और पति के कुटुम्ब के सदस्यों को दांडिक मामलों में फंसाने की धमकी देते हुए जहर खा लेती है तथा पारिवारिक वातावरण इतना कलह और तनावपूर्ण हो जाता है कि पति-पत्नी एक साथ नहीं रह सकते हैं तो इन परिस्थितियों में पारित विवाह-विच्छेद की डिक्री कायम रखे जाने योग्य तथा विधिमान्य होगी ।

वर्तमान मामले में, प्रत्यर्थी-पति ने हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13(ik) तथा (ikख) के अधीन एक अर्जी संस्थित की यह अभिवाक् करते हुए कि पक्षकारों के बीच ग्राम सहेली, जिला हमीरपुर में हिन्दू धर्म, प्रथा और रीत-रिवाजों के अनुसार 18 जून, 2002 को विवाह हुआ था । वे कुछ समय के लिए पति-पत्नी के रूप में एक साथ रहे । उनके इस विवाह से कोई बच्चा उत्पन्न नहीं हुआ । प्रत्यर्थी-पति ने यह अभिवाक् किया कि वे पति-पत्नी के रूप में काफी संक्षिप्त समय के लिए एक साथ रहे तब तक प्रत्येक चीज सही प्रतीत होती थी किन्तु उसके बाद यह अभिकथन किया कि उसने (पत्नी ने) यह शिकायत करना प्रारम्भ कर दिया कि उसके माता-पिता ने उसकी इच्छा के विरुद्ध बलपूर्वक विवाह किया है । तारीख 3 जून, 2003 को इसमें के प्रत्यर्थी-अपीलार्थी को यह प्रेरित किया कि वह अपने माता-पिता के घर जाना चाहती है । उसने मात्र कुछ दिनों के लिए वहां जाने के लिए कहा किन्तु वह ऐसा नहीं करना चाहती थी क्योंकि वह वहां लम्बी अवधि तक रुकना चाहती थी । उसके द्वारा इस बात से इनकार

करने पर उसने जहर खा लिया । उसे विभिन्न अस्पतालों में ले जाया गया जहां समय से उसका उपचार हुआ और उसका जीवन बच गया । उनके बीच विवादों के बारे में तारीख 7 जून, 2003 को समझौता हुआ । प्रत्यर्थी ने यह अभिवाक् किया कि इसके बावजूद वह वैवाहिक गृह में उसके साथ रहने से इनकार कर दिया और उसे यह धमकी दी कि वह पुनः जहर खा लेगी और उसके सम्पूर्ण कुटुम्ब को मिथ्या दांडिक मामलों में फंसा देगी । प्रत्यर्थी ने यह प्रत्याख्यान किया कि अंततः उसने तारीख 18 जून, 2003 को वैवाहिक गृह छोड़कर अपने पिता के साथ चली गई और प्रत्यर्थी द्वारा बेहतर प्रयास करने के बावजूद वह अभी तक वापस नहीं लौटी । पुनः मामले में तारीख 8 सितम्बर, 2003 को समझौता हुआ । इसके पश्चात्, वह उसके साथ लगभग डेढ़ महीना रही और उसके बाद बिना किसी युक्तियुक्त कारण के वैवाहिक गृह छोड़ दिया । तथाकथित समझौते से पति को यह मिथ्या आश्वासन मिला था कि वह सभी कुछ भूल जाए । अपीलार्थी द्वारा अर्जी का विरोध किया गया जिसने दूर रहने के लिए पर्याप्त कारणों का अभिवाक् किया और सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 35क के अधीन विशेष खर्चा अधिनिर्णीत करने का अभिवाक् किया । उसने यह अभिवाक् किया कि उसे किसी न किसी बहाने से इसमें के प्रत्यर्थी के पिता द्वारा वैवाहिक गृह में आने की अनुमति नहीं दी । उसने यह कथन किया कि उसके सास-श्वसुर उससे विद्वेष रखते हैं । उन्होंने दहेज की मांग की थी । वे खुले तौर पर यह दावा करते थे कि वे अपने पुत्र के लिए बेहतर विवाह कर सकते थे । जब वह प्रत्यर्थी की कम्पनी में तैनाती के लिए लुधियाना गई तो उसे पुनः उसके जेठ (इसमें के अर्जीदार-प्रत्यर्थी का बड़ा भाई) द्वारा उसका घर छोड़ने के लिए मजबूर किया गया था । विद्वान् निचले न्यायालय ने सात विवाद्यक सुस्थिर किए । प्रथम दो विवाद्यकों, जो इस तथ्य से संबंधित थे कि क्या इसमें के प्रत्यर्थी-अपीलार्थी के साथ उसके पति द्वारा क्रूरता का व्यवहार किया गया था और क्या वह अभित्यजन की दोषी थी, के सबूत का भार प्रत्यर्थी पर था और अन्य चार सुस्थिर विवाद्यकों अर्थात् वाद कायम रखने का प्रश्न, विबंधन, यह तथ्य कि पति स्वच्छ हाथों से न्यायालय में नहीं आया है क्योंकि उसने तात्विक तथ्यों को छिपाया था और क्या वह अनुकरणीय खर्चों की हकदार थी, के सबूत का भार अपीलार्थी पर था । प्रत्यर्थी ने स्वयं को सम्मिलित करते हुए कुल पांच साक्षियों की परीक्षा की । प्रथम विवाद्यक का उल्लेख करते हुए, विद्वान् न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि पक्षकारों के बीच विवाह तारीख 18 जून, 2002 को हुआ था, जैसा कि अभिवाक् किया गया है, वे लगभग एक वर्ष साथ रहे किन्तु उसका व्यवहार अत्यधिक सौहार्दपूर्ण नहीं

रहा और वह चालाक मानसिकता की थी । उसने यह कथन किया कि विवाह पूर्णता को प्राप्त नहीं हुआ था । जब कभी वह उसके पास जाता था वह उसे झिड़क देती थी । वह यह धमकी दिया करती थी कि वह जहर खा लेगी और दांडिक मामलों में उसके सम्पूर्ण कुटुम्ब को फंसा देगी । तारीख 3 जून, 2003 को जब उसने अपने माता-पिता के घर जाने के लिए अनुमति देने के लिए कहा और उसके माता-पिता ने उसे दो-तीन दिनों के लिए वहां जाने के लिए कहा तो उसने यह पसन्द नहीं किया और जहर खा लिया । वह उसे लेकर भोरंज अस्पताल दौड़ा जहां से उसे हमीरपुर स्थानांतरित कर दिया गया और उसके बाद बेहतर चिकित्सीय उपचार तथा प्रबन्धन के लिए उसे धर्मशाला अस्पताल भेज दिया गया । पक्षकारों के बीच एक समझौता प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए किया गया । इसके पश्चात् वह 6-7 दिनों के लिए वैवाहिक गृह में रुकी किन्तु उसके बाद तारीख 8 जून, 2003 को वह पुनः अपने माता-पिता के पास चली गई । पुनः प्रत्यर्थी उसे बुलाने के लिए उसके माता-पिता के पास गया । एक पंचायत बुलाई गई और उनके बीच पुनः एक समझौता प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/बी किया गया जिसमें यह उपबंधित किया गया कि अपीलार्थी भविष्य में जहर नहीं खाएगी । किन्तु इन सब के बावजूद वह अपने माता-पिता के साथ ही रुकी रही । उसने इस सुझाव से इनकार किया कि उनके बीच सौहार्दपूर्ण संबंध थे और खुशी-खुशी रह रहे थे । उसने यह स्वीकार किया कि उसके कुटुम्ब के सदस्य यह कहते थे कि अपीलार्थी अपने पति से बड़ी थी और इसलिए उनके बीच अच्छा मेल नहीं था किन्तु इसके बावजूद भी उसके साथ कोई दुर्व्यवहार नहीं किया गया था । उसने इस सुझाव से भी इनकार किया कि उसके कुटुम्ब के सदस्यों ने अपीलार्थी को जहर पिलाने की कोशिश की थी । समझौता प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए और समझौता प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/बी ऋजुतः और स्वतंत्रतापूर्वक किए गए थे और किसी भी पक्षकार को उन पर हस्ताक्षर करने के लिए दबाव नहीं डाला गया था । उसने यह स्वीकार किया कि उसकी पत्नी ने आई. टी. आई., अवादेवी से पढ़ाई पूरी की थी । विद्वान् न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि प्रत्यर्थी-पति का यह निवेदन कि उसकी पत्नी अपने साथ सहवास करने नहीं देती थी जो प्रत्यर्थी-पति के कथन से सिद्ध होता है और यह तथ्य कि इसमें के अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी के साथ सामान्य लैंगिक संभोग के बारे में साक्ष्य में कुछ भी कथन नहीं किया है जो स्वयमेव इस तथ्य को साबित करता है । उसके बाद विद्वान् न्यायालय ने इस तथ्य को विचार में लिया कि पत्नी ने जहर खा लिया था और सम्पूर्ण कुटुम्ब को दांडिक मामलों में फंसाने की धमकी दी थी । अभिलेख पर के साक्ष्यों से यह सिद्ध होता है

कि तारीख 3 जून, 2003 को जब अपीलार्थी ने इस बात पर जोर दिया कि उसे अपने माता-पिता के घर जाने दिया जाए और जब उसे मात्र कुछ दिनों के लिए ही अनुमति मिली तो उसने कड़ा कदम उठाते हुए जहर खा लिया । इसके पश्चात्, अपीलार्थी को भोरंज अस्पताल, जोनल अस्पताल, हमीरपुर ले जाया गया और उसके बाद उसे डा. राजेन्द्र प्रसाद मेडिकल कालेज और अस्पताल, कांगड़ा में स्थानांतरित कर दिया गया । इसके पश्चात्, जहर खाने के तथ्य को ध्यान में रखते हुए पक्षकारों के बीच दो समझौते तारीख 7 जून, 2003 को प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए और तारीख 8 सितम्बर, 2003 को प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/बी किए गए जिसमें अपीलार्थी द्वारा भविष्य में ऐसी घटना नहीं दोहराए जाने का वचन दिया गया । विद्वान् न्यायालय ने सम्पूर्ण साक्ष्यों पर विचार करते हुए यह निष्कर्ष निकाला कि पक्षकार सामान्य जीवन नहीं जी रहे थे । विद्वान् न्यायालय ने प्रत्यर्थी के साथ नहीं रहने के लिए अपीलार्थी के पास कोई युक्तियुक्त न्यायोचित कारण नहीं पाया । सआशय अभित्यजन पाया गया और यह सिद्ध हो गया था । इसके अतिरिक्त, अपीलार्थी को सामान्य लैंगिक संभोग से अनिच्छा जाहिर करने के बारे में भी साबित साक्ष्य पाया गया । अर्जी मंजूर कर ली गई और पक्षकारों के बीच विवाह विघटित करने का निर्देश देते हुए विवाह-विच्छेद की डिक्री मंजूर कर ली गई थी । इस निर्णय और डिक्री से व्यथित होकर वर्तमान अपील फाइल की गई । न्यायालय द्वारा अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – क्रूरता की माफी के मुद्दे पर, मुझे यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि अपीलार्थी के आचरण का निरन्तर पैटर्न उसी प्रकार है जैसा कि विद्वान् निचले न्यायालय द्वारा पाया गया था, वह हमेशा ही जहर खाने तथा सम्पूर्ण कुटुम्ब को दांडिक मामलों में फंसाने की धमकी देती रहती थी । इस संभाव्यता में, यह नहीं कहा जा सकता कि जब एक बार पक्षकारों के बीच समझौता हो गया तो माफी का निष्कर्ष निकाला जा सकता है । इसका कारण यह है कि दोनों समझौते प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए और प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/बी काफी संक्षिप्त अवधि में अर्थात् तीन माह के भीतर ही किए गए थे जिससे समझौते के पक्षकारों के विवेक की स्थिति उपदर्शित होती है । दूसरे शब्दों में, यह लिखित में मात्र एक कागज के टुकड़े से अधिक कुछ नहीं था, क्योंकि पक्षकार पति/पत्नी के रूप में रहने के लिए गंभीर नहीं थी । प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए द्वारा प्रत्यर्थी के पिता ने यह लिखा है कि वे (अपीलार्थी और प्रत्यर्थी) सौहार्दपूर्ण तरीके से रहेंगे और प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/बी में यह अभिलिखित है कि पक्षकार प्रसन्नतापूर्वक रहेंगे । किन्तु अभिलेख पर के साक्ष्यों से अन्यथा ही उपदर्शित होता है । समझौता होने के तत्काल पश्चात् कुछ ही दिनों के भीतर "सामान्य" होने

के लिए यह आवश्यक है कि वातावरण कलह और तनावपूर्ण नहीं हो । वैवाहिक गृह में स्वस्थ वैवाहिक जीवन बीताने के लिए अनुकूल या प्रेरक वातावरण मुश्किल से ही मिलता है, किन्तु, वैवाहिक गृह का वातावरण अपीलार्थी के कृत्यों के कारण दूषित हो गया था । अभिलेखों से न्यायालय का यह भी निष्कर्ष है कि प्रत्यर्थी साक्षी 2 बिमला देवी, अपीलार्थी की माता ने स्वयमेव ही इन तथ्यों के बारे में कथन किया है कि इसमें के अपीलार्थी के साथ दुर्व्यवहार करने के बारे में कोई शिकायत नहीं मिली थी । न्यायालय का यह भी निष्कर्ष है कि अपीलार्थी ने यह तर्क दिया है कि प्रत्यर्थी के साथ उसे विवाह करने के लिए उस पर दबाव डाला गया था जैसा कि उसके द्वारा स्वीकार किया गया है । सम्पूर्ण परिस्थितियां अपीलार्थी को प्रत्यर्थी का साथ छोड़ने के लिए कोई भी युक्तियुक्त कारण उपलब्ध नहीं कराती है । अभित्यजन अपीलार्थी के आचरण में है क्योंकि अलग रहने के लिए अभिलेख पर कोई भी न्यायोचित कारण दर्शित नहीं किया गया है । न्यायालय अपीलार्थी के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल की इस दलील को स्वीकार करने में असमर्थ है कि प्रत्यर्थी ने समझौता करके क्रूरता के सभी कार्यों को माफ कर दिया है । प्रथम समझौता इस याचिका के पक्षकारों के माता-पिता के बीच हुआ था । द्वितीय समझौता स्वयं पक्षकारों के बीच में हुआ था । इस तथ्य का उल्लेख करना अपेक्षित है कि समझौते मात्र अस्थायी राहत देने के बहाने मात्र प्रतीत होते हैं और एक-दूसरे की गलतियों को स्वीकार नहीं किया तथा माफी देने की सही भावना से एक-दूसरे को माफ नहीं किया ताकि वे बेहतर भविष्य के लिए आगे बढ़ सकें और खुशहाल वैवाहिक जीवन जी सकें । यह नहीं कहा जा सकता है कि अपीलार्थी, जो निरन्तर प्रत्यर्थी को और उसके सम्पूर्ण कुटुम्ब को पुलिस मामले में फंसाने की धमकी दे रही थी और उसके साथ भी नहीं रह रही थी, वह क्रूरता का कार्य गठित नहीं करती थी । इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इन परिस्थितियों में इस बारे में कोई संदेह नहीं हो सकता है कि प्रत्यर्थी अपीलार्थी के साथ पति और पत्नी के रूप में सामान्य लैंगिक जीवन नहीं जी रही थी । इस कारण से कोई अन्य निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है कि वह उससे दूर रह रही थी । अपीलार्थी अन्यायोचित तरीके से पति से दूर रह रही थी । इसे अभिलेख पर साक्ष्य द्वारा सिद्ध कर दिया गया है जो स्पष्टतः सआशय अभित्यजन से साबित होता है । इस निवेदन का उल्लेख करते हुए कि अभिवचनों में विभिन्न साक्ष्य हैं, इन सभी के आधार पर न्यायालय यह कह सकता है कि पक्षकारों के साक्ष्य और अभिवचनों का परिशीलन करने के पश्चात् न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि दोनों पक्षकारों को साक्ष्य प्रस्तुत करना मंजूर किया गया था और सभी

तथ्यों पर जैसा उनके द्वारा कथित किया गया, बिना किसी आक्षेप के प्रतिपरीक्षा करना भी मंजूर किया गया था । यद्यपि अभिवचनों में तथ्य अतिसावधानीपूर्वक कथित नहीं किए गए हैं फिर भी अपीलार्थी के व्यवहार के बारे में उपदर्शित आधारों और साक्ष्य से ऐसा कोई तरीका प्रकट नहीं होता है कि यह अभिवचनों का समर्थन नहीं करता है । इसलिए, यह निवेदन नामंजूर किए जाने योग्य है । अधिनियम की धारा 13(ik) तथा (ikh) में यथाअनुध्यात मानसिक क्रूरता इस मामले के अभिलेख पर साबित होती है । अपीलार्थी का प्रत्यर्थी के साथ लम्बे समय तक अन्यायोचित तरीके से दूर रहने पर विचार करते हुए दोनों के बीच सामान्यतः पति और पत्नी के रूप में सहवास करने के बारे में प्रश्न ही नहीं उठता है । इन परिस्थितियों में मानसिक क्रूरता सिद्ध होती है । (पैरा 15, 28 और 29)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2011] (2011) 12 एस. सी. सी. 1 :
पंकज महाजन बनाम **डिम्पल** उर्फ **काजल** ; 27, 28

[2010] (2010) 4 एस. सी. सी. 476 :
रवि कुमार बनाम **जुल्मी देवी** ; 27

[2009] (2009) 1 एस. सी. सी. 422 :
सुमन कपूर बनाम **सुधीर कपूर** ; 26

[2008] [2008] 3 उम. नि. प. 10 = (2007) 4 एस. सी. सी. 511 :
समर घोष बनाम **जया घोष** ; 26

[2008] ए. आई. आर. 2008 पंजाब-हरियाणा 95 :
रमन कुमार बनाम **श्रीमती बाछो थान्डी** । 29

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2010 की एफ. ए. ओ. सं. 423.

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 28 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री जी. डी. वर्मा, ज्येष्ठ अधिवक्ता के साथ बी. सी. वर्मा, अधिवक्ता

प्रत्यर्थी की ओर से श्री अश्वनी कुमार शर्मा, अधिवक्ता

न्यायमूर्ति देव दर्शन सूद – यह अपील पत्नी द्वारा विद्वान् विचारण

न्यायालय द्वारा पारित उस निर्णय और डिक्री के विरुद्ध संस्थित की गई है जिसके द्वारा उन्होंने इस याचिका के पक्षकारों के बीच विवाह विघटित करते हुए विवाह-विच्छेद की डिक्री मंजूर कर ली थी ।

2. न्यायनिर्णयन के लिए आवश्यक तथ्य विचारणीय हैं । प्रत्यर्थी-पति ने हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "अधिनियम" कहा गया है) की धारा 13(ik) तथा (ikख) के अधीन एक अर्जी संस्थित की यह अभिवाक् करते हुए कि पक्षकारों के बीच ग्राम सहेली, जिला हमीरपुर में हिन्दू धर्म, प्रथा और रीत-रिवाजों के अनुसार 18 जून, 2002 को विवाह हुआ था । वे कुछ समय के लिए पति-पत्नी के रूप में एक साथ रहे । उनके इस विवाह से कोई बच्चा उत्पन्न नहीं हुआ । प्रत्यर्थी-पति ने यह अभिवाक् किया कि वे पति-पत्नी के रूप में काफी संक्षिप्त समय के लिए एक साथ रहे तब तक प्रत्येक चीज सही प्रतीत होती थी किन्तु उसके बाद यह अभिकथन किया कि उसने (पत्नी ने) यह शिकायत करना प्रारम्भ कर दिया कि उसके माता-पिता ने उसकी इच्छा के विरुद्ध बलपूर्वक विवाह किया है । तारीख 3 जून, 2003 को इसमें के प्रत्यर्थी-अपीलार्थी को यह प्रेरित किया कि वह अपने माता-पिता के घर जाना चाहती है । उसने मात्र कुछ दिनों के लिए वहां जाने के लिए कहा किन्तु वह ऐसा नहीं करना चाहती थी क्योंकि वह वहां लम्बी अवधि तक रुकना चाहती थी । उसके द्वारा इस बात से इनकार करने पर उसने जहर खा लिया । उसे विभिन्न अस्पतालों में ले जाया गया जहां समय से उसका उपचार हुआ और उसका जीवन बच गया । उनके बीच विवादों के बारे में तारीख 7 जून, 2003 को समझौता हुआ । प्रत्यर्थी ने यह अभिवाक् किया कि इसके बावजूद वह वैवाहिक गृह में उसके साथ रहने से इनकार कर दिया और उसे यह धमकी दी कि वह पुनः जहर खा लेगी और उसके सम्पूर्ण कुटुम्ब को मिथ्या दांडिक मामलों में फंसा देगी । प्रत्यर्थी ने यह प्रत्याख्यान किया कि अंततः उसने तारीख 18 जून, 2003 को वैवाहिक गृह छोड़कर अपने पिता के साथ चली गई और प्रत्यर्थी द्वारा बेहतर प्रयास करने के बावजूद वह अभी तक वापस नहीं लौटी । पुनः मामले में तारीख 8 सितम्बर, 2003 को समझौता हुआ । इसके पश्चात्, वह उसके साथ लगभग डेढ़ महीना रही और उसके बाद बिना किसी युक्तियुक्त कारण के वैवाहिक गृह छोड़ दिया । तथाकथित समझौते से पति को यह मिथ्या आश्वासन मिला था कि वह सभी कुछ भूल जाए ।

3. अपीलार्थी द्वारा अर्जी का विरोध किया गया जिसने दूर रहने के

लिए पर्याप्त कारणों का अभिवाक् किया और सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 35क के अधीन विशेष खर्चा अधिनिर्णीत करने का अभिवाक् किया । उसने यह अभिवाक् किया कि उसे किसी न किसी बहाने से इसमें के प्रत्यर्थी के पिता द्वारा वैवाहिक गृह में आने की अनुमति नहीं दी । उसने यह कथन किया कि उसके सास-श्वसुर उससे विद्वेष रखते हैं । उन्होंने दहेज की मांग की थी । वे खुले तौर पर यह दावा करते थे कि वे अपने पुत्र के लिए बेहतर विवाह कर सकते थे । जब वह प्रत्यर्थी की कम्पनी में तैनाती के लिए लुधियाना गई तो उसे पुनः उसके जेठ (इसमें के अर्जीदार-प्रत्यर्थी का बड़ा भाई) द्वारा उसका घर छोड़ने के लिए मजबूर किया गया था ।

4. विद्वान् निचले न्यायालय ने सात विवाद्यक सुस्थिर किए । प्रथम दो विवाद्यकों, जो इस तथ्य से संबंधित थे कि क्या इसमें के प्रत्यर्थी-अपीलार्थी के साथ उसके पति द्वारा क्रूरता का व्यवहार किया गया था और क्या वह अभित्यजन की दोषी थी, के सबूत का भार प्रत्यर्थी पर था और अन्य चार सुस्थिर विवाद्यकों अर्थात् वाद कायम रखने का प्रश्न, विबंधन, यह तथ्य कि पति स्वच्छ हाथों से न्यायालय में नहीं आया है क्योंकि उसने तात्विक तथ्यों को छिपाया था और क्या वह अनुकरणीय खर्चों की हकदार थी, के सबूत का भार अपीलार्थी पर था । प्रत्यर्थी ने स्वयं को सम्मिलित करते हुए कुल पांच साक्षियों की परीक्षा की ।

5. प्रथम विवाद्यक का उल्लेख करते हुए, विद्वान् न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि पक्षकारों के बीच विवाह तारीख 18 जून, 2002 को हुआ था, जैसा कि अभिवाक् किया गया है, वे लगभग एक वर्ष साथ रहे किन्तु उसका व्यवहार अत्यधिक सौहार्दपूर्ण नहीं रहा और वह चालाक मानसिकता की थी । उसने यह कथन किया कि विवाह पूर्णता को प्राप्त नहीं हुआ था । जब कभी वह उसके पास जाता था वह उसे झिड़क देती थी । वह यह धमकी दिया करती थी कि वह जहर खा लेगी और दांडिक मामलों में उसके सम्पूर्ण कुटुम्ब को फंसा देगी । तारीख 3 जून, 2003 को जब उसने अपने माता-पिता के घर जाने के लिए अनुमति देने के लिए कहा और उसके माता-पिता ने उसे दो-तीन दिनों के लिए वहां जाने के लिए कहा तो उसने यह पसन्द नहीं किया और जहर खा लिया । वह उसे लेकर भोरंज अस्पताल दौड़ा जहां से उसे हमीरपुर स्थानांतरित कर दिया गया और उसके बाद बेहतर चिकित्सीय उपचार तथा प्रबन्धन के लिए उसे धर्मशाला अस्पताल भेज दिया गया । पक्षकारों के बीच एक समझौता प्रदर्श

पी. डब्ल्यू. 1/ए किया गया । इसके पश्चात् वह 6-7 दिनों के लिए वैवाहिक गृह में रुकी किन्तु उसके बाद तारीख 8 जून, 2003 को वह पुनः अपने माता-पिता के पास चली गई । पुनः प्रत्यर्थी उसे बुलाने के लिए उसके माता-पिता के पास गया । एक पंचायत बुलाई गई और उनके बीच पुनः एक समझौता प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/बी किया गया जिसमें यह उपबंधित किया गया कि अपीलार्थी भविष्य में जहर नहीं खाएगी । किन्तु इन सब के बावजूद वह अपने माता-पिता के साथ ही रुकी रही । उसने इस सुझाव से इनकार किया कि उनके बीच सौहार्दपूर्ण संबंध थे और खुशी-खुशी रह रहे थे । उसने यह स्वीकार किया कि उसके कुटुम्ब के सदस्य यह कहते थे कि अपीलार्थी अपने पति से बड़ी थी और इसलिए उनके बीच अच्छा मेल नहीं था किन्तु इसके बावजूद भी उसके साथ कोई दुर्व्यवहार नहीं किया गया था । उसने इस सुझाव से भी इनकार किया कि उसके कुटुम्ब के सदस्यों ने अपीलार्थी को जहर पिलाने की कोशिश की थी । समझौता प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए और समझौता प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/बी ऋजुतः और स्वतंत्रतापूर्वक किए गए थे और किसी भी पक्षकार को उन पर हस्ताक्षर करने के लिए दबाव नहीं डाला गया था । उसने यह स्वीकार किया कि उसकी पत्नी ने आई. टी. आई., अवादेवी से पढ़ाई पूरी की थी ।

6. अभि. सा. 2 जगत राम, प्रत्यर्थी के पिता ने यह कथन किया कि अपीलार्थी विवाह के पश्चात् उनके घर में लगभग एक वर्ष रही थी जिसके दौरान वह अपने माता-पिता के घर भी गई थी । उन्होंने इस बात की संपुष्टि की कि तारीख 3 जून, 2003 को जब वह अपने माता-पिता के घर जाना चाहती थी तो उन्होंने उसे अगली सुबह अथवा एक दिन के पश्चात् वहां जाने के लिए कहा किन्तु उसे यह बात पसन्द नहीं आई और उसने जहर खा लिया । तारीख 18 जून, 2003 को उसने किसी को सूचित किए बिना अपने पिता के साथ वैवाहिक गृह से चली गई । एक पंचायत बुलाई गई थी और तारीख 8 सितम्बर, 2003 को एक समझौता प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/डी किया गया था ।

7. अभि. सा. 3 माधो राम, जो वर्ष 1992 से 2005 तक ग्राम पंचायत, महल के अध्यक्ष के रूप में रहा था, ने यह कथन किया कि पक्षकार इस पंचायत में रहते हैं । उन्होंने प्रत्यर्थी द्वारा किसी दुर्व्यवहार/प्रताड़ना के बारे में कोई लिखित शिकायत प्राप्त नहीं की है । उन्होंने यह स्वीकार किया कि इसमें के अर्जीदार-प्रत्यर्थी ने उसे बताया था कि उसकी पत्नी उसके साथ नहीं रह रही है । उन्होंने यह कथन किया

कि अगस्त, 2003 में इसमें के अर्जीदार-प्रत्यर्थी ने इन तथ्यों का कथन करते हुए पंचायत के समक्ष एक आवेदन फाइल किया था । तारीख 8 सितम्बर, 2003 को मामले में पक्षकारों के बीच समझौता हुआ और उनके बीच प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/बी समझौता किया गया जिस पर उसके द्वारा भी हस्ताक्षर किए गए थे और पंचायत की मुहर भी लगाई गई थी ।

8. अभि. सा. 4 हरि राम ने तथ्य के इस मुद्दे पर पति की संपुष्टि की कि पक्षकार कुछ समय के लिए एक साथ रहे जिसमें यह तथ्य भी सम्मिलित किया कि उसकी पत्नी यह धमकी दिया करती थी कि वह जहर खा लेगी । वह विवाह आदि में रुचि नहीं रखती थी । उसने किए गए समझौते आदि के मुद्दे पर साक्षियों की संपुष्टि की ।

9. अभि. सा. 5 सुरती राम ने यह कथन किया कि पक्षकारों के बीच विवाह वर्ष 2002 में हुआ था और यह कि अपीलार्थी किसी भी व्यक्ति को सूचित किए बिना वैवाहिक गृह छोड़कर चली गई थी । उसने यह कथन किया कि अपीलार्थी ने यह शिकायत की थी कि उसका विवाह बलपूर्वक उसके माता-पिता द्वारा कराया गया था । उस समय उसने धमकी दी थी और पुनः उसने यह धमकी दी कि वह जहर खा लेगी और अर्जीदार-प्रत्यर्थी के सम्पूर्ण कुटुम्ब को दांडिक मामलों में फंसा देगी ।

10. प्रत्यर्थी-साक्षी 1 सरोज कुमारी ने विवाह के तथ्य को स्वीकार किया किन्तु उसके विरुद्ध किए गए अभिकथनों से इनकार किया । उसने यह कथन किया कि तारीख 3 जून, 2003 को उसके सास-ससुर और प्रत्यर्थी के बड़े भाई और उसकी पत्नी द्वारा उसे जहर दिया गया था । इसके पश्चात् तारीख 7 जून, 2003 को पक्षकारों के बीच एक समझौता हुआ था जहां उसे सात दिनों के लिए रुकने की अनुमति दी गई थी किन्तु तीसरे दिन ही उसके ससुर ने उसके पिता को यह टेलीफोन किया कि उसे तब तक वापस नहीं भेजना चाहिए जब तक कि वे ऐसा करने के लिए उसे सूचित न करे । अप्रैल, 2005 से अप्रैल, 2006 तक वह पर्यटन और यात्रा प्रशिक्षण ले रही थी जिसके दौरान वह अपने वैवाहिक गृह गई थी किन्तु सास-ससुर ने उसे वापस भेज दिया था । उसे भोजन आदि दिए बिना घर से बाहर कर दिया जाता था । उसके अनुसार, प्रत्यर्थी लुधियाना में रह रहा था जहां वह नवम्बर, 2006 में गई थी और 4-5 दिन रही थी ।

11. प्रत्यर्थी-साक्षी 2 बिमला देवी, अपीलार्थी की माता ने यह कथन किया कि विवाह के एक वर्ष की अवधि के पश्चात् उसकी पुत्री को इसमें के प्रत्यर्थी के माता-पिता, उसके जेठ और जेठानी (प्रत्यर्थी का बड़ा भाई

और उसकी पत्नी) द्वारा वैवाहिक गृह में रहने नहीं दिया गया था । उसने यह कथन किया कि जब वह अपनी पुत्री के ससुर से बात की तो उन्होंने यह कथन किया कि वह उसके कार्य से अति संतुष्ट हैं । उसने यह कथन किया कि उसकी पुत्री के सास-ससुर ने उससे (साक्षी) से अपनी पुत्री को ले जाने के लिए कहा था । प्रति-परीक्षा में, उसने यह स्वीकार किया कि अपीलार्थी को उसके पति-प्रत्यर्थी द्वारा कभी भी प्रताड़ित नहीं किया गया था न ही उसने कभी भी अपने सास-ससुर द्वारा कोई दुर्व्यवहार किए जाने के बारे में उसे सूचित किया था । उसने इस तथ्य के बारे में अपनी अनभिज्ञता जाहिर की कि अपीलार्थी ने जहर क्यों खाया । पंचायत के समक्ष एक समझौता प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/बी हुआ था और उस पर उसके (इस साक्षी) द्वारा हस्ताक्षर किए गए थे । समझौते के पश्चात्, पक्षकार लगभग डेढ़ माह एक साथ रहे । उसने यह स्वीकार किया कि उसकी पुत्री ने विवाह के पूर्व कभी भी अर्जीदार को नहीं देखा था और यह कि उसने विवाह करने से इनकार किया था । उसके बाद उसने यह कथन किया कि अपीलार्थी विवाह करना नहीं चाहती थी किन्तु बलदेव और प्रत्यर्थी के ससुर के हस्तक्षेप से यह विवाह हुआ जिन्होंने इस विवाह के लिए दबाव डाला था । प्रत्यर्थी-साक्षी 3 प्रेम चन्द और प्रत्यर्थी-साक्षी 5 हंसराज ने भी अपीलार्थी के बयान का समर्थन किया है ।

12. विद्वान् जिला न्यायाधीश के समक्ष यही साक्ष्य था जिस पर पक्षकारों के सम्पूर्ण मामले पर विचार किया गया । प्रथम विवाद्यक का उल्लेख करते हुए, विद्वान् न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि प्रत्यर्थी-पति का यह निवेदन कि उसकी पत्नी अपने साथ सहवास करने नहीं देती थी जो प्रत्यर्थी-पति के कथन से सिद्ध होता है और यह तथ्य कि इसमें के अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी के साथ सामान्य लैंगिक संभोग के बारे में साक्ष्य में कुछ भी कथन नहीं किया है जो स्वयमेव इस तथ्य को साबित करता है । उसके बाद विद्वान् न्यायालय ने इस तथ्य को विचार में लिया कि पत्नी ने जहर खा लिया था और सम्पूर्ण कुटुम्ब को दांडिक मामलों में फंसाने की धमकी दी थी । अभिलेख पर के साक्ष्यों से यह सिद्ध होता है कि तारीख 3 जून, 2003 को जब अपीलार्थी ने इस बात पर जोर दिया कि उसे अपने माता-पिता के घर जाने दिया जाए और जब उसे मात्र कुछ दिनों के लिए ही अनुमति मिली तो उसने कड़ा कदम उठाते हुए जहर खा लिया । इसके पश्चात्, अपीलार्थी को भोरंज अस्पताल, जोनल अस्पताल, हमीरपुर ले जाया गया और उसके बाद उसे डा. राजेन्द्र प्रसाद मेडिकल कालेज और अस्पताल, कांगड़ा में स्थानांतरित कर दिया गया । इसके पश्चात्, जहर

खाने के तथ्य को ध्यान में रखते हुए पक्षकारों के बीच दो समझौते तारीख 7 जून, 2003 को प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए और तारीख 8 सितम्बर, 2003 को प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/बी किए गए जिसमें अपीलार्थी द्वारा भविष्य में ऐसी घटना नहीं दोहराए जाने का वचन दिया गया । विद्वान् न्यायालय ने सम्पूर्ण साक्ष्यों पर विचार करते हुए यह निष्कर्ष निकाला कि पक्षकार सामान्य जीवन नहीं जी रहे थे । विद्वान् न्यायालय ने प्रत्यर्थी के साथ नहीं रहने के लिए अपीलार्थी के पास कोई युक्तियुक्त न्यायोचित कारण नहीं पाया । सआशय अभित्यजन पाया गया और यह सिद्ध हो गया था । इसके अतिरिक्त, अपीलार्थी को सामान्य लैंगिक संभोग से अनिच्छा जाहिर करने के बारे में भी साबित साक्ष्य पाया गया । अर्जी मंजूर कर ली गई और पक्षकारों के बीच विवाह विघटित करने का निर्देश देते हुए विवाह-विच्छेद की डिक्री मंजूर कर ली गई थी ।

13. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह तर्क दिया कि विद्वान् निचले न्यायालय ने यथाप्रार्थित डिक्री मंजूर करने में त्रुटि की है । उन्होंने यह निवेदन किया कि (क) साक्ष्य जो अर्जीदार द्वारा प्रस्तुत किया गया था वह अभिवचनों से परे था और इस पर विचार नहीं किया जा सकता था, (ख) दो समझौते प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए और प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/बी स्वयमेव ही क्रूरता के कार्य को माफ करते हैं यदि इसके पश्चात् पति-पत्नी के रूप में पक्षकारों के बीच सहवास हुआ है, (ग) मामले की कोई प्रभावी सुनवाई नहीं की गई है ।

14. अंतिम मुद्दे का उल्लेख करते हुए प्रथमतः विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने मेरा ध्यान न्यायालय के आदेश पत्र की ओर दिलाया है । मेरा निष्कर्ष यह है कि मामले की आगे कार्यवाही/सुनवाई तारीख 18 अक्तूबर, 2010 से करने के लिए तारीख 14 सितम्बर, 2010 को नियत की गई थी किन्तु मामले को तारीख 15 सितम्बर, 2010 को लिया गया था और इसके पश्चात् तारीख 27 सितम्बर, 2010 को । जब तारीख 15 सितम्बर, 2010 को मामले की सुनवाई के लिए लिया गया तो यह टिप्पण किया गया कि यह लक्षित और पुराना मामला है जिसे उच्च न्यायालय के निदेशों के अनुसार वरीयता के आधार पर निपटाया जाना अपेक्षित है । दोनों पक्षकारों के काउंसेल किस दिन उपस्थित होंगे इसे चिन्हित किया गया और मामले को तारीख 27 सितम्बर, 2010 के लिए स्थगित कर दिया गया जिस तारीख को तर्कों की सुनवाई की गई निर्णय उद्घोषित किया गया । इसलिए, यह निवेदन नामंजूर किया जाना अपेक्षित है ।

15. क्रूरता की माफी के मुद्दे पर, मुझे यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि अपीलार्थी के आचरण का निरन्तर पैटर्न उसी प्रकार है जैसा कि विद्वान् निचले न्यायालय द्वारा पाया गया था, वह हमेशा ही जहर खाने तथा सम्पूर्ण कुटुम्ब को दांडिक मामलों में फंसाने की धमकी देती रहती थी । इस संभाव्यता में, यह नहीं कहा जा सकता कि जब एक बार पक्षकारों के बीच समझौता हो गया तो माफी का निष्कर्ष निकाला जा सकता है । इसका कारण यह है कि दोनों समझौते प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए और प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/बी काफी संक्षिप्त अवधि में अर्थात् तीन माह के भीतर ही किए गए थे जिससे समझौते के पक्षकारों के विवेक की स्थिति उपदर्शित होती है । दूसरे शब्दों में, यह लिखित में मात्र एक कागज के टुकड़े से अधिक कुछ नहीं था, क्योंकि पक्षकार पति/पत्नी के रूप में रहने के लिए गंभीर नहीं थी । प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए द्वारा प्रत्यर्थी के पिता ने यह लिखा है कि वे (अपीलार्थी और प्रत्यर्थी) सौहार्दपूर्ण तरीके से रहेंगे और प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/बी में यह अभिलिखित है कि पक्षकार प्रसन्नतापूर्वक रहेंगे । किन्तु अभिलेख पर के साक्ष्यों से अन्यथा ही उपदर्शित होता है । समझौता होने के तत्काल पश्चात् कुछ ही दिनों के भीतर 'सामान्य' होने के लिए यह आवश्यक है कि वातावरण कलह और तनावपूर्ण नहीं हो । वैवाहिक गृह में स्वस्थ वैवाहिक जीवन बीताने के लिए अनुकूल या प्रेरक वातावरण मुश्किल से ही मिलता है, किन्तु, वैवाहिक गृह का वातावरण अपीलार्थी के कृत्यों के कारण दूषित हो गया था । अभिलेखों से मेरा यह भी निष्कर्ष है कि प्रत्यर्थी साक्षी 2 बिमला देवी, अपीलार्थी की माता ने स्वयमेव ही इन तथ्यों के बारे में कथन किया है कि इसमें के अपीलार्थी के साथ दुर्व्यवहार करने के बारे में कोई शिकायत नहीं मिली थी । मेरा यह भी निष्कर्ष है कि अपीलार्थी ने यह तर्क दिया है कि प्रत्यर्थी के साथ उसे विवाह करने के लिए उस पर दबाव डाला गया था जैसा कि उसके द्वारा स्वीकार किया गया है । सम्पूर्ण परिस्थितियां अपीलार्थी को प्रत्यर्थी का साथ छोड़ने के लिए कोई भी युक्तियुक्त कारण उपलब्ध नहीं कराती है । अभित्यजन अपीलार्थी के आचरण में है क्योंकि अलग रहने के लिए अभिलेख पर कोई भी न्यायोचित कारण दर्शित नहीं किया गया है ।

16. क्रूरता के विभिन्न पहलुओं पर माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **समर घोष** बनाम **जया घोष**[1] वाले मामले में विचार किया गया है, जो इस प्रकार है :–

---

[1] [2008] 3 उम. नि. प. 10 = (2007) 4 एस. सी. सी. 511.

"101. मार्गदर्शन के लिए कभी भी कोई एकरूपीय कसौटी अधिकथित नहीं की जा सकती है । तब भी हम मानवीय आचरण के कुछ उदाहरणों का उल्लेख करना उपयुक्त समझते हैं जो मानवीय क्रूरता के मामले पर चर्चा करते समय सुसंगत हो सकते हैं । निम्न पैराओं में इंगित किए गए उदाहरण केवल दृष्टांतस्वरूप हैं और न कि निःशेषकारी –

(i) पक्षकारों के सम्पूर्ण वैवाहिक जीवन पर विचार करने पर अत्यंत मानसिक पीड़ा, दुख और वेदना, जिसके कारण पक्षकारों का एक दूसरे के साथ रहना संभव नहीं हो पाएगा । यह मानसिक क्रूरता की व्यापक परिधि के भीतर आएगा ।

(ii) पक्षकारों के सम्पूर्ण वैवाहिक जीवन का व्यापक रूप से मूल्यांकन करने पर यदि यह प्रचुर रूप से स्पष्ट हो जाता है कि स्थिति ऐसी है कि दुखी किए गए पक्षकार से अन्य पक्षकार के ऐसे आचरण को सहने के लिए और उसके साथ सतत रूप से जीवनयापन करने के लिए नहीं कहा जा सकता है ।

(iii) मात्र ठंडापन या प्यार की कमी से क्रूरता गठित नहीं हो सकती । भाषा में प्रायः रूखापन/कठोरता, विरत भाव दर्शित करना, टीका-टिप्पणी करना, एक ऐसी कोटि के हो सकते हैं जिनके कारण अन्य पक्षकार (पति/पत्नी) के लिए वैवाहिक जीवन पूर्णरूप से असहनीय बन जाए ।

(iv) मानसिक क्रूरता चित्त की एक स्थिति है । गहन वेदना, असंतोष, अन्य पति/पत्नी के आचरण से दूसरे पक्षकार को नैराश्य जो लंबी अवधि तक हो, की भावना मानसिक क्रूरता गठित करती है ।

(v) गाली-गलौज और अपमानकारी व्यवहार का अनवरत रूप से जारी रहना जिससे अन्य पक्षकार को यंत्रणा/असंतोष या जीवन दुःखदपूर्ण हो जाए, यह भी मानसिक क्रूरता गठित करता है ।

(vi) पति/पत्नी का अनवरत अनुचित आचरण और व्यवहार जो वस्तुतः अन्य पक्षकार के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करता हो । परिवाद किए गए व्यवहार और उसके

परिणामस्वरूप पहुंचा खतरा या आशंका अत्यंत ही घोर और प्रबल होनी चाहिए ।

(vii) अनवरत भयाक्रांत आचरण, नितांत अनदेखी करना या वैवाहिक दयालुता के सामान्य स्तर से पूर्णतया विचलन करना जिसके कारण दूसरे पक्षकार के मानसिक स्वास्थ्य को क्षति पहुंचती हो या उससे त्रुटि करने वाले पक्षकार को अत्यधिक आत्मिक सुख मिलता हो, यह मानसिक क्रूरता गठित करते हैं ।

(viii) आचरण ऐसा होना चाहिए जो ईर्ष्या, स्वार्थता आधिपत्यता से अत्यंत अधिक हो अन्यथा दुख, असंतोष और भावनात्मक रूप से चोट पहुंचाना मानसिक क्रूरता के आधार पर विवाह-विच्छेद प्रदान किए जाने के लिए आधार नहीं हो सकते ।

(ix) मात्र छोटी-मोटी कहा-सुनी, झगड़े वैवाहिक जीवन के सामान्य झगड़े जो दिन-प्रतिदिन के जीवन में घटित होते हैं, मानसिक क्रूरता के आधार पर विवाह-विच्छेद किए जाने के लिए पर्याप्त नहीं होंगे ।

(x) सम्पूर्ण वैवाहिक जीवन का पुनर्विलोकन किया जाना चाहिए और अनेक वर्षों के दौरान के कुछ एकल उदाहरण क्रूरता गठित नहीं कर सकेंगे । दुर्व्यवहार ऋजुतापूर्वक एक लंबी अवधि तक जारी रहना चाहिए, जिसके दौरान उनके (पति/पत्नी) संबंध इस सीमा तक खराब हो गए हों कि एक पति/पत्नी के कृत्यों और आचरण के कारण व्यथित पक्षकार उसके साथ और अधिक रहना अत्यंत ही कठिन पाता हो, यह मानसिक क्रूरता गठित कर सकेगा ।

(xi) यदि पति बिना किसी चिकित्सीय कारण के और अपनी पत्नी की सम्मति या उसकी जानकारी के बिना अपना नसबंदी का आपरेशन कराता है या यदि पत्नी बिना किसी चिकित्सीय कारण के या अपने पति की सम्मति या जानकारी के बिना गर्भपात या नसबंदी कराती है तब पति/पत्नी का यह कृत्य मानसिक क्रूरता गठित करेगा ।

(xii) पति/पत्नी का एकपक्षीय रूप से बिना किसी शारीरिक अक्षमता या विधिमान्य कारण के एक पर्याप्त अवधि

तक दूसरे पक्षकार के साथ संभोग करने से इनकार करने का एकपक्षीय विनिश्चय भी मानसिक क्रूरता गठित करेगा ।

(xiii) पति या पत्नी का विवाह के पश्चात् यह एकपक्षीय विनिश्चय करना कि वह विवाहोपरान्त कोई बच्चा पैदा नहीं करेगा यह भी मानसिक क्रूरता गठित करेगा ।

(xiv) जहां एक लंबी सतत अवधि तक पति/पत्नी अलग रह रहे हैं वहां यह ऋजुतापूर्वक निष्कर्ष निकाला जा सकेगा कि उनके बीच वैवाहिक संबंध सुधार के परे हैं । विवाह नाममात्र का रह जाता है यद्यपि वह विधिक बंधन के अधीन रहता है । ऐसे मामले में विधि द्वारा ऐसे बंधन को तोड़ने से इनकार करने से विवाह का कोई प्रयोजन पूरा नहीं होता । इसके प्रतिकूल यह पक्षकारों की भावनाओं के प्रति अत्यंत ही अनादर दर्शित करता है । ऐसी समरूप स्थितियों में यह मानसिक क्रूरता गठित करेगा ।'

इन सिद्धांतों को वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में लागू करना है । इन सिद्धांतों को माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **सुमन कपूर** बनाम **सुधीर कपूर**[1] वाले मामले में पुनः दोहराया गया और पुनः संपुष्टि की गई, यह अभिनिर्धारित करते हुए कि :–

"34. सिराज मोहम्मद खान जान मोहम्मद खान **बनाम** हफीजुननीसा यासीन खान (1981) 4 एस. सी. सी. 250 वाले मामले में इस न्यायालय ने यह कथन किया कि विधिक क्रूरता की अवधारणा, सामाजिक अवधारणा और जीवन स्तर में परिवर्तन तथा विकास के अनुसार परिवर्तित होती रहती है । यह भी कथन किया कि विधिक क्रूरता सिद्ध करने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि शारीरिक हिंसा की जाए । वैवाहिक बाध्यताओं के बारे में पति की ओर से वैवाहिक सहवास के निरन्तर विराम अथवा पूर्ण उदासीनता से भी विधिक क्रूरता गठित हो सकती है ।

35. शोभा रानी **बनाम** मधुकर रेड्डी (1988) 1 एस. सी. सी. 105 वाले मामले में इस न्यायालय ने क्रूरता की अवधारणा की परीक्षा की । यह मत व्यक्त किया कि शब्द 'क्रूरता' को हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 में परिभाषित नहीं किया गया है । इसका प्रयोग

[1] (2009) 1 एस. सी. सी. 422.

अधिनियम की धारा 13(1)(iक) में मानवीय आचरण और उनसे संबंधित व्यवहार के संदर्भ में अथवा वैवाहिक कर्तव्यों और बाध्यताओं के संबंध में किया गया है । यह पति-पत्नी में से किसी एक का आचरण होता है जिससे दूसरा प्रतिकूल रूप से प्रभावित होता है । क्रूरता मानसिक या शारीरिक, आशय या बिना आशय के हो सकती है । यदि यह शारीरिक है तो इसमें किस डिग्री तक हो, का प्रश्न सुसंगत होता है । यदि यह मानसिक है तो इस बात की जांच की जानी चाहिए कि क्रूर व्यवहार की प्रकृति क्या है और उसके बाद इस बात की जांच की जानी चाहिए कि ऐसे व्यवहार का दूसरे के विवेक पर क्या प्रभाव पड़ता है । यदि इस बात की युक्तियुक्त प्रत्याशा होती है कि इससे दूसरे के साथ रहने में कष्ट या जोखिमपूर्ण होगा तो अन्ततोगत्वा, शिकायत करने वाले पति/पत्नी के आचरण की प्रकृति और इसके प्रभाव पर विचार करते हुए मामले में निष्कर्ष निकाला जा सकता है ।

36. तथापि, ऐसे मामले हो सकते हैं जहां स्वयं शिकायत करने वाले का आचरण पर्याप्त रूप से दूषित हो और वह अपने या अपने अविधिमान्य या अवैध हो । उसके बाद, दूसरे पति/पत्नी पर इसके प्रभाव या जोखिम के बारे में जांच या विचार करने की आवश्यकता नहीं रह जाती है । ऐसे मामलों में, क्रूरता सिद्ध होगी यदि स्वयं आचरण साबित या स्वीकृत होता है । आशय के अभाव में, मामले में कोई विभेद नहीं करना चाहिए यदि माननीय मामलों में साधारण विवेक द्वारा शिकायतकर्ता का कार्य अन्यथा क्रूरता से संबंधित होता है । दुराशय, क्रूरता के लिए आवश्यक तत्व नहीं है । पक्षकार के अनुतोष को इस आधार पर इनकार नहीं किया जा सकता कि जानबूझकर या इच्छापूर्वक कोई दुर्व्यवहार नहीं किया गया है ।"

17. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने **रवि कुमार** बनाम **जुल्मी देवी**[1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के विनिश्चय का अवलंब लेते हुए यह तर्क दिया कि अभित्यजन के लिए आधारों का अभिवाक् किया जाना चाहिए और साबित किया जाना चाहिए । मामले के तथ्यों के आधार पर माननीय न्यायाधीशों ने यह अभिनिर्धारित किया है कि अभित्यजन सिद्ध करने के लिए किन्हीं भी आधारों को साबित नहीं किया गया है और पत्नी को दूर रहने के लिए पर्याप्त न्यायोचितता थी । माननीय न्यायालय ने

[1] (2010) 4 एस. सी. सी. 476.

उसके बाद यह अभिनिर्धारित किया कि :–

> "19. यह सत्य है कि उक्त अधिनियम के अधीन क्रूरता की कोई परिभाषा नहीं दी गई है । वस्तुतः ऐसी परिभाषा देना संभव नहीं है । वैवाहिक संबंधों में क्रूरता, पति/पत्नी के बीच आपसी सम्मान और समझ के अभाव में सुस्पष्टतः प्रलक्षित होता है जिससे संबंधों में कटुता उत्पन्न हो जाती है और व्यवहार में ऐसे विभिन्न परिवर्तन हो जाते हैं जिनसे क्रूरता गठित हो सकती है । कभी-कभी वैवाहिक संबंधों में क्रूरता घृणा के रूप में भी हो सकती है, कभी-कभी यह विभिन्न प्रारूप में भी हो सकती है । समय-समय पर इसके दृष्टिकोण या पहुंच का निर्णय किया जाता है । कुछ परिस्थितियों में चुप रहना भी क्रूरता हो सकती है ।
>
> 20. इसलिए, वैवाहिक व्यवहारों में क्रूरता की कोई परिभाषा नहीं दी गई है और इसके विभिन्न प्रकारों से इनकार नहीं किया जा सकता है । क्या पति अपनी पत्नी के प्रति क्रूर है अथवा पत्नी अपने पति के प्रति क्रूर है, इस बात को सुनिश्चित और निर्णय करने के लिए दिए गए मामले के सम्पूर्ण तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करना चाहिए न कि पूर्व निर्धारित फार्मूलों के आधार पर । वैवाहिक मामलों में क्रूरता विभिन्न प्रकार की हो सकती है यह छोटा या क्रूर भी हो सकती है और यह इशारों या शब्दों द्वारा भी हो सकती है । इन सभी को संभाव्य तरीकों से स्पष्टीकरण करते हुए लार्ड डेनिम ने शेल्डन **बनाम** शेल्डन (1966) 2 डब्ल्यू. एल. आर. 993 वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया था कि वैवाहिक मामलों में क्रूरता के विभिन्न प्रकारों से कभी भी इनकार नहीं किया जा सकता है ।"

विद्वान् काउंसिल द्वारा अवलंब लिया गया द्वितीय विनिश्चय **पंकज महाजन** बनाम **डिम्पल** उर्फ **काजल**[1] वाला मामला है । माननीय न्यायालय ने कई कार्यों को पाया है जिनसे क्रूरता गठित हो सकती है जो इस प्रकार है :–

> "36. अभिवचनों और साक्ष्यों के आधार पर, क्रूरता के निम्नलिखित अवयवों को विनिर्दिष्टतः अभिवाचित और कथित किया जा सकता है जो निम्नलिखित हैं –
>
> (i) आत्महत्या करने की बार-बार धमकी देना और एक

[1] (2011) 12 एस. सी. सी. 1.

अवसर पर टेरिस से कूदकर आत्महत्या करने की भी कोशिश करना ।

(ii) अपीलार्थी को सीढ़ियों से धक्का देना जिसके परिणामस्वरूप उसके दाहिने प्रबाहु में अस्थि-भंग होना ।

(iii) अपीलार्थी को थप्पड़ मारना और उस पर हमला करना ।

(iv) अपीलार्थी को अपमानित और प्रताड़ित करते हुए उसके साथियों और नातेदारों के साथ दुर्व्यवहार करना ।

(v) गृहस्थी के दायित्वों को नहीं निभाना और अपीलार्थी के लिए उसे उसके हालात पर छोड़ते हुए कभी भी भोजन नहीं बनाना ।

(vi) बच्चे की देख-भाल नहीं करना ।

(vii) अपीलार्थी के माता-पिता का अपमान करना और उनके साथ दुर्व्यवहार करना ।

(viii) अपीलार्थी पर अपने माता-पिता से अलग रहने के लिए दबाव डालना ।

(ix) अपीलार्थी के मकान-मालिक के कुटुम्ब के साथ न्यूसेन्स करना जिससे कि उक्त मकान-मालिक अपीलार्थी से अपने परिसरों को खाली करने के लिए दबाव डाले ।

(x) बार-बार पागलपन, असामान्य व्यवहार करना जिससे कि अपीलार्थी को अत्यधिक मानसिक पीड़ा पहुंचे ।

(xi) अपीलार्थी के साथ हमेशा झगड़ा करना और उसे गाली देना ।

(xii) हमेशा ही असामान्य तरीके से व्यवहार करना और सनकी भरा कार्य करना जिससे कि अपीलार्थी को अत्यधिक मानसिक क्रूरता कारित हो ।

37. ये सभी तथ्यात्मक वर्णन दोनों पक्षकारों के अभिवचनों और साक्ष्यों से प्रकट होते हैं जिससे कि स्पष्टतः प्रत्यर्थी-पत्नी का अपीलार्थी-पति के प्रति आचरण दर्शित होता है । इन सभी स्वीकार्य

तथ्यों और वर्णनों से, यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है कि अपीलार्थी-पति को प्रत्यर्थी-पत्नी के हाथों क्रूरता नहीं की गई है । हमारा यह समाधान है कि अपीलार्थी-पति ने अभिलेख पर इस बाबत पर्याप्त साक्ष्य प्रस्तुत किया है कि प्रत्यर्थी-पत्नी 'मानसिक विकृतता' से ग्रसित है और अपने कार्यों और आचरण से उसने उसके प्रति गंभीर मानसिक क्रूरता कारित की है और पक्षकारों के लिए एक-दूसरे के साथ रहना संभाव्य नहीं है, इसलिए अपीलार्थी-पति के पक्ष में विवाह-विच्छेद की डिक्री मंजूर किए जाने योग्य है । इसके अतिरिक्त, हमारे नोटिस में यह भी लाया गया कि उपर्युक्त उल्लिखित कारणों से दोनों अपीलार्थी-पति और प्रत्यर्थी-पत्नी पिछले लगभग 9 वर्षों से अधिक अवधि से पृथक् रह रहे हैं । अपीलार्थी-पति और प्रत्यर्थी-पत्नी के बीच वैवाहिक जीवन को फिर से कायम रखने की कोई संभावना नहीं है ।"

18. जैसा कि माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है कि क्रूरता की परिभाषा को सीमित दायरे में नहीं बांधा जा सकता है । **पंकज महाजन** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए पिछले विनिश्चय का उल्लेख करते हुए, मेरा यह निष्कर्ष नहीं है कि माननीय उच्चतम न्यायालय ने कोई भिन्न सिद्धांत अधिकथित किया है । आगे, मैं अपीलार्थी के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल की इस दलील को स्वीकार करने में असमर्थ हूं कि प्रत्यर्थी ने समझौता करके क्रूरता के सभी कार्यों को माफ कर दिया है । प्रथम समझौता इस याचिका के पक्षकारों के माता-पिता के बीच हुआ था । द्वितीय समझौता स्वयं पक्षकारों के बीच में हुआ था । इस तथ्य का उल्लेख करना अपेक्षित है कि समझौते मात्र अस्थायी राहत देने के बहाने मात्र प्रतीत होते हैं और एक-दूसरे की गलतियों को स्वीकार नहीं किया तथा माफी देने की सही भावना से एक-दूसरे को माफ नहीं किया ताकि वे बेहतर भविष्य के लिए आगे बढ़ सकें और खुशहाल वैवाहिक जीवन जी सकें । यह नहीं कहा जा सकता है कि अपीलार्थी, जो निरन्तर प्रत्यर्थी को और उसके सम्पूर्ण कुटुम्ब को पुलिस मामले में फंसाने की धमकी दे रही थी और उसके साथ भी नहीं रह रही थी, वह क्रूरता का कार्य गठित नहीं करती थी । इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इन परिस्थितियों में इस बारे में कोई संदेह नहीं हो सकता है कि प्रत्यर्थी अपीलार्थी के साथ पति और पत्नी के रूप में सामान्य लैंगिक जीवन नहीं जी रही थी । इस

कारण से कोई अन्य निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है कि वह उससे दूर रह रही थी । अपीलार्थी अन्यायोचित तरीके से पति से दूर रह रही थी । इसे अभिलेख पर साक्ष्य द्वारा सिद्ध कर दिया गया है जो स्पष्टतः सआशय अभित्यजन से साबित होता है । इस निवेदन का उल्लेख करते हुए कि अभिवचनों में विभिन्न साक्ष्य हैं, इन सभी के आधार पर मैं यह कह सकता हूं कि पक्षकारों के साक्ष्य और अभिवचनों का परिशीलन करने के पश्चात् मेरा यह निष्कर्ष है कि दोनों पक्षकारों को साक्ष्य प्रस्तुत करना मंजूर किया गया था और सभी तथ्यों पर जैसा उनके द्वारा कथित किया गया, बिना किसी आक्षेप के प्रतिपरीक्षा करना भी मंजूर किया गया था । यद्यपि अभिवचनों में तथ्य अतिसावधानीपूर्वक कथित नहीं किए गए हैं फिर भी अपीलार्थी के व्यवहार के बारे में उपदर्शित आधारों और साक्ष्य से ऐसा कोई तरीका प्रकट नहीं होता है कि यह अभिवचनों का समर्थन नहीं करता है । इसलिए, यह निवेदन नामंजूर किए जाने योग्य है । अधिनियम की धारा 13(iक) तथा (iख) में यथाअनुध्यात मानसिक क्रूरता इस मामले के अभिलेख पर साबित होती है ।

19. अपीलार्थी का प्रत्यर्थी के साथ लम्बे समय तक अन्यायोचित तरीके से दूर रहने पर विचार करते हुए दोनों के बीच सामान्यतः पति और पत्नी के रूप में सहवास करने के बारे में प्रश्न ही नहीं उठता है । इन परिस्थितियों में मानसिक क्रूरता सिद्ध होती है । **रमन कुमार** बनाम **श्रीमती बाछो थान्डी**[1] वाले मामले में माननीय न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

> "10. यह देखा जा सकता है कि अपीलार्थी और उसकी पत्नी के बीच संबंध सामान्य नहीं थे । वे एक साथ अत्यधिक अल्प अवधि के लिए रहे । अभिकथन यह है कि पत्नी ने अपीलार्थी को सामान्य लैंगिक संबंध बनाने नहीं दिए । अपीलार्थी इस बारे में स्पष्ट प्रकथन करने में पर्याप्त रूप से बुद्धिमान नहीं हो सकता है । यह हो सकता है कि उसने सुस्पष्टतः यह अभिप्राय निकाला हो कि उसकी पत्नी द्वारा सामान्य लैंगिक संबंध बनाने से इनकार किया गया जब उसने यह प्रकथन किया कि उसने सहवास करने की अनुमति नहीं दी थी । यह अभिकथन किया गया कि पत्नी ने पति को अपने साथ सामान्य

[1] ए. आई. आर. 2008 पंजाब-हरियाणा 95.

लैंगिक संबंध बनाने की अनुमति नहीं दी थी । यह पहलू शायद इस बात से भी स्पष्ट होता है कि यदि पत्नी अपने आधार के समर्थन में आगे भी बनी रहती और प्रतिपरीक्षा का सामना किया होता । अपीलार्थी ने शब्द "सहवास" का प्रयोग किया है स्पष्टतः यह कहने के बजाय कि उसने संभोग करने की अनुमति दी थी । इस पर और अधिक वर्णन करना अथवा इस मामले की तथ्यात्मक पृष्ठभूमि में और अधिक चर्चा करना अपेक्षित नहीं है । पत्नी अब भी अपील का विरोध करने में रुचिकर नहीं है । पत्नी के विद्वान् काउंसेल ने प्रत्यर्थी-पत्नी के मुख्तारनामा से निर्देश प्राप्त करते हुए यह कथन किया कि अब भी प्रत्यर्थी-पत्नी इस संबंध को जारी रखने के लिए उत्सुक नहीं है और तद्नुसार उत्तर फाइल करने के पश्चात् भी विचारण न्यायालय के समक्ष इस विवाह-विच्छेद अर्जी का विरोध नहीं किया । इस प्रकार, इस अपील को लम्बित रखने का प्रयोग इस टूटे हुए संबंध को बनाने के लिए पक्षकारों के बीच अपील का निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है । अपीलार्थी का यह अभिवाक् कि प्रत्यर्थी-पत्नी ने उसे अपने साथ संभोग करने नहीं दिया, से यह अभिप्राय नहीं निकाला जा सकता है कि लैंगिक संबंध बनाने से इनकार करने का अभिवाक् नहीं किया गया । पत्नी के सम्पूर्ण व्यवहार जिसे अपीलार्थी के अखंडनीय साक्ष्य द्वारा सिद्ध किया गया है, से पति के साथ उसकी ओर से मानसिक क्रूरता दर्शित होती है क्योंकि पत्नी इस अपील का विरोध करने के लिए आगे नहीं आई और गंभीरतापूर्वक इस विवाह-विच्छेद अर्जी का भी विरोध नहीं किया, अपीलार्थी का अभिवाक् साक्ष्य और अभिलेख पर की सामग्रियों के आधार पर नकारात्मक नहीं है ।"

मामले में इन तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, इस अपील में कोई गुणागुण नहीं है, तद्नुसार, इसे खारिज किया जाता है । खर्चे का कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

अपील खारिज की गई ।

क.

राजेश ठाकुर और अन्य

बनाम

हिमाचल प्रदेश विधान सभा मार्फत इसके सचिव, काउंसिल चेम्बर, शिमला और अन्य

तारीख 1 जून, 2012

न्यायमूर्ति राजीव शर्मा

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 226 [सपठित हिमाचल प्रदेश विधान सभा सचिवालय (सेवाओं की भर्ती और शर्तें) नियम, 1974 का नियम 6 और 8] – रिट – लोक सेवक का विहित प्रक्रिया के अनुसरण में चयन होना – नियुक्ति पत्र अप्राधिकृत प्राधिकारी द्वारा जारी करना – नियुक्ति रद्द होना – यदि विहित प्रक्रिया के अनुसरण में कोई व्यक्ति लोक सेवक के रूप में चयनित होता है किन्तु उसका नियुक्ति पत्र अप्राधिकृत प्राधिकारी द्वारा जारी किया जाता है तो उसकी नियुक्ति रद्द होने के लिए दायी होगी और यदि ऐसी नियुक्ति रद्द की जाती है तो वह वैध और विधिमान्य होगी ।

वर्तमान मामले में, लिपिक के पांच पदों की भर्ती के लिए प्रक्रिया तारीख 7 जनवरी, 2011 के विज्ञापन के अनुसार आरम्भ की गई थी । आवेदनों की प्राप्ति की अंतिम तारीख 27 जनवरी, 2011 थी । याचियों और प्रत्यर्थी सं. 7 से 9 ने चयन प्रक्रिया में भाग लिया । इन पदों के लिए 270 अभ्यर्थियों ने आवेदन किया और 230 अभ्यर्थी अर्ह पाए गए थे । लिखित परीक्षा तारीख 23 मार्च, 2013 को आयोजित हुई । न्यूनतम अर्हता अंक सम्पूर्ण अंकों का 50 प्रतिशत था । परीक्षा परिणाम तारीख 11 जुलाई, 2011 को घोषित हुआ । भर्ती के प्रयोजन के लिए एक समिति तारीख 14 जुलाई, 2011 को गठित हुई । टंकण परीक्षा के साथ ही साक्षात्कार भी तारीख 22 जुलाई, 2011 को हुआ । प्रत्यर्थी सं. 7 से 9 ने टंकण परीक्षा उत्तीर्ण की । आरम्भतः याची सं. 1 को टंकण परीक्षा में उत्तीर्ण घोषित किया गया था किन्तु बाद में पेपर पुस्तिका के पेज 84 पर स्थित अनुपूरक शपथपत्र के अनुसार, यह प्रतीत होता है कि चूंकि याची सं. 1 ने 28.4 अंक अर्जित किए थे इसलिए उसे गलत तौर पर उत्तीर्ण दर्शित किया गया था । याची सं. 2 और 3 टंकण परीक्षा उत्तीर्ण नहीं कर पाए थे । याची सं. 1

ने 78 अंक, याची सं. 2 ने 84 अंक और याची सं. 3 ने 73 अंक अर्जित किए थे जबकि प्रत्यर्थी सं. 7 ने 96 अंक, प्रत्यर्थी सं. 8 ने 85 अंक और प्रत्यर्थी सं. 9 ने 81 अंक अर्जित किए थे । उपाबंध पी-9 के अनुसार, संकलित परीक्षा परिणाम के फलस्वरूप प्रत्यर्थी सं. 7 और 8 को तारीख 30 अगस्त, 2011 को नियुक्ति पत्र जारी किया गया । प्रत्यर्थी सं. 9 को तारीख 27 सितम्बर, 2011 को नियुक्ति पत्र जारी किया गया । इसे आक्षेपित करते हुए रिट याचिका फाइल की गई । न्यायालय द्वारा रिट याचिका भागतः मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – न्यायालय उस तरीके का उल्लेख करेगा जिसमें अवर सचिव द्वारा तारीख 30 अगस्त, 2011 और तारीख 27 सितम्बर, 2011 को प्रत्यर्थी सं. 7 से 9 को नियुक्ति पत्र जारी किए गए थे । असंशोधित नियम 8 नियुक्ति प्राधिकारी के बारे में है । नियम 8 (असंशोधित) के अनुसार, सचिव की नियुक्ति सरकार द्वारा अध्यक्ष की सलाह से की जाएगी और अन्य सभी पदों पर नियुक्तियां अध्यक्ष द्वारा की जाएंगी । तथापि, परन्तुक के अनुसार, अध्यक्ष साधारण या विशेष आदेश द्वारा ऐसे आदेश में विनिर्दिष्ट, प्रथम श्रेणी के पदों के अलावा किसी पद या किसी पद के वर्गों की नियुक्ति करने के लिए अपनी शक्ति सचिव को प्रत्यायोजित कर सकता है । तारीख 4 दिसम्बर, 2008 को नियम 8 में एक संशोधन किया गया, जैसा कि उपर्युक्त उल्लिखित है, जिसके द्वारा उप-नियम (2) के नीचे परन्तुक प्रतिस्थापित किया गया और अब अध्यक्ष साधारण या विशेष आदेश द्वारा ऐसे आदेश में विनिर्दिष्ट किसी पद या किसी पद के वर्गों की नियुक्ति करने के लिए अपनी शक्ति सचिव को प्रत्यायोजित कर सकता है । इस प्रकार, नियम 8 की स्पष्ट भाषा से यह स्पष्ट होता है कि नियुक्तियां अध्यक्ष द्वारा की जानी हैं किन्तु वह अपनी इन शक्तियों को सचिव को प्रत्यायोजित कर सकता है । वर्तमान मामले में, नियुक्ति पत्र अवर सचिव द्वारा जारी की गई है । नियुक्ति पत्र अवर सचिव द्वारा जारी किए जाने के लिए समनुदेशित कारण यह दिया गया है कि अध्यक्ष, सचिव विधान सभा के साथ कामनवेल्थ पार्लियामेंटरी एसोसिएशन कान्फरेंस में भाग लेने के लिए विदेशी यात्रा पर गए थे और अवर सचिव नियुक्ति पत्र जारी करने के लिए प्राधिकृत था । श्री अशोक शर्मा ऐसा कोई उपबंध इंगित करने में असफल रहे जिसके अधीन अवर सचिव को नियुक्ति पत्र जारी करने की शक्तियां प्रत्यायोजित की जा सकती थीं । यदि अध्यक्ष और सचिव विदेश यात्रा पर थे तो नियुक्ति पत्र जारी करने को विलम्बित किया जा सकता था । अब यह सुस्थिर विधि है कि यदि संविधि में एक विशिष्ट

प्रक्रिया विहित है तो उसका एकमात्र उसी तरीके से अनुसरण किया जाना चाहिए । नियुक्तियां अध्यक्ष द्वारा की गई थीं यद्यपि वह नियुक्ति करने का अधिकार सचिव को प्रत्यायोजित कर सकता था किन्तु नियुक्ति करने की शक्तियों का कोई आगे प्रत्यायोजन नहीं हो सकता था । इस प्रकार, श्री पी. डी. नन्दा की इस दलील में गुणागुण है कि प्रत्यर्थी सं. 7 से 9 को अवैध तौर पर नियुक्ति पत्र जारी किए गए हैं । श्री पी. डी. नन्दा ने यह भी तर्क दिया कि सामान्य संवर्ग अभ्यर्थियों के लिए दो पद थे किन्तु तीन पद भर लिए गए थे । उत्तर में यह आया है कि तारीख 7 जनवरी, 2011 के विज्ञापन में यह स्पष्ट किया गया था कि रिक्तियां घटाई-बढ़ाई जा सकती हैं । उत्तर के अनुसार ज्येष्ठ सहायक की भर्ती के पश्चात् जो रोस्टर के अनुसार था, एक प्रत्याशित रिक्ति होनी थी, जो सामान्य संवर्ग को जानी थी । सेवा विधिशास्त्र के अनुसार यह सुस्थिर है कि नियोजक हमेशा ही मेरिट सूची के अनुसार एक पैनल बना सकता है और पैनल का कार्यकाल नियमों के अनुसार होता है और इसके अभाव में, सुस्थिर विधि के अनुसार पैनल का कार्यकाल एक वर्ष का होना चाहिए । वर्तमान मामले में, प्रत्यर्थी सं. 9 का नाम पैनल से परे नियुक्ति के लिए सिफारिश की गई थी । याची तारीख 7 जनवरी, 2011 के विज्ञापन के साथ भर्ती और प्रोन्नति में अन्तर्विष्ट निबंधनों और शर्तों के बारे में जानते थे और उन्होंने चयन प्रक्रिया में भाग लिया । जब याची अर्हता प्राप्त नहीं कर सके तो उन्होंने चयन प्रक्रिया को आक्षेपित किया । न्यायालय का यह सुविचारित मत है कि याची इस प्रकार की प्रक्रिया अपनाए जाने के पश्चात् चयन प्रक्रिया को चुनौती देने से विबंधित है । यह विवादित नहीं है कि प्रत्यर्थी सं. 7 प्रत्यर्थी सं. 5 की पुत्री है, प्रत्यर्थी सं. 8 प्रत्यर्थी सं. 3 की पत्नी का भतीजा है और प्रत्यर्थी सं. 9 प्रत्यर्थी सं. 4 की साली का पुत्र है । मात्र इस आधार पर कि प्रत्यर्थी सं. 7 से 9 इन कृत्यकारियों से नजदीकी संबंध हैं, यह उपधारणा नहीं की जा सकती है कि उन्होंने असम्यक् रूप से चयन प्रक्रिया के दौरान उनका पक्ष लिया । प्रत्यर्थी सं. 7 से 9 लिखित परीक्षा में उपस्थित हुए और उसमें उत्तीर्ण हुए और टंकण परीक्षा में भी उत्तीर्ण हुए और उनकी मेरिट के अनुसार उन्हें नियुक्ति पत्र जारी किए गए । याची अभिलेख पर कोई विश्वसनीय साक्ष्य प्रस्तुत करते हुए यह सिद्ध करने में असफल रहे हैं कि प्राइवेट प्रत्यर्थियों का कृत्यकारियों ने असम्यक् रूप से पक्ष लिया । श्री अशोक शर्मा ने अभिलेखों के आधार पर यह निवेदन किया कि प्रत्यर्थी सं. 3, 4 और 5 चयन प्रक्रिया के दौरान संबद्ध नहीं थे । श्री पी. डी. नन्दा की इस दलील में कोई गुणागुण नहीं है कि याचियों का नए चयन समिति द्वारा साक्षात्कार लिया जाए । चयन प्रक्रिया विज्ञापन के आधार पर आरम्भ की गई थी जिसके

परिणामस्वरूप प्रत्यर्थी सं. 7 से 9 को नियुक्ति पत्र जारी किए गए थे, में कोई गलती नहीं कही जा सकती है । चयन प्रक्रिया, भर्ती और प्रोन्नति नियमों के अधीन शासित थी और याचियों के साथ ही प्राइवेट प्रत्यर्थियों की उपयुक्तता का न्यायनिर्णयन करने के लिए नई चयन समिति गठित करने के लिए नियमों में कोई उपबंध नहीं है । (पैरा 9, 10, 11 और 12)

आरम्भिक (सिविल) रिट अधिकारिता : 2011-जी की सिविल रिट याचिका सं. 10565.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन सिविल रिट याचिका ।

याचियों की ओर से श्री पी. डी. नन्दा, अधिवक्ता

प्रत्यर्थी सं. 1, 2 और 6 की ओर से श्री अशोक शर्मा, अधिवक्ता

प्रत्यर्थी सं. 7 से 9 की ओर से श्री श्रवण डोगरा, अधिवक्ता

न्यायमूर्ति राजीव शर्मा – लिपिक के पांच पदों की भर्ती के लिए प्रक्रिया तारीख 7 जनवरी, 2011 के विज्ञापन के अनुसार आरम्भ की गई थी । आवेदनों की प्राप्ति की अंतिम तारीख 27 जनवरी, 2011 थी । याचियों और प्रत्यर्थी सं. 7 से 9 ने चयन प्रक्रिया में भाग लिया । इन पदों के लिए 270 अभ्यर्थियों ने आवेदन किया और 230 अभ्यर्थी अर्ह पाए गए थे । लिखित परीक्षा तारीख 23 मार्च, 2013 को आयोजित हुई । न्यूनतम अर्हता अंक सम्पूर्ण अंकों का 50 प्रतिशत था । परीक्षा परिणाम तारीख 11 जुलाई, 2011 को घोषित हुआ । भर्ती के प्रयोजन के लिए एक समिति तारीख 14 जुलाई, 2011 को गठित हुई । टंकण परीक्षा के साथ ही साक्षात्कार भी तारीख 22 जुलाई, 2011 को हुआ । प्रत्यर्थी सं. 7 से 9 ने टंकण परीक्षा उत्तीर्ण की । आरम्भतः याची सं. 1 को टंकण परीक्षा में उत्तीर्ण घोषित किया गया था किन्तु बाद में पेपर पुस्तिका के पेज 84 पर स्थित अनुपूरक शपथपत्र के अनुसार, यह प्रतीत होता है कि चूंकि याची सं. 1 ने 28.4 अंक अर्जित किए थे इसलिए उसे गलत तौर पर उत्तीर्ण दर्शित किया गया था । याची सं. 2 और 3 टंकण परीक्षा उत्तीर्ण नहीं कर पाए थे । याची सं. 1 ने 78 अंक, याची सं. 2 ने 84 अंक और याची सं. 3 ने 73 अंक अर्जित किए थे जबकि प्रत्यर्थी सं. 7 ने 96 अंक, प्रत्यर्थी सं. 8 ने 85 अंक और प्रत्यर्थी सं. 9 ने 81 अंक अर्जित किए थे । उपाबंध पी-9 के अनुसार, संकलित परीक्षा परिणाम के फलस्वरूप प्रत्यर्थी सं. 7 और 8 को तारीख 30 अगस्त, 2011 को नियुक्ति पत्र जारी किया गया । प्रत्यर्थी सं. 9 को तारीख 27 सितम्बर, 2011 को नियुक्ति पत्र जारी किया गया ।

2. श्री पी. डी. नन्दा ने यह जोरदार तर्क दिया कि चयन प्रक्रिया पक्षपात और भाई-भतीजावाद के कारण दूषित है । उनके अनुसार, प्रत्यर्थी सं. 7 प्रत्यर्थी सं. 5 की पुत्री है, प्रत्यर्थी सं. 8 प्रत्यर्थी सं. 3 की पत्नी का भतीजा है और प्रत्यर्थी सं. 9 प्रत्यर्थी सं. 4 की साली का पुत्र है । उसके बाद उन्होंने यह तर्क दिया कि प्रत्यर्थी सं. 7 से 9 को साक्षात्कार में अन्धाधुन्ध तरीके से उच्चतर अंक दिए गए । उन्होंने यह भी तर्क दिया कि उत्तर पुस्तिकाओं को बदले जाने की भी संभाव्यता है । उन्होंने यह भी दलील दी कि प्रत्यर्थी सं. 1 से 4 द्वारा न तो कोई लिखित परीक्षा न ही कोई टंकण परीक्षा आयोजित की जा सकी थी । अंततः उन्होंने यह दलील दी कि यह न्यायालय नई चयन समिति गठित करते हुए याचियों को उपयुक्त न्याय दे सकता है ।

3. श्री अशोक शर्मा और श्री श्रवण डोगरा ने प्रत्यर्थी सं. 7 से 9 के चयन का समर्थन किया । श्री अशोक शर्मा ने यह तर्क दिया कि विधान सभा चयन प्रक्रिया में पूर्णरूपेण पारदर्शिता बनाए रखती है और याचियों द्वारा लगाए गए अभियोग अभिलेखों से प्रकट नहीं होते हैं । उसके बाद उन्होंने यह तर्क दिया कि चूंकि अध्यक्ष, सचिव, विधान सभा के साथ कामनवेल्थ पार्लियामेंटरी एसोसिएशन कान्फरेंस में भाग लेने के लिए विदेश यात्रा पर गए थे, इसलिए, अवर सचिव चयनित अभ्यर्थियों को नियुक्ति पत्र जारी करने के लिए प्राधिकृत था । अंततः उन्होंने यह दलील दी कि चूंकि याचियों ने टंकण परीक्षा उत्तीर्ण नहीं की थी इसलिए वे चयन प्रक्रिया को आक्षेपित करने से वर्जित हैं । श्री श्रवण डोगरा ने यह भी तर्क दिया कि याची चयन प्रक्रिया से वचनबद्ध थे और जब वे चयनित नहीं हुए तो उन्होंने लिपिक के पदों पर प्रत्यर्थी सं. 7 से 9 की नियुक्ति को आक्षेपित किया ।

4. मैंने, पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल को सुना और विधान सभा द्वारा प्रस्तुत अभिवचनों और अभिलेखों का ध्यानपूर्वक परिशीलन किया ।

5. अभिवचनों से यह उद्भूत होता है कि तारीख 7 जनवरी, 2011 के विज्ञापन द्वारा लिपिक के 5 पद विज्ञापित हुए थे जिनमें से दो पद साधारण संवर्ग के, दो पद अनुसूचित जाति संवर्ग के और एक पद भूतपूर्व सैनिकों के लिए था । लिखित परीक्षा तारीख 23 मार्च, 2011 को आयोजित हुई थी और उसका परिणाम तारीख 11 जुलाई, 2011 को घोषित हुआ था । टंकण परीक्षा तारीख 22 जुलाई, 2011 को आयोजित हुई थी । याची टंकण परीक्षा में उत्तीर्ण नहीं हुए थे । चयन के लिए टंकण परीक्षा में उत्तीर्ण होना अनिवार्य था । इस प्रक्रम पर, भर्ती और प्रोन्नति

नियमों के प्रति निर्देश करना उचित होगा जो "हिमाचल प्रदेश विधान सभा सचिवालय (सेवाओं की भर्ती और शर्तें) नियम, 1974 हैं" (जिसे इसमें इसके पश्चात् सुविधा के लिए "नियम" कहा गया है) जो समय-समय पर संशोधित हुए हैं । नियम 6 में भर्ती का तरीका उपबंधित है, नियम 8 नियुक्ति प्राधिकारी के बारे में है । तारीख 4 दिसम्बर, 2008 को भर्ती और प्रोन्नति नियमों में एक संशोधन किया गया, जिसके अनुसार उप-नियम (2) के नीचे मौजूद परन्तुक को प्रतिस्थापित करते हुए नियम 8 को निम्नलिखित संशोधित किया गया है :–

> "परन्तु अध्यक्ष साधारण या विशेष आदेश द्वारा ऐसे आदेश में विनिर्दिष्ट किसी पद या किसी पद के वर्गों की नियुक्ति करने के लिए अपनी शक्ति सचिव को प्रत्यायोजित कर सकता है ।"

6. भर्ती और प्रोन्नति नियमों के अनुसार लिपिक के पद के लिए विहित न्यूनतम अर्हता यह है कि अभ्यर्थी को हिमाचल प्रदेश/केन्द्रीय सरकार द्वारा मान्यताप्राप्त बोर्ड/विश्वविद्यालय से 10+2 या इसके समकक्ष परीक्षा उत्तीर्ण होना चाहिए तथा हिन्दी में 25 शब्द प्रति मिनट टंकण गति या अंग्रेजी में 30 शब्द प्रति मिनट टंकण गति होनी चाहिए और अभ्यर्थी को कम्प्यूटर का ज्ञान भी होना चाहिए । 10 प्रतिशत पद प्रोन्नति द्वारा भरे जाने थे और 90 प्रतिशत पद सीधी भर्ती द्वारा भरे जाने थे । उपाबंध पी-3 द्वारा जारी विज्ञापन में यह उपबंधित था कि अभ्यर्थियों को लिखित परीक्षा और साक्षात्कार देना होगा । एक खंड यह भी था कि रिक्तियां घटाई या बढ़ाई जा सकती हैं । विज्ञापन के अनुसार न्यूनतम आवश्यक अर्हता 10+2 या इसके समकक्ष परीक्षा उत्तीर्ण करना था और अभ्यर्थी को अंग्रेजी में 30 शब्द प्रति मिनट टंकण गति से और हिन्दी में 25 शब्द प्रति मिनट की टंकण गति से परीक्षा उत्तीर्ण करना अपेक्षित था । याचियों ने टंकण परीक्षा उत्तीर्ण नहीं की है, जो भर्ती और प्रोन्नति नियमों के अनुसार आवश्यक अर्हताओं में से एक था । टंकण परीक्षा तारीख 22 जुलाई, 2011 को आयोजित की गई थी यद्यपि याची सं. 1, यथाउपर्युक्त उल्लिखित, उत्तीर्ण घोषित किया गया था किन्तु अनुपूरक शपथपत्र के अनुसार उसने टंकण परीक्षा उत्तीर्ण नहीं की थी । इस तथ्य को सत्यापित करने के लिए मूल अभिलेखों का भी परिशीलन किया गया था ।

7. श्री अशोक शर्मा ने यह जोरदार तर्क दिया कि लिखित परीक्षा विचारणीय क्षेत्र को निर्बंधित करने के लिए उपबंधित की गई थी । उनके अनुसार, यह परीक्षा हिमाचल प्रदेश अधीनस्थ सेवा चयन बोर्ड द्वारा

आयोजित लिखित परीक्षा के सदृश्य आयोजित की गई थी जिसके द्वारा 50 प्रतिशत अंक अर्हता अंक थे । वर्तमान मामले में, लिखित परीक्षा तारीख 23 मार्च, 2011 को आयोजित की गई थी जिसका परीक्षाफल तारीख 11 जुलाई, 2011 को घोषित किया गया था तथा याची और प्रत्यर्थी सं. 7 से 9 लिखित परीक्षा में उत्तीर्ण घोषित किए गए थे । उनका साक्षात्कार भी लिया गया था । लिखित परीक्षा में याची सं. 1 ने 73 अंक प्राप्त किए, याची सं. 2 ने 76 अंक प्राप्त किए और याची सं. 3 ने 68 अंक प्राप्त किए । लिखित परीक्षा में प्रत्यर्थी सं. 7 ने 86 अंक प्राप्त किए, प्रत्यर्थी सं. 8 ने 77 अंक प्राप्त किए और प्रत्यर्थी सं. 9 ने 74 अंक प्राप्त किए । साक्षात्कार में याची सं. 1 को 5 अंक दिए गए, याची सं. 2 को 8 अंक दिए गए और याची सं. 3 को 5 अंक दिए गए । साक्षात्कार में प्रत्यर्थी सं. 7 को 9 अंक दिए गए, प्रत्यर्थी सं. 8 को 8 अंक दिए गए और प्रत्यर्थी सं. 9 को 7 अंक दिए गए थे । तथापि, चूंकि याचियों ने टंकण परीक्षा उत्तीर्ण नहीं की थी इसलिए उन्हें उपयुक्त घोषित नहीं किया जा सका । विचारणीय क्षेत्र को निर्बंधित करने के लिए विहित लिखित परीक्षा में कोई अवैधता नहीं थी, वह हिमाचल प्रदेश अधीनस्थ चयन सेवा बोर्ड के सदृश्य भी थी । टंकण परीक्षा आयोजित करना यह सुनिश्चित करने के लिए भी आवश्यक था कि भर्ती और प्रोन्नति नियमों के अनुसार, अभ्यर्थी न्यूनतम टंकण गति पूरी करते हैं ।

8. श्री पी. डी. नन्दा की इस दलील में कोई गुणागुण नहीं है कि उत्तर पुस्तिकाओं को बदले जाने की संभावना थी । विधान सभा द्वारा फाइल उत्तर के अनुसार, प्रत्येक उत्तर पुस्तिका केन्द्र अधीक्षक द्वारा हस्ताक्षरित थी । लिखित परीक्षा, टंकण परीक्षा और साक्षात्कार आयोजित करने के लिए पृथक् समितियां गठित की गई थीं । उत्तर में यह भी आया है कि अभ्यर्थियों को उनके फोटोग्राफ के साथ प्रवेश पत्र जारी किए गए थे ।

9. अब न्यायालय उस तरीके का उल्लेख करेगा जिसमें अवर सचिव द्वारा तारीख 30 अगस्त, 2011 और तारीख 27 सितम्बर, 2011 को प्रत्यर्थी सं. 7 से 9 को नियुक्ति पत्र जारी किए गए थे । असंशोधित नियम 8 नियुक्ति प्राधिकारी के बारे में है । नियम 8 (असंशोधित) के अनुसार, सचिव की नियुक्ति सरकार द्वारा अध्यक्ष की सलाह से की जाएगी और अन्य सभी पदों पर नियुक्तियां अध्यक्ष द्वारा की जाएंगी । तथापि, परन्तुक के अनुसार, अध्यक्ष साधारण या विशेष आदेश द्वारा ऐसे आदेश में विनिर्दिष्ट, प्रथम श्रेणी के पदों के अलावा किसी पद या किसी पद के वर्गों की नियुक्ति करने के लिए अपनी शक्ति सचिव को प्रत्यायोजित कर

सकता है । तारीख 4 दिसम्बर, 2008 को नियम 8 में एक संशोधन किया गया, जैसा कि उपर्युक्त उल्लिखित है, जिसके द्वारा उप-नियम (2) के नीचे परन्तुक प्रतिस्थापित किया गया और अब अध्यक्ष साधारण या विशेष आदेश द्वारा ऐसे आदेश में विनिर्दिष्ट किसी पद या किसी पद के वर्गों की नियुक्ति करने के लिए अपनी शक्ति सचिव को प्रत्यायोजित कर सकता है । इस प्रकार, नियम 8 की स्पष्ट भाषा से यह स्पष्ट होता है कि नियुक्तियां अध्यक्ष द्वारा की जानी हैं किन्तु वह अपनी इन शक्तियों को सचिव को प्रत्यायोजित कर सकता है । वर्तमान मामले में, नियुक्ति पत्र अवर सचिव द्वारा जारी की गई है । नियुक्ति पत्र अवर सचिव द्वारा जारी किए जाने के लिए समनुदेशित कारण यह दिया गया है कि अध्यक्ष, सचिव विधान सभा के साथ कामनवेल्थ पार्लियामेंटरी एसोसिएशन कान्फरेंस में भाग लेने के लिए विदेशी यात्रा पर गए थे और अवर सचिव नियुक्ति पत्र जारी करने के लिए प्राधिकृत था । श्री अशोक शर्मा ऐसा कोई उपबंध इंगित करने में असफल रहे जिसके अधीन अवर सचिव को नियुक्ति पत्र जारी करने की शक्तियां प्रत्यायोजित की जा सकती थीं । यदि अध्यक्ष और सचिव विदेशी यात्रा पर थे तो नियुक्ति पत्र जारी करने को विलम्बित किया जा सकता था । अब यह सुस्थिर विधि है कि यदि संविधि में एक विशिष्ट प्रक्रिया विहित है तो उसका एकमात्र उसी तरीके से अनुसरण किया जाना चाहिए । नियुक्तियां अध्यक्ष द्वारा की गई थीं यद्यपि वह नियुक्ति करने का अधिकार सचिव को प्रत्यायोजित कर सकता था किन्तु नियुक्ति करने की शक्तियों का कोई आगे प्रत्यायोजन नहीं हो सकता था । इस प्रकार, श्री पी. डी. नन्दा की इस दलील में गुणागुण है कि प्रत्यर्थी सं. 7 से 9 को अवैध तौर पर नियुक्ति पत्र जारी किए गए हैं ।

10. श्री पी. डी. नन्दा ने यह भी तर्क दिया कि सामान्य संवर्ग अभ्यर्थियों के लिए दो पद थे किन्तु तीन पद भर लिए गए थे । उत्तर में यह आया है कि तारीख 7 जनवरी, 2011 के विज्ञापन में यह स्पष्ट किया गया था कि रिक्तियां घटाई-बढ़ाई जा सकती हैं । उत्तर के अनुसार ज्येष्ठ सहायक की भर्ती के पश्चात् जो रोस्टर के अनुसार था, एक प्रत्याशित रिक्ति होनी थी, जो सामान्य संवर्ग को जानी थी । सेवा विधिशास्त्र के अनुसार यह सुस्थिर है कि नियोजक हमेशा ही मेरिट सूची के अनुसार एक पैनल बना सकता है और पैनल का कार्यकाल नियमों के अनुसार होता है और इसके अभाव में, सुस्थिर विधि के अनुसार पैनल का कार्यकाल एक वर्ष का होना चाहिए । वर्तमान मामले में, प्रत्यर्थी सं. 9 का नाम पैनल से परे नियुक्ति के लिए सिफारिश की गई थी ।

11. याची तारीख 7 जनवरी, 2011 के विज्ञापन के साथ भर्ती और प्रोन्नति में अन्तर्विष्ट निबंधनों और शर्तों के बारे में जानते थे और उन्होंने चयन प्रक्रिया में भाग लिया । जब याची अर्हता प्राप्त नहीं कर सके तो उन्होंने चयन प्रक्रिया को आक्षेपित किया । न्यायालय का यह सुविचारित मत है कि याची इस प्रकार की प्रक्रिया अपनाए जाने के पश्चात् चयन प्रक्रिया को चुनौती देने से विबंधित है । यह विवादित नहीं है कि प्रत्यर्थी सं. 7 प्रत्यर्थी सं. 5 की पुत्री है, प्रत्यर्थी सं. 8 प्रत्यर्थी सं. 3 की पत्नी का भतीजा है और प्रत्यर्थी सं. 9 प्रत्यर्थी सं. 4 की साली का पुत्र है । मात्र इस आधार पर कि प्रत्यर्थी सं. 7 से 9 इन कृत्यकारियों से नजदीकी संबंध हैं, यह उपधारणा नहीं की जा सकती है कि उन्होंने असम्यक् रूप से चयन प्रक्रिया के दौरान उनका पक्ष लिया । प्रत्यर्थी सं. 7 से 9 लिखित परीक्षा में उपस्थित हुए और उसमें उत्तीर्ण हुए और टंकण परीक्षा में भी उत्तीर्ण हुए और उनकी मेरिट के अनुसार उन्हें नियुक्ति पत्र जारी किए गए । याची अभिलेख पर कोई विश्वसनीय साक्ष्य प्रस्तुत करते हुए यह सिद्ध करने में असफल रहे हैं कि प्राइवेट प्रत्यर्थियों का कृत्यकारियों ने असम्यक् रूप से पक्ष लिया । श्री अशोक शर्मा ने अभिलेखों के आधार पर यह निवेदन किया कि प्रत्यर्थी सं. 3, 4 और 5 चयन प्रक्रिया के दौरान संबद्ध नहीं थे ।

12. श्री पी. डी. नन्दा की इस दलील में कोई गुणागुण नहीं है कि याचियों का नए चयन समिति द्वारा साक्षात्कार लिया जाए । चयन प्रक्रिया विज्ञापन के आधार पर आरम्भ की गई थी जिसके परिणामस्वरूप प्रत्यर्थी सं. 7 से 9 को नियुक्ति पत्र जारी किए गए थे, में कोई गलती नहीं कही जा सकती है । चयन प्रक्रिया, भर्ती और प्रोन्नति नियमों के अधीन शासित थी और याचियों के साथ ही प्राइवेट प्रत्यर्थियों की उपयुक्तता का न्यायनिर्णयन करने के लिए नई चयन समिति गठित करने के लिए नियमों में कोई उपबंध नहीं है ।

13. तद्नुसार, इसमें उपर्युक्त रूप से की गई मताभिव्यक्तियों और विश्लेषणों को ध्यान में रखते हुए, याचिका भागतः मंजूर की जाती है । प्रत्यर्थी सं. 7 से 9 की नियुक्तियां अभिखंडित की जाती हैं क्योंकि उनके नियुक्ति पत्र सक्षम प्राधिकारी द्वारा जारी नहीं किए गए हैं । लम्बित आवेदन/आवेदनों, यदि कोई हों, का भी निपटारा किया जाता है । तथापि, खर्चे का कोई आदेश नहीं किया जा रहा है ।

रिट याचिका भागतः मंजूर की गई ।

क.

———

ममता देवी (श्रीमती)

बनाम

दिनेश कुमार

तारीख 14 जून, 2012

न्यायमूर्ति देव दर्शन सूद

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25) – धारा 28 – अपील – पत्नी द्वारा पति और उसके कुटुम्ब सदस्यों के विरुद्ध दहेज की मांग तथा क्रूरता कारित करने का आरोप लगाना – पति द्वारा पत्नी के विरुद्ध बिना किसी युक्तियुक्त कारण के अभित्यजन का आरोप लगाना – यदि अभिलेख पर के साक्ष्यों से यह साबित होता है कि पत्नी ने बिना किसी युक्तियुक्त कारण के अपने पति का अभित्यजन किया है और उसे फंसाने के लिए उसके तथा उसके कुटुम्ब सदस्यों के विरुद्ध दहेज की मांग करने और क्रूरता कारित करने का मिथ्या आरोप लगाया है और इन कलहपूर्ण परिस्थितियों में पति-पत्नी का एक साथ रहना असम्भव हो गया है तो पति की मांग पर विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित करना वैध और न्यायोचित है ।

वर्तमान मामले में, अर्जीदार ने अधिनियम की धारा 13(1)(ia) के अधीन एक अर्जी संस्थित की थी यह अभिवाक् करते हुए कि अर्जी के पक्षकारों के बीच ग्राम गंगठ में तारीख 16 अप्रैल, 2000 को हिन्दू धर्म, रीति-रिवाज और प्रथा के अनुसार विवाह हुआ था । दोनों पक्षकारों का विवाह होने के पश्चात् वे कुछ समय के लिए एक साथ रहे और उनके विवाह से एक बालिका नेहा पैदा हुई । यह दुर्भाग्य था कि बालिका सामान्य नहीं थी और मिरगी से ग्रसित थी । पति ने यह अभिवाक् किया कि वह अपनी पत्नी के साथ लगभग एक वर्ष तक साथ रहा जब तक कि उसका आचरण और व्यवहार सामान्य था । तारीख 2 फरवरी, 2001 को वह अपने माता-पिता के घर गंगठ में लगभग 2 दिनों के लिए रहने गई और जब वह उसे ससुराल से लेने गया तो उसके माता-पिता ने यह बहाना करके उसे वापस भेजने से इनकार कर दिया कि वह 15 दिन और उनके साथ

रहती । तारीख 19 फरवरी, 2001 को जब वह पुनः अपने ससुराल गया और उस समय वह अपने पिता के साथ था तब सुसराल वालों ने उसके साथ झगड़ा किया और उसे अगले दिन वापस भेज दिया । तारीख 4 मई, 2001 को पत्नी की ननद अदिती उसके पास गई और उसे भी दारी वापस भेज दिया । उसके साथ भी मार-पीट की गई । तारीख 5 मई, 2001 को अदिती ने टेलीफोन से अपने पिता से सम्पर्क किया तब अगली सुबह पत्नी के माता-पिता, भाई और नातेदार पति के घर आए जहां उन्होंने पूर्वाह्न 10.00 बजे से अपराह्न 4.00 बजे तक लगभग 6 घंटे तक झगड़ा किया इस बहाने पर कि वे अपीलार्थी को वापस ले जाना चाहते हैं । उसके बाद, पक्षकारों के बीच कुछ समझौता हुआ और उसे (पत्नी) को लगभग एक माह के लिए अपने माता-पिता के साथ जाने दिया गया और उस समय पर वह भी उसके साथ था और लगभग दो दिनों तक वह अपने ससुराल में रुका रहा । तथापि, जब वह अपने घर वापस आया तब उसने उसके भाई की धमकी भरा परिणाम भुगतने का टेलीफोन सुना । तारीख 5 जून, 2001 को वह पुनः अपने ससुराल गंगठ गया किन्तु वहां उसके साथ उसके माता-पिता, भाई और बहनों ने झगड़ा करते हुए अपीलार्थी को वापस भेजने से इनकार कर दिया और गंभीर परिणाम भुगतने की धमकी दी । उसके पश्चात् उसने महिला पुलिस सेल, धर्मशाला के समक्ष मामले में हस्तक्षेप और सहायता करने का निवेदन करते हुए पूर्ण वृत्तांत के साथ एक शिकायत प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए फाइल किया । संक्षेप में, शिकायत में तारीख 2 फरवरी, 2001 से तारीख 11 अगस्त, 2003 तक की सम्पूर्ण क्रमवार घटनाओं का वर्णन किया गया था जब यह शिकायत संस्थित की गई थी । इसके पश्चात् पत्नी वैवाहिक गृह में वापस आ गई और वहां लगभग 13 माह तक रही । पुनः तारीख 9 सितम्बर, 2004 को वह अर्जीदार को सूचित किए बिना तथा अपनी अवयस्क पुत्री को छोड़कर चली गई । यह अभिवाक् किया गया कि पत्नी अपने सभी जेवरात आदि भी लेकर चली गई थी । उसके बाद अर्जीदार अपने नातेदारों के साथ अपने ससुराल गया और अपनी पत्नी को उसके साथ वापस चलने का निवेदन किया किन्तु उसने ऐसा करने से स्पष्टतः इनकार कर दिया । उस समय पर उसे यह बताया गया कि यदि वह पुनः दोबारा आएगा तो उसकी हत्या कर दी जाएगी । इन सभी का अंत अन्ततोगत्वा भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 498-क, 506 सपठित धारा 34 के अधीन तारीख 4

नवम्बर, 2004 को संस्थित वाद सं. 410/11/04 के रूप में अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, नूरपुर, जिला कांगड़ा द्वारा विचारण और तारीख 17 जनवरी, 2006 के विनिश्चय से हुआ जिसमें अर्जीदार उसके पिता और माता अभियुक्त थे और जिसमें उन्हें दोषमुक्त कर दिया गया था । निर्णय को प्रदर्श पी-1 के रूप में अभिलेख पर रखा गया है । अपीलार्थी-पत्नी ने इस तथ्य से इनकार नहीं किया है कि उसकी पुत्री नेहा प्रत्यर्थी-पति के साथ रह रही है किन्तु उसने यह कथन करते हुए अन्य प्रकथनों से इनकार किया कि कुछ दबाव के अधीन उनके बीच समझौता आदि हो गया था और उसमें उसकी पुत्री नेहा को बलपूर्वक इस कारण से पति द्वारा अपने साथ ले जाया गया था कि उसके (अपीलार्थी) पास पर्याप्त आय नहीं है और पति ने यह अभिकथन किया था कि उसके पास अपनी पुत्री की देखभाल करने के लिए पर्याप्त निधि नहीं है । दोनों पक्षकारों ने साक्ष्य प्रस्तुत किया और प्रत्येक ने तीन साक्षियों की परीक्षा की । अर्जीदार ने अभिलेख पर प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए को साबित किया है जिसे उसके द्वारा अपनी कहानी का वर्णन करते हुए महिला पुलिस सेल, धर्मशाला में शिकायत फाइल की गई थी । उसने कई अवसरों पर यह सविस्तार उल्लेख किया है जिसमें उसकी पत्नी ने झगड़ा करते हुए उसका घर छोड़ दिया था, जिसके पश्चात् ऐसे कई अवसरों का वर्णन किया है जब वह अपनी पत्नी को वापस लाने गया था, काफी लम्बी अवधि तक उसकी पत्नी बिना उसकी सहमति से उसके घर से अनुपस्थित रहती थी । उसने यह निवेदन किया कि सम्पूर्ण अन्वेषण किया जाए । अर्जीदार-पति ने विद्वान् अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, नूरपुर द्वारा तारीख 17 जनवरी, 2006 को विनिश्चित मामला सं. 410-411/04 शीर्षक दिनेश कुमार और अन्य बनाम राज्य वाले मामले में दिए गए निर्णय का भी अवलंब लिया, जिसमें न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 498-क/ 506 सपठित धारा 34 के अधीन कोई मामला साबित नहीं किया गया है । इसमें का अपीलार्थी अभि. सा. 1 के रूप में उस मामले में उपस्थित हुआ था । न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि दहेज की कोई मांग नहीं की गई थी और यह कि पक्षकारों के बीच कुछ झगड़े हुए हैं किन्तु इसके अलावा यथाअभिकथित किसी अपराध में प्रत्यर्थी के माता और पिता की अन्तर्ग्रस्तता को दर्शित करने के लिए कोई साक्ष्य नहीं है । विवाह-विच्छेद की अर्जी में, विद्वान् न्यायालय ने पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य के आधार पर

पक्षकारों के बीच विवाह विघटित करते हुए विवाह-विच्छेद की डिक्री मंजूर कर ली थी । इससे व्यथित होकर वर्तमान अपील फाइल की गई । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल श्री अजय शर्मा ने यह तर्क दिया कि यह एक सामान्य वैवाहिक टूट-फूट का मामला है जहां पति और पत्नी के बीच कुछ झगड़े और घरेलू मनमुटाव होते हैं किन्तु यह जीवन की सामान्य घटना होती है और इसे किन्हीं भी परिस्थितियों में, हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13(1)(ik) में यथाअनुध्यात शारीरिक या मानसिक क्रूरता का कार्य गठित नहीं हो सकता है । उन्होंने यह निवेदन किया कि प्रदर्श डी-1 से प्रदर्श डी-5 जिन्हें अभिलेख पर साबित किया गया है, स्पष्टतः वर्णित और दर्शित करते हैं कि अपीलार्थी-पत्नी की कोई गलती नहीं है अपितु यह पति की ही गलती है जो पत्नी को वैवाहिक गृह छोड़ने के लिए पर्याप्त कारण उपलब्ध कराने का जिम्मेदार था । इन परिस्थितियों में, अभित्यजन का प्रश्न ही नहीं उठता है क्योंकि अभित्यजन का आशय अनुपस्थित था । सारांश में, उसका पक्षकथन यह है कि परिस्थिति/ परिस्थितियां पति द्वारा सृजित की गई हैं जिसमें पत्नी के लिए कोई विकल्प नहीं बचा था सिवाय पति का साथ छोड़ने के । अपीलार्थी द्वारा स्थापित पक्षकथन यह है कि जैसा विद्वान् काउंसेल द्वारा तर्क दिया गया है कि निचले न्यायालय ने साक्ष्य का गलत परिशीलन और गलत मूल्यांकन किया है और ऐसा निष्कर्ष निकाला है जिसे अभिलेख पर के सम्पूर्ण दस्तावेजी साक्ष्यों से किसी भी प्रकार का समर्थन नहीं मिलता है । उसके बाद, विद्वान् काउंसेल ने यह निवेदन किया कि दांडिक मामला फाइल करने से ही पत्नी के विरुद्ध ऐसी परिस्थिति निर्मित नहीं हो सकती है जैसा कि उसने उस क्रूरतापूर्ण कार्य के लिए प्रतितोष की ईप्सा करते हुए विधि के अधीन अपने अधिकारों का प्रयोग किया, जिसके कि वह अध्यधीन है । यदि निर्णय में दोषमुक्ति हो जाती है तो इससे इस तथ्य की दृढ़तापूर्वक अभिप्राय नहीं हो सकता है कि पत्नी ने मिथ्या कार्यवाहियां आरम्भ की थीं क्योंकि मामले का अभियोजन आरम्भ करना लोक अभियोजक की जिम्मेदारी थी । उन्होंने यह निवेदन किया कि यदि मामला ऐसा था (कार्यवाहियों का संस्थित किया जाना), तो पति और उसके माता-पिता द्वारा पत्नी और अन्य अन्तर्ग्रस्त व्यक्तियों के विरुद्ध विद्वेषपूर्ण अभियोजन

की कार्यवाहियां दर्ज कराई जा सकती थीं । अंतिम निवेदन का उल्लेख करते हुए, प्रथमतः, न्यायालय इस निवेदन से सहमत नहीं हो सकता है कि मात्र इस कारण से कि विद्वेषपूर्ण अभियोजन की कोई कार्यवाहियां फाइल नहीं की गई हैं, अपीलार्थी ने वाद योग्य साक्ष्य पर कार्य किया है । सम्पूर्ण कुटुम्ब को दांडिक कार्यवाहियों में न्यायालय में घसीटे जाने से, यह नहीं कहा जा सकता है कि मानसिक क्रूरता साबित नहीं होती है । निश्चित तौर पर, यदि इस विकल्प (विद्वेषपूर्ण अभियोजन की कार्यवाहियां आरम्भ करना) का पति और उसके कुटुम्ब सदस्यों द्वारा पुनः स्थापित किया जाता तो भी उसका कोई निष्कर्ष नहीं निकलता । यह मुश्किल से प्रत्याशा की जा सकती थी कि पक्षकार जो दांडिक/सिविल कार्यवाहियां लड़ रहे हों उनसे सामान्य परिस्थितियों के अधीन लम्बे समय तक एक साथ रहने की प्रत्याशा की जा सकती है । सत्यतः, यह स्थिति थी जिसमें मामले का अभियोजन किया जा रहा था किन्तु निश्चित तौर पर यह अपीलार्थी का ही साक्ष्य था, जो दूषित था । किन्तु न्यायालय इस मुद्दे का निर्णय बाद वाले भाग में उल्लेख करेगा । प्रथम पहलू यह है कि साक्ष्य का गलत परिशीलन और गलत मूल्यांकन हुआ है, न्यायालय यह अभिनिर्धारित नहीं करता है कि विद्वान् निचले न्यायालय ने यह त्रुटि कारित की है । मुझे विधि के इस सिद्धांत को दोहराने की आवश्यकता नहीं है कि तथ्य को भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 3 के अर्थान्तर्गत साबित किए जाने के पूर्व इस पर विचार किया जा सकता है जिसे सिद्ध किया जाना है । (पैरा 5, 6 और 7)

अभिलेख पर के साक्ष्यों का उल्लेख करते हुए, विद्वान् विचारण न्यायालय ने अभि. सा. 1 श्रीमती अरुण मित्रा, जो महिला पुलिस सेल की अन्वेषक अधिकारी थी, जिसने प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए को साबित किया और यह कथन किया कि तारीख 17 अगस्त, 2003 को उसने पक्षकारों को बुलाया जिसमें पत्नी और उसके संबंधी भी सम्मिलित थे और उससे अपने पति के साथ जाने के लिए कहा । उसके बाद उसने यह कथन किया कि पत्नी अपने पति के साथ जाने के लिए अनिच्छुक थी किन्तु उसके बाद अन्ततोगत्वा वह उसके और अपने कुटुम्ब सदस्यों की सलाह पर राजी हो गई । उसने अभिलेख पर समझौता प्रदर्श डी-3, पत्नी के पिता का कथन प्रदर्श डी-1 और अर्जीदार का कथन प्रदर्श डी-4 साबित किया । अर्जीदार और उसके पिता द्वारा फाइल आवेदन प्रदर्श डी-2 की प्रति उसके समक्ष

तारीख 20 अगस्त, 2003 को फाइल की गई थी । अभि. सा. 2 श्रीमती सविता कार्की, प्रधान, ओरम पंचायत, दारी ने यह कथन किया कि पत्नी द्वारा पंचायत के समक्ष एक आवेदन फाइल किया गया था । वह पति के घर गई थी जहां पत्नी व्यक्तिगत रूप से उपस्थित हुई थी । उस समय पर वह अपने बच्चे के साथ थी और उसने पक्षकारों के बीच मामला लटकाने में हस्तक्षेप किया । पत्नी को अपने माता-पिता के साथ अपने ससुराल जाने दिया गया और पक्षकारों के बीच लेखबद्ध समझौता प्रदर्श डी-5 किया गया । उसने यह स्वीकार किया कि तारीख 11 जुलाई, 2003 को ग्राम पंचायत द्वारा अग्रेषित पत्र प्रदर्श डी-6 को प्रधान, ग्राम पंचायत, गंगठ के पास भेजा गया था । पत्नी के साक्ष्य का उल्लेख करते हुए, न्यायालय ने यह नोट किया कि निर्णय की प्रति प्रदर्श पी-1 से यह सिद्ध होता है कि इसमें के पति और उसके पिता के विरुद्ध दांडिक मामला संस्थित किया गया था और उसमें उन्हें दोषमुक्त कर दिया गया था । पत्नी ने भी यह स्वीकार किया कि उसकी पुत्री नेहा मिरगी से ग्रसित है और उसने उसे अपने पति के पास छोड़ दिया था । अभिलेख पर के सम्पूर्ण सारांश से एक तथ्य यह सिद्ध होता है कि पत्नी ने या तो महिला सेल, पुलिस या पंचायत आदि द्वारा हस्तक्षेप करने से अपना मायका छोड़ दिया था । यह भी सिद्ध होता है कि पत्नी द्वारा प्रत्यर्थी-पति और उसके माता-पिता के विरुद्ध आपराधिक अभियोजन दर्ज कराया गया था जिसमें अन्ततोगत्वा उनकी दोषमुक्ति हो गई थी, इस निष्कर्ष के साथ कि पति के माता-पिता उनके विरुद्ध अभिकथित कार्य में कभी भी अन्तर्वलित नहीं थे । दहेज की कोई मांग या दहेज के लिए कोई प्रताड़ना अभिलेख पर के साक्ष्य द्वारा साबित नहीं की गई है । इस सत्यता के बारे में कोई संदेह नहीं है कि प्रत्येक पक्षकार न्यायालय के समक्ष अपनी/अपने अधिकारों को सिद्ध करने के लिए स्वतंत्र होता है किन्तु उस समय पर दांडिक न्याय व्यवस्था बिना किसी न्यायोचित कारण के मुकदमेबाजी में लोगों को घसीटने के लिए परेशान या प्रताड़ित करने की मशीनरी के रूप में कार्य नहीं कर सकता है । यह निवेदन किया गया कि अर्जीदार-पत्नी ने सही न्याय भावना के अधीन अपने अधिकार को सिद्ध करने की कोशिश की है, को इस कारण से स्वीकार नहीं किया जा सकता कि इस तथ्य को साबित करने के लिए अभिलेख पर साक्ष्य नहीं है । (पैरा 9, 10 और 11)

वर्तमान मामले के संदर्भ में, तथ्यों का उल्लेख करते हुए, न्यायालय पत्नी द्वारा फाइल दांडिक मामले में कोई न्यायौचित्यता साबित नहीं पाता है जिससे यह तथ्य साबित होता हो कि उसने वस्तुतः अपने अधिकार को सिद्ध किया है । अभिलेख पर ऐसी कोई सामग्री नहीं है जिससे कि पति या उसके कुटुम्ब सदस्यों द्वारा दहेज की मांग को किसी तरीके से साबित करती है । निसंस्देह, जैसा कि अभिनिर्धारित किया गया है, मात्र मामला संस्थित करने से ही अपने आप में क्रूरता सिद्ध करने के लिए पर्याप्त नहीं होता है अपितु अभिलेख पर यह न्यायौचित्यता सिद्ध करनी होती है कि ऐसी कार्यवाहियों को आरम्भ करने के लिए कुछ न्यायौचित्यता है । मैं निर्णय प्रदर्श पी-1 से ऐसा कोई अर्थ निकालने में असमर्थ हूं जिसे अभिलेख पर प्रस्तुत किया गया है । यह आधार अपने आप में ही अधिनियम की धारा 13(1)(ik) के अर्थान्तर्गत क्रूरता गठित करने के लिए पर्याप्त है जो विवाह-विच्छेद की डिक्री मंजूर करने के लिए आधार गठित करती है । दूसरी ओर, अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह निवेदन किया कि अभिलेख पर कोई अभित्यजन साबित नहीं किया गया है । न्यायालय स्वयमेव ही यह अभिनिर्धारित नहीं कर सकता है कि साक्ष्यों से ऐसा निष्कर्ष निकाला जा सकता है । अभिलेख पर यह सिद्ध होता है कि पत्नी ने अपनी उस पुत्री की देखभाल नहीं की जो मिरगी से ग्रसित थी । ऐसी माता के बारे में क्या कहा जा सकता है जिसने अपने बच्चे को ऐसी अवस्था में छोड़ दिया था और उसकी बाल्यावस्था में उसकी देखभाल करने के लिए कोई पूछताछ नहीं की थी, विनिर्दिष्टतः तब जब वह बिमारी से ग्रसित थी ? इस न्यायालय के समक्ष यह तर्क देने की ईप्सा की गई थी कि वह अपनी बच्ची की अभिरक्षा इस कारण से नहीं ले सकती थी कि उसके पास पर्याप्त धन नहीं था, इसे अभिलेख पर न तो अभिवाचित किया गया अथवा साबित किया गया न ही सिद्ध किया गया है । न्यायालय अभिलेख पर ऐसा कोई भी साक्ष्य नहीं पाता है जिससे कि माता द्वारा अपने अव्यस्क बालिका की संरक्षकता नहीं लेने को न्यायोचित ठहराता हो जिसका पिता और माता दोनों द्वारा युक्तियुक्त रूप से देखभाल करना चाहिए और करना चाहिए था । न्यायालय द्वारा विचारित अन्य साक्ष्य से यह उपदर्शित होता है कि अभिलेख पर लाए गए समझौते से एक चीज यह साबित होती है कि तथाकथित प्रत्येक समझौते के पश्चात् अपीलार्थी वापस आ जाती थी जहां पुनः अन्य समझौता किया जाता था, दूसरे शब्दों में, यह कहा जा

सकता है कि तथाकथित समझौते पर कार्य करने का कोई आशय नहीं होता था अपितु मात्र यह साक्ष्य या सामग्री सृजित करने का आशय होता था जिससे कि यह दर्शित हो सके कि समझौते के अनुसार और समझौते की भावना के अनुसार कार्य किया गया । अभिलेखों से न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त साक्ष्य हैं कि पत्नी ने बिना किसी न्यायोचित कारण के अपने पति का साथ छोड़ दिया है । अभित्यजन का आशय साबित होता है । इन परिस्थितियों में यह अपील खारिज की जाती है । खर्चे का कोई आदेश नहीं किया जाता है । (पैरा 17, 18, 19 और 21)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2011] 2011 (2) शिमला एस. सी. 307 :
श्रीमती कमलेश कुमारी बनाम **श्री विनोद कुमार** ; 13

[2010] ए. आई. आर. 2010 बाम्बे 16 :
श्रीमती दीप लक्ष्मी सचिन जिंदगें बनाम **सचिन रमेशराव जिंदगें** ; 13

[2008] 2008 (1) शिमला एल. सी. 198 :
श्री चन्द्र प्रकाश शर्मा बनाम **श्रीमती कौशल्या देवी** ; 15

[2007] ए. आई. आर. 2007 हिमाचल प्रदेश 96 :
हरजीत कौर बनाम **भूपिन्दर सिंह** ; 20

[2007] 2007 (1) शिमला एल. सी. 327 :
मोहन सिंह बनाम **लीला देवी** ; 20

[2006] 2006 (1) शिमला एल. सी. 397 :
मनदीप कौर बनाम **सुखदेव सिंह** ; 14

[2006] (2006) 4 एस. सी. सी. 558 :
नवीन कोहली बनाम **नीलू कोहली** ; 12

[2006] 2006 (2) सिविल कोर्ट केसेज 298 (आंध्र प्रदेश) (खंड न्यायपीठ) :
गजाला शंकर बनाम **अनुराधा** ; 15

[2003] (2003) 8 एस. सी. सी. 752 :
आर. वी. ई. वेंकटचलैय्या गाउन्डर बनाम **अरुलमिगू विश्वेश्वरस्वामी और वी. पी. टेम्पल और एक अन्य** ; 7

[1995] 1995 (2) आई. एल. आर. 117 :
श्रीमती उपनेश कुमारी बनाम **कमलेश कुमार** । 16

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2008 की एफ. ए. ओ. (एच. एम. ए.) सं. 458.

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 28 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री अजय शर्मा, अधिवक्ता

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री भूपेन्द्र गुप्ता, ज्येष्ठ अधिवक्ता के साथ जनेश गुप्ता, अधिवक्ता

न्यायमूर्ति देव दर्शन सूद – यह अपील उस पत्नी द्वारा प्रस्तुत की गई है जो विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश (I), कांगड़ा, धर्मशाला द्वारा पारित निर्णय और डिक्री के विरुद्ध (विचारण न्यायालय के समक्ष) प्रत्यर्थी थी जिन्होंने इसमें के प्रत्यर्थी (जो विद्वान् विचारण न्यायालय के समक्ष अर्जीदार था) पति को विवाह-विच्छेद की डिक्री हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "अधिनियम" कहा गया है) की धारा 13(1)(ik) के अधीन क्रूरता और अभित्यजन के आधार पर मंजूर कर ली थी ।

2. अविवादित तथ्य यह हैं कि अर्जीदार ने अधिनियम की धारा 13(1)(ik) के अधीन एक अर्जी संस्थित की थी यह अभिवाक् करते हुए कि अर्जी के पक्षकारों के बीच ग्राम गंगठ में तारीख 16 अप्रैल, 2000 को हिन्दू धर्म, रीति-रिवाज और प्रथा के अनुसार विवाह हुआ था । दोनों पक्षकारों का विवाह होने के पश्चात् वे कुछ समय के लिए एक साथ रहे और उनके विवाह से एक बालिका नेहा पैदा हुई । यह दुर्भाग्य था कि बालिका सामान्य नहीं थी और मिरगी से ग्रसित थी । पति ने यह अभिवाक् किया कि वह अपनी पत्नी के साथ लगभग एक वर्ष तक रहा जब तक कि उसका आचरण और व्यवहार सामान्य था । तारीख 2 फरवरी, 2001 को वह अपने माता-पिता के घर गंगठ में लगभग 2 दिनों के लिए रहने गई और जब वह उसे ससुराल से लेने गया तो उसके माता-पिता ने यह बहाना

करके उसे वापस भेजने से इनकार कर दिया कि वह 15 दिन और उनके साथ रहेगी । तारीख 19 फरवरी, 2001 को जब वह पुनः अपने ससुराल गया और उस समय वह अपने पिता के साथ था तब सुसराल वालों ने उसके साथ झगड़ा किया और उसे अगले दिन वापस भेज दिया । तारीख 4 मई, 2001 को पत्नी की ननद अदिती उसके पास गई और उसे भी दारी वापस भेज दिया । उसके साथ भी मार-पीट की गई । तारीख 5 मई, 2001 को अदिती ने टेलीफोन से अपने पिता से सम्पर्क किया तब अगली सुबह पत्नी के माता-पिता, भाई और नातेदार पति के घर आए जहां उन्होंने पूर्वाह्न 10.00 बजे से अपराह्न 4.00 बजे तक लगभग 6 घंटे तक झगड़ा किया इस बहाने पर कि वे अपीलार्थी को वापस ले जाना चाहते हैं । उसके बाद, पक्षकारों के बीच कुछ समझौता हुआ और उसे (पत्नी) को लगभग एक माह के लिए अपने माता-पिता के साथ जाने दिया गया और उस समय पर वह भी उसके साथ था और लगभग दो दिनों तक वह अपने ससुराल में रुका रहा । तथापि, जब वह अपने घर वापस आया तब उसने उसके भाई की धमकी भरा परिणाम भुगतने का टेलीफोन सुना । तारीख 5 जून, 2001 को वह पुनः अपने ससुराल गंगठ गया किन्तु वहां उसके साथ उसके माता-पिता, भाई और बहनों ने झगड़ा करते हुए अपीलार्थी को वापस भेजने से इनकार कर दिया और गंभीर परिणाम भुगतने की धमकी दी । उसके पश्चात् उसने महिला पुलिस सेल, धर्मशाला के समक्ष मामले में हस्तक्षेप और सहायता करने का निवेदन करते हुए पूर्ण वृत्तांत के साथ एक शिकायत प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए फाइल किया । संक्षेप में, शिकायत में तारीख 2 फरवरी, 2001 से तारीख 11 अगस्त, 2003 तक की सम्पूर्ण क्रमवार घटनाओं का वर्णन किया गया था जब यह शिकायत संस्थित की गई थी । इसके पश्चात् पत्नी वैवाहिक गृह में वापस आ गई और वहां लगभग 13 माह तक रही । पुनः तारीख 9 सितम्बर, 2004 को वह अर्जीदार को सूचित किए बिना तथा अपनी अव्यस्यक पुत्री को छोड़कर चली गई । यह अभिवाक् किया गया कि पत्नी अपने सभी जेवरात आदि भी लेकर चली गई थी । उसके बाद अर्जीदार अपने नातेदारों के साथ अपने ससुराल गया और अपनी पत्नी को उसके साथ वापस चलने का निवेदन किया किन्तु उसने ऐसा करने से स्पष्टतः इनकार कर दिया । उस समय पर उसे यह बताया गया कि यदि वह पुनः दोबारा आएगा तो उसकी हत्या कर दी जाएगी । इन सभी का अंत अन्ततोगत्वा भारतीय दंड संहिता,

1860 की धारा 498-क, 506 सपठित धारा 34 के अधीन तारीख 4 नवम्बर, 2004 को संस्थित वाद सं. 410/11/04 के रूप में अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, नूरपुर, जिला कांगड़ा द्वारा विचारण और तारीख 17 जनवरी, 2006 के विनिश्चय से हुआ जिसमें अर्जीदार उसके पिता और माता अभियुक्त थे और जिसमें उन्हें दोषमुक्त कर दिया गया था । निर्णय को प्रदर्श पी-1 के रूप में अभिलेख पर रखा गया है । अपीलार्थी-पत्नी ने इस तथ्य से इनकार नहीं किया है कि उसकी पुत्री नेहा प्रत्यर्थी-पति के साथ रह रही है किन्तु उसने यह कथन करते हुए अन्य प्रकथनों से इनकार किया कि कुछ दबाव के अधीन उनके बीच समझौता आदि हो गया था और उसमें उसकी पुत्री नेहा को बलपूर्वक इस कारण से पति द्वारा अपने साथ ले जाया गया था कि उसके (अपीलार्थी) पास पर्याप्त आय नहीं है और पति ने यह अभिकथन किया था कि उसके पास अपनी पुत्री की देखभाल करने के लिए पर्याप्त निधि नहीं है । दोनों पक्षकारों ने साक्ष्य प्रस्तुत किया और प्रत्येक ने तीन साक्षियों की परीक्षा की ।

3. अर्जीदार ने अभिलेख पर प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए को साबित किया है जिसे उसके द्वारा अपनी कहानी का वर्णन करते हुए महिला पुलिस सेल, धर्मशाला में शिकायत फाइल की गई थी । उसने कई अवसरों पर यह सविस्तार उल्लेख किया है जिसमें उसकी पत्नी ने झगड़ा करते हुए उसका घर छोड़ दिया था, जिसके पश्चात् ऐसे कई अवसरों का वर्णन किया है जब वह अपनी पत्नी को वापस लाने गया था, काफी लम्बी अवधि तक उसकी पत्नी बिना उसकी सहमति से उसके घर से अनुपस्थित रहती थी । उसने यह निवेदन किया कि सम्पूर्ण अन्वेषण किया जाए । अर्जीदार-पति ने विद्वान् अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, नूरपुर द्वारा तारीख 17 जनवरी, 2006 को विनिश्चित मामला सं. 410-411/04 शीर्षक दिनेश कुमार और अन्य बनाम राज्य वाले मामले में दिए गए निर्णय का भी अवलंब लिया, जिसमें न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 498-क, 506 सपठित धारा 34 के अधीन कोई मामला साबित नहीं किया गया है । इसमें का अपीलार्थी अभि. सा. 1 के रूप में उस मामले में उपस्थित हुआ था । न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि दहेज की कोई मांग नहीं की गई थी और यह कि पक्षकारों के बीच कुछ झगड़े हुए हैं किन्तु इसके अलावा यथाअभिकथित किसी अपराध में

प्रत्यर्थी के माता और पिता की अन्तर्ग्रस्तता को दर्शित करने के लिए कोई साक्ष्य नहीं है । विवाह-विच्छेद की अर्जी में, विद्वान् न्यायालय ने पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य के आधार पर पक्षकारों के बीच विवाह विघटित करते हुए विवाह-विच्छेद की डिक्री मंजूर कर ली थी ।

4. मैंने पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल को सुना और मामले के अभिलेखों का परिशीलन किया ।

5. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल श्री अजय शर्मा ने यह तर्क दिया कि यह एक सामान्य वैवाहिक टूट-फूट का मामला है जहां पति और पत्नी के बीच कुछ झगड़े और घरेलू मनमुटाव होते हैं किन्तु यह जीवन की सामान्य घटना होती है और इसे किन्हीं भी परिस्थितियों में, हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13(1)(ik) में यथाअनुध्यात शारीरिक या मानसिक क्रूरता का कार्य गठित नहीं हो सकता है । उन्होंने यह निवेदन किया कि प्रदर्श डी-1 से प्रदर्श डी-5 जिन्हें अभिलेख पर साबित किया गया है, स्पष्टतः वर्णित और दर्शित करते हैं कि अपीलार्थी-पत्नी की कोई गलती नहीं है अपितु यह पति की ही गलती है जो पत्नी को वैवाहिक गृह छोड़ने के लिए पर्याप्त कारण उपलब्ध कराने का जिम्मेदार था । इन परिस्थितियों में, अभित्यजन का प्रश्न ही नहीं उठता है क्योंकि अभित्यजन का आशय अनुपस्थित था । सारांश में, उसका पक्षकथन यह है कि परिस्थिति/ परिस्थितियां पति द्वारा सृजित की गई हैं जिसमें पत्नी के लिए कोई विकल्प नहीं बचा था सिवाय पति का साथ छोड़ने के । अपीलार्थी द्वारा स्थापित पक्षकथन यह है कि जैसा विद्वान् काउंसेल द्वारा तर्क दिया गया है कि निचले न्यायालय ने साक्ष्य का गलत परिशीलन और गलत मूल्यांकन किया है और ऐसा निष्कर्ष निकाला है जिसे अभिलेख पर के सम्पूर्ण दस्तावेजी साक्ष्यों से किसी भी प्रकार का समर्थन नहीं मिलता है । उसके बाद, विद्वान् काउंसेल ने यह निवेदन किया कि दांडिक मामला फाइल करने से ही पत्नी के विरुद्ध ऐसी परिस्थिति निर्मित नहीं हो सकती है जैसा कि उसने उस क्रूरतापूर्ण कार्य के लिए प्रतितोष की ईप्सा करते हुए विधि के अधीन अपने अधिकारों का प्रयोग किया, जिसके कि वह अध्यधीन है । यदि निर्णय में दोषमुक्ति हो जाती है तो इससे इस तथ्य की दृढ़तापूर्वक अभिप्राय नहीं हो सकता है कि पत्नी ने मिथ्या कार्यवाहियां आरम्भ की थीं क्योंकि मामले का अभियोजन आरम्भ करना लोक अभियोजक की

जिम्मेदारी थी । उन्होंने यह निवेदन किया कि यदि मामला ऐसा था (कार्यवाहियों का संस्थित किया जाना), तो पति और उसके माता-पिता द्वारा पत्नी और अन्य अन्तर्ग्रस्त व्यक्तियों के विरुद्ध विद्वेषपूर्ण अभियोजन की कार्यवाहियां दर्ज कराई जा सकती थीं ।

6. अंतिम निवेदन का उल्लेख करते हुए, प्रथमतः, मैं इस निवेदन से सहमत नहीं हो सकता हूं कि मात्र इस कारण से कि विद्वेषपूर्ण अभियोजन की कोई कार्यवाहियां फाइल नहीं की गई हैं, अपीलार्थी ने वाद योग्य साक्ष्य पर कार्य किया है । सम्पूर्ण कुटुम्ब को दांडिक कार्यवाहियों में न्यायालय में घसीटे जाने से, यह नहीं कहा जा सकता है कि मानसिक क्रूरता साबित नहीं होती है । निश्चित तौर पर, यदि इस विकल्प (विद्वेषपूर्ण अभियोजन की कार्यवाहियां आरम्भ करना) का पति और उसके कुटुम्ब सदस्यों द्वारा पुनः स्थापित किया जाता तो भी उसका कोई निष्कर्ष नहीं निकलता । यह मुश्किल से प्रत्याशा की जा सकती थी कि पक्षकार जो दांडिक/सिविल कार्यवाहियां लड़ रहे हों उनसे सामान्य परिस्थितियों के अधीन लम्बे समय तक एक साथ रहने की प्रत्याशा की जा सकती है । सत्यतः, यह स्थिति थी जिसमें मामले का अभियोजन किया जा रहा था किन्तु निश्चित तौर पर यह अपीलार्थी का ही साक्ष्य था, जो दूषित था । किन्तु मैं इस मुद्दे का निर्णय वाद वाले भाग में उल्लेख करूंगा ।

7. प्रथम पहलू यह है कि साक्ष्य का गलत परिशीलन और गलत मूल्यांकन हुआ है, मैं यह अभिनिर्धारित नहीं करता हूं कि विद्वान् निचले न्यायालय ने यह त्रुटि कारित की है । मुझे विधि के इस सिद्धांत को दोहराने की आवश्यकता नहीं है कि तथ्य को भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 3 के अर्थान्तर्गत साबित किए जाने के पूर्व इस पर विचार किया जा सकता है जिसे सिद्ध किया जाना है । **आर. वी. ई. वेंकटचलैय्या गाउन्डर** बनाम **अरुलमिगू विश्वेश्वरस्वामी और वी. पी. टेम्पल और एक अन्य**[1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि सिविल और दांडिक दोनों कार्यवाहियों में तथ्य को साबित करने के लिए अपेक्षित सबूत के मानक एक समान हैं । माननीय उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि :–

---

[1] (2003) 8 एस. सी. सी. 752.

"28. क्या सिविल या दांडिक मामले में भारतीय दंड संहिता, 1872 की धारा 3 में यथापरिभाषित 'साबित', 'नासाबित' और 'साबित नहीं हुआ' का प्रमाणन एक ही है और एक समान है । कोई तथ्य साबित हुआ कहा जाता है, जब न्यायालय अपने समक्ष के विषयों पर विचार करने के पश्चात् या तो यह विश्वास करे कि उस तथ्य का अस्तित्व है या उसके अस्तित्व को इतना अधिसम्भाव्य समझे कि उस विशिष्ट मामले की परिस्थितियों में किसी प्रज्ञावान व्यक्ति को इस अनुमान पर कार्य करना चाहिए कि उस तथ्य का अस्तित्व है । यह नियमों की प्रयोज्यता द्वारा निकाले गए परिणाम का मूल्यांकन होता है जो विभेद पैदा करती है । तथापि, सिविल और दांडिक मामलों में साक्ष्य की अधिसंभाव्यता का प्रभाव हमेशा ही एक नहीं होते हैं और यह अधिकथित किया गया है कि सिविल वाद के प्रयोजनों के लिए साबित के रूप में तथ्य हो सकते हैं यद्यपि दांडिक मामले में दोषसिद्धि के लिए पर्याप्त रूप से साक्ष्य पर विचार नहीं हो सकता है । बेस्ट ने यह कथन किया है कि सिविल और दांडिक कार्यवाहियों में साक्ष्य के प्रभाव के रूप में मजबूत और चिन्हित विभेद होते हैं । मात्र अधिसंभाव्यता की प्रबलता के पूर्व साबित करने का भार होने के कारण निर्णय के आधार के लिए पर्याप्त है, किन्तु बाद में विनिर्दिष्टतया तब जब प्रभारित अपराध बेईमानी और महापराध की कोटि में आता है, जिसमें सुनिश्चितता की अत्यधिक उच्चतर डिग्री अपेक्षित होती है (बेस्ट, एस. 95) । जबकि सिविल मामलों में साक्ष्य की मात्र अधिसंभाव्यता के द्वारा साबित किया जा सकता है, दांडिक मामलों में अभियोजन पक्ष को युक्तियुक्त संदेह के परे आरोप को साबित किया जाना चाहिए (देखें - सरकार आन इविडेन्स, 15वां संस्करण, पृष्ठ 58-59) । लार्ड डेनिम के शब्दों [बटर बनाम बी. 1950 (2) इलाहाबाद ई. आर. 458-459] में यह सत्य है कि हमारे विधि द्वारा सिविल मामलों के मुकाबले दांडिक मामले में सबूत का मानक उच्चतर है किन्तु यह इस अर्हता के अधीन है कि या तो सिविल या दांडिक मामलों में सम्पूर्ण मानक नहीं हैं । दांडिक मामलों में आरोप को युक्तियुक्त संदेह के परे साबित किया जाना चाहिए किन्तु यह उस मानक के भीतर साबित करने की डिग्री होनी चाहिए । इसलिए, सिविल मामलों में भी अधिसंभाव्यता की डिग्री हो सकती है ।

विधि के इस कथन से सहमति जताते हुए लार्ड हडसन ने यह कहा है कि सिविल मामलों में भी न्याय की अधिसंभाव्यता का संतुलन एक मामले के मुकाबले दूसरे मामलों में वस्तुतः अधिक हो सकता है, क्योंकि दांडिक मामलों में युक्तियुक्त संदेह के परे साबित करने की वास्तविकता कुछ मामलों के मुकाबले अन्य मामलों में अधिक हो सकता है हार्नल बनाम न्यूबर्गल प्रोडक्स लि. [(1956) 3 इलाहाबाद ई. आर. 970, पृष्ठ 977 डी] ।"

8. यह साक्ष्य का मूल्यांकन है और उस पर निकाला गया निष्कर्ष है जो सिविल/दांडिक मामलों के बीच भिन्नता पैदा करता है । सिविल मामलों में यह अधिसंभाव्यता का प्रबलता द्वारा होता है और दांडिक मामलों में यह युक्तियुक्त संदेह के परे सबूत होता है ।

9. अभिलेख पर के साक्ष्यों का उल्लेख करते हुए, विद्वान् विचारण न्यायालय ने अभि. सा. 1 श्रीमती अरुण मित्रा, जो महिला पुलिस सेल की अन्वेषक अधिकारी थी, जिसने प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए को साबित किया और यह कथन किया कि तारीख 17 अगस्त, 2003 को उसने पक्षकारों को बुलाया जिसमें पत्नी और उसके संबंधी भी सम्मिलित थे और उससे अपने पति के साथ जाने के लिए कहा । उसके बाद उसने यह कथन किया कि पत्नी अपने पति के साथ जाने के लिए अनिच्छुक थी किन्तु उसके बाद अन्ततोगत्वा वह उसके और अपने कुटुम्ब सदस्यों की सलाह पर राजी हो गई । उसने अभिलेख पर समझौता प्रदर्श डी-3, पत्नी के पिता का कथन प्रदर्श डी-1 और अर्जीदार का कथन प्रदर्श डी-4 साबित किया । अर्जीदार और उसके पिता द्वारा फाइल आवेदन प्रदर्श डी-2 की प्रति उसके समक्ष तारीख 20 अगस्त, 2003 को फाइल की गई थी ।

10. अभि. सा. 2 श्रीमती सविता कार्की, प्रधान, ओरम पंचायत, दारी ने यह कथन किया कि पत्नी द्वारा पंचायत के समक्ष एक आवेदन फाइल किया गया था । वह पति के घर गई थी जहां पत्नी व्यक्तिगत रूप से उपस्थित हुई थी । उस समय पर वह अपने बच्चे के साथ थी और उसने पक्षकारों के बीच मामला लटकाने में हस्तक्षेप किया । पत्नी को अपने माता-पिता के साथ अपने ससुराल जाने दिया गया और पक्षकारों के बीच लेखबद्ध समझौता प्रदर्श डी-5 किया गया । उसने यह स्वीकार किया कि तारीख 11 जुलाई, 2003 को ग्राम पंचायत द्वारा अग्रेषित पत्र प्रदर्श डी-6

को प्रधान, ग्राम पंचायत, गंगठ के पास भेजा गया था ।

11. पत्नी के साक्ष्य का उल्लेख करते हुए, न्यायालय ने यह नोट किया कि निर्णय की प्रति प्रदर्श पी-1 से यह सिद्ध होता है कि इसमें के पति और उसके पिता के विरुद्ध दांडिक मामला संस्थित किया गया था और उसमें उन्हें दोषमुक्त कर दिया गया था । पत्नी ने भी यह स्वीकार किया कि उसकी पुत्री नेहा मिरगी से ग्रसित है और उसने उसे अपने पति के पास छोड़ दिया था । अभिलेख पर के सम्पूर्ण सारांश से एक तथ्य यह सिद्ध होता है कि पत्नी ने या तो महिला सेल, पुलिस या पंचायत आदि द्वारा हस्तक्षेप करने से अपना मायका छोड़ दिया था । यह भी सिद्ध होता है कि पत्नी द्वारा प्रत्यर्थी-पति और उसके माता-पिता के विरुद्ध आपराधिक अभियोजन दर्ज कराया गया था जिसमें अन्ततोगत्वा उनकी दोषमुक्ति हो गई थी, इस निष्कर्ष के साथ कि पति के माता-पिता उनके विरुद्ध अभिकथित कार्य में कभी भी अन्तर्वलित नहीं थे । दहेज की कोई मांग या दहेज के लिए कोई प्रताड़ना अभिलेख पर के साक्ष्य द्वारा साबित नहीं की गई है । इस सत्यता के बारे में कोई संदेह नहीं है कि प्रत्येक पक्षकार न्यायालय के समक्ष अपनी/अपने अधिकारों को सिद्ध करने के लिए स्वतंत्र होता है किन्तु उस समय पर दांडिक न्याय व्यवस्था बिना किसी न्यायोचित कारण के मुकदमेबाजी में लोगों को घसीटने के लिए परेशान या प्रताड़ित करने की मशीनरी के रूप में कार्य नहीं कर सकता है । यह निवेदन किया गया कि अर्जीदार-पत्नी ने सही न्याय भावना के अधीन अपने अधिकार को सिद्ध करने की कोशिश की है, को इस कारण से स्वीकार नहीं किया जा सकता कि इस तथ्य को साबित करने के लिए अभिलेख पर साक्ष्य नहीं है ।

12. **नवीन कोहली** बनाम **नीलू कोहली**[1] वाले मामले में न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

> "63. .....
>
> 11. अभिव्यक्ति 'क्रूरता' का प्रयोग मानवीय आचरण या मानवीय व्यवहार के बारे में प्रयोग किया गया है । यह वैवाहिक कर्तव्यों और बाध्यताओं से संबंधित या के बारे में आचरण से होता

[1] (2006) 4 एस. सी. सी. 558.

है । क्रूरता उन अनुक्रमों या आचरण में से एक होता है जिससे दूसरा पक्षकार प्रतिकूल रूप से प्रभावित होता है । क्रूरता मानसिक या शारीरिक, सआशय या बिना आशय के हो सकता है । यदि यह शारीरिक है तो न्यायालय को इसका अवधारण में कोई समस्या नहीं होती है । यह तथ्य और डिग्री का प्रश्न है । यदि यह मानसिक है तो कई कठिनाइयों को प्रस्तुत करता है । प्रथमतः इस बात की जांच की जानी चाहिए कि क्रूरता व्यवहार की प्रकृति क्या है, द्वितीयतः ऐसे व्यवहार का पति/पत्नी के मस्तिष्क पर क्या प्रभाव पड़ता है, क्या यह युक्तियुक्त प्रत्याशा कारित करता है कि पति और पत्नी का एक दूसरे के साथ रहना कष्टदायक या जोखिमपूर्ण हो जाएगा । अन्ततोगत्वा मामले में ऐसे आचरण की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए निष्कर्ष निकाला जाएगा और इसका प्रभाव शिकायत करने वाले पति/पत्नी पर पड़ेगा, तथापि, यह कारण हो सकता है कि शिकायती आचरण स्वयमेव ही पर्याप्त रूप से दूषित तथा अविधिमान्य या अवैध हो । उसके बाद, दूसरे पक्षकार पर पड़ने वाले प्रभाव या जोखिम की जांच या विचार करने की आवश्यकता नहीं रह जाती है । ऐसे मामलों में, क्रूरता सिद्ध होगी यदि स्वयमेव ही ऐसा आचरण साबित होता है या स्वीकार किया जाता है [देखें - शोभा रानी **बनाम** मधुकर रेड्डी (1988) 1 एस. सी. सी. 105] ।"

13. **श्रीमती कमलेश कुमारी** बनाम **श्री विनोद कुमार**[1] वाले मामले में अन्य बातों के साथ यह अभिनिर्धारित किया गया कि मिथ्या दांडिक कार्यवाहियां संस्थित करना, अधिनियम की धारा 13(1)(ik) के अर्थान्तर्गत क्रूरता गठित करता है । बाम्बे उच्च न्यायालय ने **श्रीमती दीप लक्ष्मी सचिन जिंदगें** बनाम **सचिन रमेशराव जिंदगें**[2] मामले में यह अभिनिर्धारित किया कि मात्र कार्यवाहियां संस्थित करने से ही क्रूरता गठित नहीं होती है जिस पर **कमलेश कुमारी** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए निर्णय में विचार किया गया था ।

14. **मनदीप कौर** बनाम **सुखदेव सिंह**[3] वाले मामले में माननीय न्यायमूर्ति दीपक गुप्ता ने अन्य बातों के साथ यह अभिनिर्धारित किया है कि

---

[1] 2011 (2) शिमला एल. सी. 307.

[2] ए. आई. आर. 2010 बाम्बे 16.

[3] 2006 (1) शिमला एल. सी. 397.

भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 498-क, 406 और 120-ख के अधीन मामला संस्थित करना जिसके परिणामस्वरूप पति को गिरफ्तार किया जाता है और पत्नी तथा उसके पिता की प्रेरणा पर पुलिस द्वारा पति को हथकड़ी लगाई जाती है तो इससे यह विवाह-विच्छेद के आधार के रूप में क्रूरता गठित करने के लिए पर्याप्त कारण बनता है । तत्कालीन न्यायमूर्ति ने यह अभिनिर्धारित किया कि :–

> "12. ..... यह सुस्थिर विधि है कि यदि पति/पत्नी में से कोई एक दूसरे के विरुद्ध मिथ्या हेतुक फाइल करता है तो यह क्रूरता की कोटि में आएगा । यह भी सत्य है कि किसी एक पति/पत्नी द्वारा दूसरे के विरुद्ध मात्र दांडिक कार्यवाहियां संस्थित करने से ही क्रूरता का कार्य गठित नहीं होता है जब तक कि इन अभिकथनों से मिथ्या दर्शित नहीं होता है । पक्षकार में से एक की दोषमुक्ति से अभिप्राय यह नहीं होगा कि अभिकथन मिथ्या थे । दांडिक कार्यवाहियों में दोषिता युक्तियुक्त संदेह के परे साबित होना चाहिए क्योंकि व्यक्ति कारावास के लिए दंडादिष्ट किया जाता है और दांडिक परिणाम भुगतता है । दूसरी ओर, सिविल कार्यवाहियों में साक्ष्य की प्रबलता होती है जो सुसंगत हैं ।"

15. **श्री चन्द्र प्रकाश शर्मा** बनाम **श्रीमती कौशल्या देवी**[1] वाले मामले में न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि लम्बे समय तक सहवास नहीं होने से और ज्येष्ठ अधिकारियों के विरुद्ध निराधार शिकायत करने से भी अधिनियम के अर्थान्तर्गत क्रूरता गठित होती है । मैं **गजाला शंकर** बनाम **अनुराधा**[2] वाले मामले में आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के विनिश्चय को भी निर्दिष्ट करना चाहता हूं जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि :–

> "10. सामान्य अनुक्रम में, भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 498-क के अधीन अपराध के लिए मात्र मामला फाइल करने से ही यह अभिनिर्धारित करने के लिए पर्याप्त आधार नहीं हो सकता है कि उक्त कार्य क्रूरता की कोटि में आएगा । किन्तु वर्तमान मामले में यह प्रतीत होता है कि दांडिक मामला न केवल पति के विरुद्ध दर्ज

---

[1] 2008 (1) शिमला एल. सी. 198.

[2] 2006 (2) सिविल कोर्ट केसेज 298 (आंध्र प्रदेश)(खंड न्यायपीठ).

कराया गया था अपितु उसके माता-पिता और बहन के विरुद्ध भी दर्ज कराया गया था जिसके परिणामस्वरूप पति और अन्य तीन व्यक्ति आरम्भतः कुछ समय के लिए कारागार में रहे । यह स्वाभाविक तौर पर किसी भी व्यक्ति के सामाजिक स्तर को प्रभावित करता है जिसमें वह व्यक्ति भी सम्मिलित होता है जो उक्त अपराध का वस्तुतः दोषी नहीं होता है । जैसा कि पहले ही उल्लेख किया जा चुका है, इस मामले में न्यायालय ने सभी व्यक्तियों को भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 498-क के अधीन अपराध से दोषमुक्त कर दिया था । पति के साथ ही साथ उसके माता-पिता और बहन भी दांडिक मामला फाइल करने की तारीख से दोषमुक्ति होने तक विभिन्न प्रकार से पीड़ित रहे होंगे जिसकी कल्पना आसानी से की जा सकती है ।

13. **अंगला पदमला** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के खंड न्यायपीठ ने यह अभिनिर्धारित किया कि भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 498-क के अधीन और साथ ही दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 125 के अधीन भरण-पोषण के लिए याचिका फाइल करने से पत्नी का आशय यह उपदर्शित होता है कि वह स्थायी रूप से वैवाहिक गृह छोड़ने का आशय रखती है । वर्तमान मामले में भी, जैसा कि पहले ही उपदर्शित किया जा चुका है, पत्नी ने अपने पति और अपने ससुराल वालों के विरुद्ध दांडिक मामला फाइल किया था जिसे दांडिक न्यायालय द्वारा साबित होना अभिनिर्धारित किया गया था और उसने भरण-पोषण के लिए भी मामला फाइल किया था जिसे मंजूर कर लिया जाना प्रतीत होता है । ये दोनों तथ्य आधारभूत रूप से पत्नी की उस इच्छा को मजबूती तौर पर साबित करते हैं कि वह अपने पति और अपने वैवाहिक गृह से अलग रहना चाहती थी क्योंकि इससे और इन दोनों परिस्थितियों से यह उपदर्शित होता है कि वास्तव में वह अपने पति के साथ खुशहाल वैवाहिक जीवन जीने का आशय नहीं रखती थी ।'

16. प्रत्यर्थी के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने **श्रीमती उपनेश कुमारी** बनाम **कमलेश कुमार**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के खंड न्यायपीठ द्वारा

[1] 1995 (2) आई. एल. आर. 117.

दिए गए निर्णय का भी अवलंब लिया जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि पति और उसके कुटुम्ब सदस्यों के विरुद्ध मिथ्या शिकायत दर्ज कराने से भी अनुयोज्य क्रूरता गठित होती है । अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा यह निवेदन किया गया कि मात्र दांडिक शिकायत फाइल करने से ही क्रूरता गठित नहीं होती है, इस मुद्दे पर निर्णयज विधि पर मेरे द्वारा पहले ही विचार किया जा चुका है ।

17. वर्तमान मामले के संदर्भ में, तथ्यों का उल्लेख करते हुए, मैं पत्नी द्वारा फाइल दांडिक मामले में कोई साबित न्यायोचितता नहीं पाता हूं जिससे यह तथ्य साबित होते हों कि उसने वस्तुतः अपने अधिकार को सिद्ध किया है । अभिलेख पर ऐसी कोई सामग्री नहीं है जिससे कि पति या उसके कुटुम्ब सदस्यों द्वारा दहेज की मांग को किसी तरीके से साबित करती है । निस्संदेह, जैसा कि अभिनिर्धारित किया गया है, मात्र मामला संस्थित करने से ही अपने आप में क्रूरता सिद्ध करने के लिए पर्याप्त नहीं होता है अपितु अभिलेख पर यह न्यायोचितता सिद्ध करनी होती है कि ऐसी कार्यवाहियों को आरम्भ करने के लिए कुछ न्यायोचितता है । मैं निर्णय प्रदर्श पी 1 से ऐसा कोई अर्थ निकालने में असमर्थ हूं जिसे अभिलेख पर प्रस्तुत किया गया है । यह आधार अपने आप में ही अधिनियम की धारा 13(1)(ik) के अर्थान्तर्गत क्रूरता गठित करने के लिए पर्याप्त है जो विवाह-विच्छेद की डिक्री मंजूर करने के लिए आधार गठित करती है ।

18. दूसरी ओर, अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह निवेदन किया कि अभिलेख पर कोई अभित्यजन साबित नहीं किया गया है । मैं, स्वयमेव ही यह अभिनिर्धारित नहीं कर सकता हूं कि साक्ष्यों से ऐसा निष्कर्ष निकाला जा सकता है । अभिलेख पर यह सिद्ध होता है कि पत्नी ने अपनी उस पुत्री की देखभाल नहीं की जो मिरगी से ग्रसित थी । ऐसी माता के बारे में क्या कहा जा सकता है जिसने अपने बच्चे को ऐसी अवस्था में छोड़ दिया था और उसकी बाल्यावस्था में उसकी देखभाल करने के लिए कोई पूछताछ नहीं की थी, विनिर्दिष्टतः तब जब वह बीमारी से ग्रसित थी ? इस न्यायालय के समक्ष यह तर्क देने की ईप्सा की गई थी कि वह अपनी बच्ची की अभिरक्षा इस कारण से नहीं ले सकती थी कि उसके पास पर्याप्त धन नहीं था, इसे अभिलेख पर न तो अभिवाचित किया गया अथवा साबित किया गया न ही सिद्ध किया गया है । मैं, अभिलेख पर ऐसा कोई

भी साक्ष्य नहीं पाता हूं जिससे कि माता द्वारा अपने अवयस्क बालिका की संरक्षकता नहीं लेने को न्यायोचित ठहराता हो जिसका पिता और माता दोनों द्वारा युक्तियुक्त रूप से देखभाल करना चाहिए और करना चाहिए था ।

19. मेरे द्वारा विचारित अन्य साक्ष्य से यह उपदर्शित होता है कि अभिलेख पर लाए गए समझौते से एक चीज यह साबित होती है कि तथाकथित प्रत्येक समझौते के पश्चात् अपीलार्थी वापस आ जाती थी जहां पुनः अन्य समझौता किया जाता था, दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि तथाकथित समझौते पर कार्य करने का कोई आशय नहीं होता था अपितु मात्र यह साक्ष्य या सामग्री सृजित करने का आशय होता था जिससे कि यह दर्शित हो सके कि समझौते के अनुसार और समझौते की भावना के अनुसार कार्य किया गया ।

20. विद्वान् काउंसेल ने **हरजीत कौर** बनाम **भूपिन्दर सिंह**[1] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा दिए गए विनिश्चय का अवलंब लिया जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि जहां पत्नी बिना किसी न्यायोचित कारण के अपने पति का साथ छोड़कर बार-बार अपने माता-पिता के पास चली जाती है तो इससे अभित्यजन सिद्ध होता है । इसी प्रकार के प्रभाव का निर्णय इस न्यायालय ने **मोहन सिंह** बनाम **लीला देवी**[2] वाले मामले में दिया था ।

21. अभिलेखों से मेरा यह निष्कर्ष है कि यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त साक्ष्य हैं कि पत्नी ने बिना किसी न्यायोचित कारण के अपने पति का साथ छोड़ दिया है । अभित्यजन का आशय साबित होता है । इन परिस्थितियों में यह अपील खारिज की जाती है । खर्चे का कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

अपील खारिज की गई ।

क.

---

[1] ए. आई. आर. 2007 हिमाचल प्रदेश 96.

[2] 2007 (1) शिमला एल. सी. 327.